ISSN 2277-5587
Impact Factor 4.215
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

शोध श्री

Volume-32 Issue-3 July-September 2019 RNI No. RAJHIN/2011/40531

SHODH SHREE
ज्ञानं भारः क्रियां विना
RNI RAJHIN/2011/40531
ISSN 2277-5587

CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

Virendra Sharma
Chief Editor
Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr. Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof. H.S. Sharma (Retd.)
University Of Rajasthan, **Jaipur**

Prof. T.K. Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P. Saraswat
Dean of Commerce, M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Manorama Upadhayay
Principal, Mahila P.G. Mahavidyalaya, **Jodhpur**

Dr. Rajesh Kumar
Director (Journal, Publication & Library), I.C.H.R., **New Delhi**

Dr. Pankaj Gupta
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Dr. Rajendra Singh
Archivist, Rajasthan State Archives, **Jodhpur Division**

Dr. Avdhesh Kumar Sharma
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Advisory Board

Prof. S.N. Tailor (Retd.)
S.D. Government P.G. College, **Beawar**

Prof. S.P. Vyas
Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Dr. Kate Boehme
University of Leicester, **United Kingdom**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.), National Archives of India, **New Delhi**

UMAID BHAWAN PALACE
JODHPUR - 342 006
RAJASTHAN

02 अगस्त 2019

प्रिय डॉ. रविन्द्रजी,

वीरवर राव चन्द्रसेनजी की 478वीं जयन्ती के अवसर पर सम्पादित अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका "शोध श्री" के 31वें संस्करण का लोकार्पण इस आयोजन के उद्‌घाटन समारोह में हुआ। इसके सम्पादन एवं प्रकाशन के लिए आप व आपके सभी सहयोगीयों को बधाई।

किसी भी पत्रिका का निरन्तर प्रकाशन उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। आपने इस पत्रिका का निरन्तर प्रकाशन कर निःसंदेह इसकी उपयोगिता को प्रमाणित किया है एवं यह युवा शोधार्थियों के लिए बहुत ही शोध सामग्री का संकलन भी इसमें किया गया है एवं साथ ही युवा शोधार्थियों के आलेख प्रकाशित कर उन्हें प्रोत्साहित करने का अनुकरणीय कार्य कर रहे हैं।

यह पत्रिका इसी तरह आगे भी प्रकाशित होती रहे और शोध क्षेत्र में नये आयाम स्थापित करती रहे। आपको और इस पत्रिका के सम्पादक मण्डल के सभी सदस्यों को इसकी सफलता की शुभकामनाएें।

मंगलकामनाओंसहित।

भवदीय,

महाराजा गजसिंह
मारवाड़–जोधपुर

डॉ. रविन्द्र टेलर
सम्पादक 'शोध श्री' (त्रैमासिक)
54–ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड,
जयपुर – 302 018
मो–094132 24134

Shodh Shree

(A peer Reviewed International Refereed Journal)

Contents

Volume-32 Issue-3 July-September, 2019

1. **सरदार वल्लभभाई पटेल और भारतीय राजनीति** 1-5
   डॉ. आशीष कुमार यादव, जबलपुर (मध्यप्रदेश)
2. **उच्च शिक्षा परिवर्तित आयाम : एक समाजशास्त्रीय विवेचना** 6-9
   डॉ.दिनेश गुप्ता, बीकानेर
3. **जैनेन्द्र कुमार के 'सुनीता' उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभावःएक अध्ययन** 10-12
   डॉ. उमेश कुमार शर्मा, जयपुर
4. **भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के राज्यवार अन्तर्प्रवाह के आर्थिक प्रभावों का मात्रात्मक विश्लेषण** 13-21
   परवेज अली, बांसवाड़ा एवं डॉ. कैलाश चन्द नायमा, डूंगरपुर
5. **शास्त्रीय संगीत और युवा पीढ़ी** 22-24
   दिपाली भण्डारी, उदयपुर
6. **अलवर प्रजामण्डल का जनजागृति में योगदान** 25-27
   डॉ. नितिन चौधरी, जयपुर
7. **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों में प्रगतिशील चेतना** 28-30
   डॉ. रानी सिंह, वर्नपुर (पश्चिम बंगाल)
8. **मुगल-राजपूत सम्बन्ध - जोधपुर शासक महाराजा गजसिंह प्रथम (1619-1638) के विशेष संदर्भ में** 31-34
   उपासना दाधीच, जोधपुर
9. **कौटिल्य के मुख्य राजनीतिक विचार** 35-43
   एकता सागर, जोधपुर
10. **आधुनिक युग में इतिहास की उपयोगिता : प्राचीन भारतीय इतिहास के विशेष सन्दर्भ में** 44-47
    डॉ. दिनेश कुमार चारण, चुरू
11. **व्हिसल ब्लोअर्स : आरम्भिक परिचय व सुरक्षा प्रावधान** 48-53
    भानुप्रिया दवे, जोधपुर
12. **बौद्ध धर्म और धर्म निरपेक्षता : एक अध्ययन** 54-61
    डॉ. किरण शेखावत, नई दिल्ली
13. **भारतीय आदिवासी साहित्य का परिदृश्य, बाधाएँ और संभावनाएँ** 62-66
    कुमारी मनीषा, रांची (झारखंड)
14. **ठा. रामसिंहजी तँवर की हिन्दी साहित्य साधना** 67-70
    लक्ष्मी भाटी, जोधपुर
15. **श्रीमद्भगवद् गीता का बौद्ध धर्म पर प्रभाव** 71-74
    नरेश चौधरी, उदयपुर

16. **संत सुन्दरदास के काव्य में राम की अवधारणा** 75–78
डॉ. कृष्णा मीणा, नई दिल्ली

17. **अफीम पोस्त खेती का भौगोलिक वितरण एवं उत्पादन का विश्लेषण** 79–87
रतन लाल जाट, डॉ. हेमेन्द्र सिंह शक्तावत, उदयपुर

18. **बाल्यावस्था में व्यक्तित्व विकास के आयाम** 88–91
हेमा रूपावत, बूंदी

19. **आचार्य पाणिनि पूर्व कारक-विभक्ति** 92–95
डॉ. गुंजन गर्ग, गंगापुर सिटी

20. **राजस्थान में आदिवासी आंदोलन** 96–99
भगवान सिंह शेखावत, जोधपुर

21. **स्वतंत्र भारत में भुखमरी का खाद्य सुरक्षा के संदर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन** 100–104
डॉ. अरुण प्रभा चौधरी, उदयपुर एवं लक्ष्मीनारायण, जयपुर

22. **नीतिग्रन्थों में कर्मोपदेश** 105–108
डॉ. नितेश व्यास, जोधपुर

23. **सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की काव्य चेतना** 109–112
डॉ. दविंदर कौर, पटियाला (पंजाब)

24. **सुशासन के लिए भ्रष्टाचार को दूर करने की आवश्यकता** 113–115
सुमित्रा सारण, जोधपुर

25. **महिलाओं का सामाजिक व आर्थिक सशक्तिकरण** 116–119
डॉ. चित्रा जादौन, जयपुर

26. **विज्ञान एवं अध्यात्मवाद का समन्वय** 120–123
मिथिलेश कवर एवं प्रोफेसर सुशील शर्मा, चित्तौडगढ़

27. **नामवर सिंह की आलोचना-दृष्टि** 124–128
रघुवीर कुमार, भागलपुर

28. **Dante Gabriel Rossetti: Poet and Painter** 129–131
Monika, Dholpur

29. **Effect of Sez on India's Export** 132–140
Madhulika Soni, Jodhpur

30. **Human Resource Development and Practices in Indian Banks** 141–144
Dr. Rekha Chouhan Jodhpur

31. **Productive Training Methods Of Human Resource Management In Digital Era** 145–152
Dr. Sharwan Kumar Daukiya, Jodhpur

सरदार वल्लभभाई पटेल और भारतीय राजनीति

डॉ. आशीष कुमार यादव
व्याख्याता, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्यप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

सरदार वल्लभभाई पटेल के व्यक्तिव एवं कृतित्व को सम्पूर्ण रूप में ग्रहण करना एवं उसे अभिव्यक्त करना संभवतः कठिन कार्य है। बहुआयामी व्यक्तिव के धनी सरदार वल्लभ भाई पटेल की महानता का आंकलन करना असंभव कार्य नहीं परन्तु जटिल अवश्य है। सरदार पटेल के व्यावहारिक जीवन की कार्य शैली के आधार पर उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का संपूर्ण ढांचा विस्तृत है। सरदार पटेल का वैचारिक पक्ष इतना समृद्ध है जो राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मानवीय चेतना का शिखर बिन्दु माना जा सकता है।

संकेताक्षर : *मानवीय चेतना, सत्यग्रह, असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, भारत छोड़ो आन्दोलन, एकता एवं अखण्डता, यथार्थवादी नीति, तुष्टीकरण।*

सरदार वल्लभभाई पटेल का जन्म 31 अक्टूबर 1875 को गुजरात राज्य के तत्कालीन खेड़ा एवं वर्तमान समय में आणन्द जनपद के नड़ियाद नामक कस्बे में हुआ था। सरदार पटेल के पिता का नाम झाबेर भाई गलाभाई पटेल था तथा माता का नाम लाड़बाई था। सरदार पटेल के पिता झाबेर भाई गलाभाई पटेल खेड़ा जनपद के ही करमसद ग्राम के किसान थे। सरदार पटेल की माता लाडबाई आदर्श गृहणी एवं सौम्य स्वभाव वाली महिला थीं। सरदार पटेल ने माध्यमिक शिक्षा नड़ियाद एवं बड़ौदा में तथा मैट्रिक की शिक्षा भी वहीं से प्राप्त की।

सरदार पटेल की इच्छा उच्च शिक्षा प्राप्त करने की थी लेकिन घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी इसलिए उस समय यह विचार त्यागना पड़ा। सरदार पटेल महत्वाकांक्षी थे, उन्हें मैट्रिक के बाद छोटी–मोटी नौकरी करने का विचार नहीं था। उन्होंने निश्चय किया कि धन कमाकर इंग्लैण्ड में जाकर शिक्षा प्राप्त करेंगें। इस कारण सरदार पटेल का मन वकालत के व्यवसाय की ओर आकृष्ट हुआ। वे देखते थे कि बैरिस्टरों की भारत में बहुत प्रतिष्ठा है, इसलिए सरदार पटेल ने मुख्तियारगीरी (डिस्ट्रिक्ट प्लीडर) करने की सोची एवं कठिन परिश्रम कर 1900 में मुख्तियारगीरी (डिस्ट्रिक्ट प्लीडर) की परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त सरदार पटेल ने गोधरा एवं बोरसद में वकालत करना प्रारम्भ किया। उनकी इच्छा थी कि इंग्लैण्ड जाकर बैरिस्टरी की शिक्षा प्राप्त करें, लेकिन उनके बड़े भाई विठ्ठलभाई पटेल पहले इंग्लैण्ड जाकर बैरिस्टरी की शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे जिसका सरदार पटेल विरोध नहीं कर सके और वे बैरिस्टरी करने चले गये।

विठ्ठलभाई के बाद 1910 में सरदार पटेल बैरिस्टरी की शिक्षा प्राप्त करने इंग्लैण्ड गये जहाँ उन्होंने 'मिडिल टैम्पिल' में प्रवेश लेकर बारह टर्म की पढ़ाई को दस टर्म में पूरा कर 'बार एट लॉ' की उपाधि प्राप्त की। वर्ष 1913 में सरदार पटेल बैरिस्टरी की डिग्री लेकर स्वदेश वापस आ गये एवं अहमदाबाद में अपनी बैरिस्टरी शुरू की। जिस वर्ष सरदार पटेल बैरिस्टरी की शिक्षा लेकर स्वदेश आए उसी वर्ष उनके बड़े भाई विठ्ठलभाई ने राजनीति में प्रवेश किया। विठ्ठलभाई ने सरदार पटेल के साथ लम्बी बैठक की। दोनों भाईयों ने आपस में सहमति बनाई कि एक भाई देश सेवा करेगा एवं एक भाई परिवार के भरण–पोषण का दायित्व संभाल लेगा। सरदार पटेल अधिकतर फौजदारी मुकदमों को देखते थे, अपने व्यवसाय के प्रति सरदार पटेल अत्यधिक जागरूक एवं सतर्क रहा करते थे। इस कारण उनके पास

मुकदमों की लम्बी श्रृंखला रहती थी। अदालत में भी उनकी कार्यशैली से वकील समुदाय एवं न्यायाधीशगण अत्यधिक प्रसन्न रहते थे।

सरदार पटेल ने अपना सार्वजनिक जीवन अहमदाबाद नगर पालिका के सदस्य के रूप में प्रारम्भ किया। वर्ष 1917 में वे यहाँ सदस्य निर्वाचित हुए। नगर पालिका में स्वास्थ्य समिति के अध्यक्ष के रूप में सरदार पटेल ने जनसेवा के अनेक कार्य किए। इस समय वहाँ प्लेग ने भयंकर रूप ले रखा था। सरदार पटेल ने जनसेवा का कार्यक्रम आरम्भ कर प्लेग जैसी घातक बीमारी का अहमदाबाद से पूरी तरह से सफाया करवा दिया। सरदार पटेल ने नगर पालिका के लिए एक आचार संहिता का निर्माण कर उसके क्रियान्वयन का प्रयास किया। सरदार पटेल ने अहमदाबाद नगर पालिका की अनेक समस्याओं को दूर किया। सरदार पटेल गाँधी जी के सानिध्य में आने से पूर्व ही सार्वजनिक जीवन में आ गये थे।

सरदार पटेल और गाँधी

प्रारम्भ में सरदार पटेल का गाँधी जी की सार्वजनिक जीवन की कार्यशैली के संबंध में मतभेद थे क्योंकि गाँधी जी अंग्रेज सरकार से सहानुभूति एवं सौम्य वातावरण से स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते थे लेकिन उसके विपरीत सरदार पटेल की कार्यशैली उग्र थी। वर्ष 1917 में गाँधी जी द्वारा चलाए गए चम्पारन आंदोलन से सरदार पटेल अत्यधिक प्रभावित हुए एवं गाँधी जी की कार्यशैली से सहमत हुए, एवं यहीं से वे गाँधी जी के अनन्य भक्त एवं सहयोगी बन गये एवं अपने अंतिम समय तक गाँधी जी के निर्देशित पथ पर चलते रहे। 1917 में सरदार पटेल ने गाँधी जी के साथ बेगार प्रथा के उन्मूलन के लिए आंदोलन चलाकर इसे समाप्त करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सरदार पटेल ने 1917 में गुजरात राज्य के खेड़ा जिले में किसानों के पक्ष में गाँधी जी के साथ सत्याग्रह शुरू किया। इस आंदोलन में सरदार पटेल एवं गाँधी जी एक–दूसरे के काफी नजदीक आए एवं एक दूसरे के विचारों को समझा। सरदार पटेल ने खेड़ा सत्याग्रह में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई एवं अंग्रेजी सरकार को किसानों के पक्ष में निर्णय लेना पड़ा। खेड़ा सत्याग्रह में सरदार पटेल की कार्यशैली की गाँधी जी ने बहुत प्रशंसा की।

असहयोग आंदोलन

असहयोग आंदोलन में सरदार पटेल ने गाँधी जी के विचारों के प्रसार में गुजरात प्रान्त में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया एवं असहयोग आंदोलन के कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया। असहयोग आंदोलन तक सरदार पटेल का कार्यक्षेत्र केवल गुजरात प्रान्त तक ही सीमित था लेकिन सन् 1928 में बारदोली में चलाये गए किसान आंदोलन में उन्हें राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई। सरदार पटेल की पहचान एक राष्ट्रीय नेता के रूप में बन गयी एवं वे राष्ट्रीय राजनीति के पथ–प्रदर्शक के रूप में कार्य करने लगे।

सरदार पटेल की कार्यशैली एवं राष्ट्रीय नेता की छवि से घबराकर अंग्रेज सरकार ने उन्हें सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय गिरफ्तार कर जेल में बन्द करवा दिया लेकिन सरदार पटेल जब भी जेल से बाहर रहे उन्होंने आंदोलन की गति को कम नहीं होने दिया। सरदार पटेल 1931 के कराची कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए एवं 1937 के केन्द्रीय सभा के चुनावों के समय कांग्रेस संसदीय मण्डल के अध्यक्ष बने एवं अपने अंतिम समय तक कांग्रेस संगठन से जुड़े रहे। कांग्रेस संगठन में सरदार पटेल बहुत प्रभावशील रहे। सरदार पटेल ने कांग्रेस संगठन को अनुशासित एवं संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारत छोड़ो आंदोलन

1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में सरदार वल्लभभाई पटेल ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। इस दौरान अंग्रेजों ने सभी बड़े नेताओं को जेल में डाल दिया था, लेकिन सरदार पटेल जब भी जेल से बाहर रहे उन्होंने आंदोलन की तीव्रता को कम नहीं होने दिया। द्वितीय विश्व युद्ध में हुई इंग्लैण्ड की क्षति एवं भारत के स्वतंत्रता सेनानियों के द्वारा किए गए तीव्र आंदोलनों में अंग्रेजी सरकार ने भारत को स्वतंत्रता प्रदान करने की घोषणा कर दी, लेकिन अंग्रेजों द्वारा साम्प्रदायिकता का जो बीज 1909 में बोया गया वह 1947 तक एक पेड़ का रूप ले चुका था। इस समय साम्प्रदायिकता की आग से देश झुलसने लगा था। इस स्थिति को देखकर सरदार पटेल एवं अन्य कांग्रेसी नेताओं के सामने भारत विभाजन के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं दिख रहा था, सरदार पटेल ने भारत के विभाजन को बिना मन से अपनी स्वीकृति प्रदान की एवं विभाजन वार्ता में मजबूती के साथ भारत का पक्ष रखकर इसके हितों को पूरा करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

विभाजन की त्रासदी के बाद भारत को स्वतंत्रता तो प्राप्त हो गयी लेकिन पूरा देश टुकड़ों में बँटा हुआ था। देशी राज्यों की महत्वाकांक्षाऐं बढ़ गयी थीं, वे अपने आपको स्वतंत्र रखने के लिए प्रयासरत थे, लेकिन सरदार पटेल ने देशी राजवाड़ों की महत्वाकांक्षाओं को भारत पर हावी नहीं होने दिया एवं अपनी सूझबूझ एवं कूटनीति से सभी देशी राज्यों को भारत में सम्मिलित करवाकर एक नये संगठित भारत का निर्माण किया।

सरदार पटेल के कृतित्व ने आधुनिक भारत के निर्माण एवं विकास में पथ–प्रदर्शक का कार्य किया है।

राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता

सरदार पटेल ने राष्ट्र की एकता और अखण्डता के मुद्दे पर कभी कोई समझौता नहीं किया। भारतीय समाज को एकता के सूत्र में किस तरह पिरोया जाये, इसकी चिन्ता हमेशा वे करते थे। निजी और सार्वजनिक जीवन में समाज और राष्ट्र की उन्नति के लिए सरदार पटेल ने हमेशा अनुशासन की अनिवार्यता को स्वीकार किया तथा उसे दायित्व बोध से जोड़ कर देखा। पराधीन भारत को इसकी जरूरत थी, साथ ही शिक्षा–दीक्षा के उद्देश्यों को चरित्र निर्माण से जोड़ा ताकि नई पीढ़ी को सम्यक दिशा मिल सके। सरदार पटेल ने जिस क्षेत्र में भी दोष पाया बस उसे जड़मूल से उखाड़ फेंकने का दृढ़ संकल्प कर लेते थे।

सरदार वल्लभभाई पटेल विश्व भ्रान्ति के पक्षधर थे एवं वे नाजायज आधिपत्य या अतिक्रमण के विरोधी थे। यूरोपवासियों को सम्पूर्ण एशिया से हटाने की उनकी चिन्ता जगजाहिर है, यदि व्यापक दृष्टिकोण से देखा जाय तो सरदार पटेल समूची मानवता के विराट अग्रदूत के रूप में उभर कर सामने आते हैं।

किसान नेता

1928 में बारदोली आंदोलन प्रारम्भ हुआ। बारदोली तालुका गुजरात प्रान्त के सूरत जिले में स्थित था, यहाँ के किसानों में शिक्षा का आभाव था लेकिन परिश्रम एवं दृढ़ता के लिए यहाँ के लोग बहुत प्रसिद्ध थे। शासन ने यहाँ लगान में वृद्धि कर दी। किसानों की आर्थिक स्थिति पहले से ही खराब थी। सरकार ने लगान वृद्धि किसानों के बिना राय से ही कर दी थी इससे वहाँ के किसानों में काफी रोष था। बारदोली के किसान बढ़ी हुई लगान देने के लिए तैयार नहीं थे वे सरदार पटेल के पास गए एवं उनसे बढ़ी हुई लगान के खिलाफ आन्दोलन करने की प्रार्थना की। सरदार पटेल ने किसानों के साथ आंदोलन शुरू कर दिया एवं अन्ततः सरकार को झुकना पड़ा एवं बढ़ा हुआ लगान माफ करना पड़ा। इस आंदोलन ने सरदार पटेल को एक राष्ट्रीय नेता के रूप में पहचान प्रदान की एवं इस आंदोलन से सरदार पटेल एक किसान नेता के रुप में सामने आये। इस आंदोलन में सरदार पटेल की भूमिका महत्वपूर्ण रही।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन

1930 में गाँधी जी द्वारा शुरू सविनय अवज्ञा आन्दोलन में सरदार पटेल की भूमिका महत्वपूर्ण रही। सरदार पटेल ने गाँव–गाँव जाकर इसका प्रचार–प्रसार किया। सरदार पटेल के भाषणों से अंग्रेजी सरकार इतनी डर गई कि उन्हें गिरफ्तार कर जेल में बन्द करवा दिया गया। सरदार पटेल जेल से छूटने के बाद आंदोलन में फिर सक्रिय होकर उसे गति प्रदान करने लगे। इस समय सरदार पटेल ने अपने स्वास्थ्य की परवाह किए बिना कांग्रेस संगठन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर आंदोलन को सफल बनाने का प्रयास किया। सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय सरदार पटेल अनेक बार जेल गए एवं उन्हें अंग्रेजी सरकार ने लम्बे कारावास की सजा दी।

1935 का भारत शासन अधिनियम

1935 के भारत शासन अधिनियम के अनुसार प्रान्तीय सभाओं के निर्वाचन में सरदार पटेल ने कांग्रेस के संसदीय मण्डल के अध्यक्ष के रूप में कार्य किया। इन चुनावों में सरदार पटेल ने कांग्रेस के चुनाव प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया जिससे अनेक प्रान्तों में कांग्रेस की सरकारें बनीं। सरदार पटेल ने प्रान्तों के मंत्रिपरिषदों का मार्गदर्शन कर उन्हें सफल बनाने में महत्वपूर्ण कार्य किया। प्रान्तों के मंत्रिपरिषदों के मार्गदर्शन में सरदार पटेल को नारीमन एवं खेर प्रकरणों का भी सामना करना पड़ा जिसमें उनकी निष्पक्षता पर सवाल उठाए गए लेकिन जाँच के बाद यह आरोप झूठे साबित हुए।

भारत के विभाजन और सरदार पटेल

भारत के विभाजन के समय सरदार पटेल की भूमिका एवं लार्ड माउण्टबेटन के समक्ष भारतीय पक्ष को दृढ़ता के साथ रखना, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरदार पटेल द्वारा साम्प्रदायिक दंगों को समाप्त करने संबंधी कार्यों, पाकिस्तान से आये शरणार्थियों के संबंध में किए गए कार्य, संविधान निर्माण में सरदार पटेल की भूमिका का विश्लेषण इसी में किया गया है। सरदार पटेल द्वारा भारत को एकता के सूत्र में बांधने संबंधी देशी राज्यों के एकीकरण संबंधी कार्य जिसमें हैदराबाद, जूनागढ़ एवं कश्मीर की समस्या के निदान में सरदार पटेल ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी

सरदार वल्लभ भाई पटेल का व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा का समन्वय था। वे एक कुशल राजनेता, महान स्वतंत्रता सेनानी, सफल कूटनीतिज्ञ, कुशल प्रशासक एवं महान संगठनकर्ता थे। सरदार पटेल के व्यक्तित्व में परिश्रमशीलता, सच्चाई, स्वाभिमान, त्याग एवं सहनशीलता के गुण कूट–कूट कर भरे हुए थे, उनमें समय एवं परिस्थिति को तुरन्त समझने एवं उसके अनुसार तुरन्त निर्णय लेने की अद्‌भुत क्षमता थी।

सरदार पटेल स्पष्टवादी नेता थे, उन्हें बात को तोड़–मरोड़ कर कहने की आदत नहीं थी, वे अपनी

बातों को सीधे एवं स्पष्ट रूप से सामने रखते थे। सरदार पटेल स्वभाव से ही निर्भय वीर एवं दृढ़ निश्चयी थे। वे एक उत्तरदायी नेता एवं मूक अनुयायी थे। उन्होंने हमेशा गाँधी जी एवं उनकी विचारधारा का अनुशरण किया। वल्लभ भाई पटेल प्रत्येक जाति, धर्म और सभी भारतवासियों के सरदार थे। स्वाधीनता संग्राम का एक–एक पल उनकी महानता, निर्भयता एवं दृढ़ता का साक्षी है।

इतिहास साक्षी है कि अनेक समय राष्ट्र निर्माण की प्रक्रियाओं के दौरान विभिन्न सभ्यताओं और संस्कृतियों में रक्तस्त्राव हुए हैं। बिना रक्तपात रियासतों को राष्ट्रीय धारा में शामिल करना कल्पना से बाहर की व्यवस्था थी। एक अखण्ड भारत का सपना सम्राट अशोक ने देखा था किन्तु वे इस अभियान में असफल रहे। सरदार पटेल ने विपरीत परिस्थितियों में एवं अनेक कठिनाईयों के मध्य यह सपना साकार किया।

सरदार वल्लभभाई पटेल के जीवनकाल में उनकी कार्य पद्धति की प्रशंसा एवं विरोध दोनों होते रहे हैं परन्तु अन्त में उनके विरोधियों को भी उनकी यथार्थवादिता के सामने झुकना पड़ा।

सरदार वल्लभभाई पटेल भारतीय इतिहास के नायक हैं लेकिन उनके असाध्य कार्यों के अनुरूप उन्हें भारतीय इतिहास में महत्ता प्रदान नहीं की गयी है जिसके वह पूरी तरह हकदार हैं। यहाँ तक कि सरदार पटेल जैसे व्यक्ति जिन्होंने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन एवं भारत के एकीकरण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया जिसके कारण भारत सरकार ने उनकी मृत्यु के 40 वर्षों के बाद 'भारत रत्न' प्रदान किया। सरदार पटेल ने भारतीय राजनीति में किसी भी व्यक्ति के प्रति व्यक्तिगत द्वेषभाव नहीं रखा, लेकिन फिर भी जो पुरस्कार, पुरस्कार के शुरू होने के समय में ही मिल जाना चाहिए था वह उनकी मृत्यु के 40 वर्षों के पश्चात् प्राप्त हुआ।

वर्तमान समय में कई ज्वलंत समस्याएँ हैं जिनका निवारण अति आवश्यक है। आतंकवाद एवं नक्सली समस्या देश में सबसे बड़ी समस्या बनी हुई है, विदेशी शक्तियाँ इसके पोषण में लगी हुई हैं। इन समस्याओं के निवारण हेतु सरदार पटेल के विचारों एवं कार्यों से प्रेरणा लेकर एक यथार्थवादी नीति का निर्माण करना होगा, तभी इन समस्याओं का समाधान पूरी तरह से हो सकेगा।

सरदार पटेल ने जिस तरह अपनी यथार्थवादी नीति से देशी राज्यों की समस्या का निदान किया उसी तरह से प्रेरणा लेकर देश से आतंकवाद एवं नक्सली समस्या का समाधान किया जा सकता है।

लोकतंत्र में विश्वास

लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए राजनीतिक दलों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राजनीतिक दलों में लोकतांत्रिक प्रक्रिया का होना बहुत ही महत्वपूर्ण है लेकिन भारत के राजनीतिक दलों में परिवारवाद एवं व्यक्तिवाद का बोलबाला बढ़ता जा रहा है। राजनीतिक दलों का संगठन वंशवाद एवं परिवारवाद के आधार पर हो रहा है। दलों के निर्माण में जाति, धर्म एवं क्षेत्रीयता का महत्व बढ़ता जा रहा है जिससे लोकतंत्र कमजोर हो रहा है। सरदार पटेल ने वंशवाद, परिवारवाद, धर्म, जाति या क्षेत्रीयता को कभी भी संगठन पर हावी नहीं होने दिया उन्होंने हमेशा लोकतांत्रिक तरीकों के द्वारा कार्य किया, इसीलिए कांग्रेस संगठन पर उनका बहुत अधिक प्रभाव रहा।

सरदार पटेल के लोकतांत्रिक नजरिये को राजनीतिक दलों को अपनाना होगा तभी राजनीतिक दलों में अनुशासन एवं पारदर्शिता बनी रहेगी एवं देश में लोकतंत्र मजबूत होगा। वर्तमान समय में देश में साम्प्रदायिक शक्तियों एवं क्षेत्रवादी शक्तियाँ मजबूत होती जा रही हैं, इससे केन्द्रीय शक्ति का ह्रास हो रहा है।

केन्द्रीय शासन के पक्षधर

सरदार पटेल हमेशा केन्द्रीय शासन की दृढ़ता के पक्ष में थे, ताकि देश की एकता एवं अखण्डता बनी रहे। लेकिन कुछ राजनीतिक दलों की अंग्रेजों की तरह साम्प्रदायिक एवं अल्पसंख्यक तुष्टीकरण की नीति से देश में साम्प्रदायिक तनाव बढ़ रहा है। क्षेत्रीय शक्तियाँ, भाषा, जाति एवं संस्कृति के आधार पर देश की एकता को खण्डित कर रही है। ऐसे समय में हमें सरदार पटेल के विचारों एवं कार्यों को अपनाकर इन समस्याओं को समाप्त करना होगा।

तुष्टीकरण की नीति के विरोधी

सरदार पटेल ने कभी भी अल्पसंख्यक तुष्टीकरण की नीति को हवा नहीं प्रदान की, क्षेत्रीयता का उन्होंने कभी समर्थन नहीं किया, उनका विचार था कि ऐसी नीति देश को विखण्डित कर सकती है। सरदार पटेल की इस नीति को आधार बनाकर देश की एकता एवं अखण्डता को बनाये रखने के लिए नई पीढ़ी को प्रयासरत रहना होगा तभी देश की अखण्डता बनी रह सकती है।

शिक्षा सर्वोपरी

सरदार पटेल शिक्षा को जीत की कुँजी मानते थे, उनका मत था कि शिक्षा ही व्यक्ति को कर्तव्यों के प्रति जागरूक करती है। लेकिन आज जिस तरह शिक्षा का व्यवसायीकरण शिक्षा में अंग्रेजी भाषा का वर्चस्व

स्थापित हो रहा है उससे शिक्षा दूषित हो रही है।

सरदार पटेल गाँधी जी द्वारा स्थापित वर्धा शिक्षा योजना के समर्थक थे, उनका मत था कि शिक्षा का माध्यम देशी भाषा में हो न कि विदेशी। सरदार पटेल का मत था कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे व्यक्ति अपने गाँव या शहर में रहकर उनके विकास में मदद कर सके। यह नहीं कि शिक्षा प्राप्त करने के बाद वह अपने ही गाँव या अपनों को भूल जाए। नई पीढ़ी को सरदार पटेल के इन्हीं विचारों को अपनाकर देश से शिक्षा के दोषों को दूर करने एवं विदेशी भाषा के स्थान पर अपनी राष्ट्रभाषा को शिक्षा के क्षेत्र में समृद्ध करने का प्रयास करना होगा, ताकि भारतीय शिक्षा प्रगति कर सके।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में देश के प्रतिनिधियों एवं नेताओं में ईमानदारी, सेवाभाव, नैतिकता एवं उनके व्यक्तिगत चरित्र पर प्रश्न उठ रहे हैं, उनकी करनी एवं कथनी में उसी तरह का अंतर हो गया है जिस तरह पृथ्वी और आकाश में है। जन–प्रतिनिधियों के लिए अब राजनीति एक व्यवसाय बनकर रह गयी है। ऐसे समय में सरदार पटेल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व उनके लिए मार्गदर्शन का कार्य करता है। नई पीढ़ी के जन–प्रतिनिधियों का उनके विचारों एवं कार्यों को आत्मसात् करना होगा तभी देश की एकता एवं अखण्डता बनी रह सकती है एवं देश प्रगति के रास्तों पर चल सकता है।

सरदार पटेल के विचार एवं कार्य आज भी देश की अनेक समस्याओं के समाधान के लिए प्रेरणादायी है। आवश्यकता उन्हें सही ढंग से क्रियान्वित करने एवं समय एवं परिस्थिति के अनुसार उनका उपयोग करने की है, जिससे देश की प्रगति में कोई अवरोध न आ सके एवं देश की एकता एवं अखण्डता चिरस्थाई हो और भावी पीढ़ी की कार्यशैली के लिए अनुकरणीय बने।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *कुमार, रविन्द्र, सोशल एण्ड पॉलिटिकल आईडियाज ऑफ सरदार वल्लभभाई पटेल, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1991.*
2. *नन्दुरकर, जी.एम.ए सरदार पटेलल्स पोस्ट सेन्चुरी(वोलयूम–I से V तक) सरदार वल्लभभाई पटेल स्मारक भवन, अहमदाबाद, 1980.*
3. *पारिख, नरहरि डी., सरदार वल्लभभाई पटेल (वोलयूम–I और II) नवजीवन पब्लिकेशन्स, अहमदाबाद, 1950–56.*
4. *कुमार, रविन्द्र, सरदार पटेल का सत्याग्रही जीवन, राजीव प्रकाशन मंदिर, मुजफ्फर नगर, 1987.*
5. *दबे, जुगतराम, बारदोली सत्याग्रह पत्रिका, बारदोली सत्याग्रह प्रकाशन, सूरत, 1928.*
6. *एन्टोनोवा, के.ए., बोगार्ड लेविन, जी.एन. एण्ड कोटोवास्की, जी.जी., हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, प्रोग्रेस पब्लिकेशन, मास्को, यू.एस.एस.आर., 1984.*
7. *हरदिया, एस.ए., ए पैट्रियोट फॉर मी., ओरियण्ट लॉन्गमैन, बाम्बे, 1982.*
8. *कपूर, सुशील, लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2017.*
9. *पटेल, सरदार; सरदार पटेल भारत विभाजन, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2014.*
10. *त्रिपाठी, श्री प्रकाशमणि, सरदार वल्लभभाई पटेल व्यक्तित्व एवं कृतित्व, अंकित पब्लिकेशन, दिल्ली, 2016.*
11. *कुमार, रविन्द्र, सरदार पटेल के प्रमुख निर्णय, कलपाज पब्लिकेशन, दिल्ली, 2007.*
12. *कुमार, रविन्द्र, लौह पुरुष सरदार पटेल के संस्मरण, ज्ञान पब्लिकेशन हाऊस, दिल्ली, 2006.*
13. *समीर, एम.एम., लौह पुरूष सरदार वल्लभभाई पटेल, अमरसत्य प्रकाशन, दिल्ली, 2016.*
14. *चाँद, एस.एस., फातिमा, इकबाल; सरदार वल्लभभाई पटेल जीवन और विचार, पंचशील प्रकाशन, दिल्ली, 2011.*
15. *प्रसाद, राजवीर, लौह पुरूष सरदार वल्लभभाई पटेल, सुबोध पब्लिकेशन, दिल्ली, 1998.*
16. *मेहता, हिम्मत आई, चक्रवर्ती सन्यासी, सरदार पटेल, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 2010.*

उच्च शिक्षा परिवर्तित आयाम : एक समाजशास्त्रीय विवेचना

shodhshree@gmail.com

डॉ.दिनेश गुप्ता
सहायक आचार्य, राजकीय महारानी सुदर्शन कन्या महाविद्यालय, बीकानेर

शोध सारांश

समाज मे शिक्षा को एक सामाजिक विकास के वाहक के साथ परिभाषित किया जाता है अतः शिक्षा के स्तर से ही समाज का स्तर तय होता है व्यापारिक आर्थिक लाभ को महत्ता देने वाले समाजो की शिक्षा भी आर्थिक लाभ के तत्वों को अपने में शामिल करती है, भारतीय समाज का स्तर अपने ऐतिहासिकता में सामाजिकता का रहा है तथा शिक्षा को एक सामाजिक ईकाई के साथ विकसित किया जाता था । शिक्षा समाज की आवश्यकता थी तथा शिक्षा के विकास से समाज का विकास तय होता था तथा यह विकास व्यक्तिगत न होकर सामाजिक व अध्यात्मिक होता था। अपने ऐतिहासिक परिवेश से लेकर वर्तमान तक की यात्रा में भारतीय शिक्षा प्रणाली जिन परिवर्तन से होकर गुजरी उसकी समाजशास्त्रीय विवेचना प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में करने का प्रयास किया गया है तथा इस निष्कर्ष को की भारतीय शिक्षा प्रणाली सामाजिक से व्यक्तिगत व व्यापारिक लाभों क तत्वो की और अग्रसर हो रहीं है जिससे समाज में विघटन के तत्व विकसित हो रहे है।

संकेताक्षर : *गुरुकुल, उपनिवशवाद, उत्तर उपनिवेशवाद(वैश्वीकरण), निजीकरण।*

अपनी ऐतिहासिकता से वर्तमान तक शिक्षा एक सार्वभौमिक ईकाई के रूप में अपना अस्तित्व बनाये हुऐ है यह अत्यन्त आवश्यक भी है वर्तमान परिदृश्य में जब हम निजीकरण, भूमण्डलीकरण उदारीकरण एवं विनिवेशीकरण जैसी प्रक्रियाओं से गुजर रहे है तब शिक्षा का स्थान अपने आप में महत्वपूर्ण हो जाता है।

शिक्षा समाज की सभी संस्थाओं, सगंठनों, प्रस्थिति, भूमिकाओं, सामाजिक प्रक्रियाओं के साथ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में जुड़ी हुई है। शिक्षा की यर्थाथता को समझे बिना हम समाजीकरण, सामाजिक विकास, सस्ंकृति के हस्तान्तरण, प्रौद्योगिकीय विकास एवं सामाजिक संरचना के विविध पक्षों का उचित अध्ययन भी नहीं कर सकते शिक्षा के बिना हम सामाजिक नियंत्रण और सामाजिक समस्याओं के सन्दर्भ में कुछ नहीं कर सकते। इसी सन्दर्भ में शिक्षा की आवश्कता पर बल देते हुए जॉन डीवी ने लिखा है कि जिसे तरह शारीरिक विकास के लिए भोजन की आवश्यकता है उसी तरह सामाजिक विकास के लिए शिक्षा की आवश्यकता है अतः शिक्षा का स्थान एक विषय वस्तु के रूप में समाजविज्ञानों में महत्वपूर्ण हो जाता है। शिक्षा को एक सामाजिक निवेश के साथ जोड़कर भी देखा जाता है इसका एक पक्ष व्यक्तिव निर्माण के साथ जुड़ता है तो दूसरा पक्ष आर्थिक विकास के साथ जुड़ता है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली के इतिहास का जब हम काल क्रमिक अध्ययन करें अर्थात वेदों से लेकर श्रृति–स्मृति एवं पौराणिक काल तक का अध्ययन करें तब यह तथ्य स्पष्ट रूप से सर्वमान्य है कि शिक्षा का दायित्व समाज से नियंत्रित, संचालित था। समाज का विकास ही शिक्षा का कार्य था और शिक्षा इसी अनुरूप विकसित की जाती थी। प्राथमिक शिक्षा नगरों तक अर्थात परिवार के इर्द–गिर्द प्राप्त होती थी परन्तु उच्च शिक्षा के लिए परिवार से दूरी बनानी होती थी उच्च शिक्षा के केन्द्र वनों (अरण्य) से सम्बधित थे अर्थात सामाजिक जीवन से दूर होते थे। यहां भी एक रोचक तथ्य रहा कि सामाजिक जीवन की श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए उच्च शिक्षा सामाजिक जीवन से दूरी बनाती है। भारतीय शिक्षा का प्राचीन आधार रोजगार के स्थान पर जन कल्याण को अधिक महत्त्व देता था। जन कल्याण में व्यक्ति विकास के तत्व स्वतः ही सम्मिलित हो जाते है।

अपने ऐतिहासिक सन्दर्भ में भारतीय समाज में शिक्षा या भारतीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षा का स्तर अध्यात्म के साथ जुड़ता है जबकि पश्चिमी समाजों में शिक्षा या पश्चिमी परिप्रेक्ष्य में शिक्षा का स्तर एक आर्थिक कारक के साथ निवेश से जुड़ जाती है या यह कहें कि उत्पादन के एक साधन के साथ जुड़ जाती है अतः इतिहास में शिक्षा का स्तर भारतीय एवं पश्चिमी परिप्रेक्ष्य मे अन्तर रखता है। भारतीय विद्यागामी परिप्रेक्ष्य में शिक्षा विद्या और ज्ञान के साथ सहअर्थो में प्रयुक्त होती है अर्थात शिक्षा एक अमूर्त स्वरुप को गृहण करती है परन्तु पश्चिमी परिप्रेक्ष्य में शिक्षा व्यक्तिव विकास के साथ जुड़ती है अतः शिक्षा एक सार्वभौमिक अवधारणा होते हुए भी की समय व स्थान सापेक्ष होती है।

शिक्षा का ऐतिहासिक सन्दर्भ निशचित ही भारतीय शिक्षा प्रणाली के अद्वितीय पक्ष को प्रस्तुत करता हो परन्तु ब्रिटिश शासन या औपनिवेशिक शासन से इसमें परिवर्तन के अंकुर विकसित होने लगे तथा शिक्षा का आधार अध्यात्म, कर्म, ज्ञान, विद्या की अपेक्षा पश्चिमी संस्कृति आधारित होकर निवेश आर्थिकी और व्यवसायिक हो गया है। उत्तर औपनिवेशिक भारत में इस परिवर्तित आयाम को बहुत तीव्रता से गति मिली स्वयं समाजशास्त्री डी.पी.मुकर्जी ने लिखे कि अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली ने भारत में मध्यम वर्ग को उत्पन्न किया जो एक वृहद स्तर पर प्रशासनिक कार्यो को चलाने में, व्यापार को चलान में ब्रिटिश सरकार की सहायता करता था।

भारत एवं यूरोपीयन देशों की ऐतिहासिकता

भारत व यूरोपीयन देशों के मध्य स्थल मार्ग से सम्बन्ध थे लेकिन ये सम्बन्ध अप्रत्यक्ष थे और व्यापारिक थे। कुस्तुतुनिया वर्तमान नाम इन्सताबुल से यह अप्रत्यक्ष सम्बन्ध थें पांचवी से चौदहवीं शताब्दी तक अरबवासियों का अधिकार इस भू भाग पर था तथा वे भारत के व्यापारियों से समान खरीद कर कई गुना कीमत पर यूरोपीयन देशों का बेचते थे । 1453 में इस भूभाग पर तुर्कों का अधिकार हो गया तथा व्यापारिक गतिविधियां इस मार्ग से बन्द कर दी गई ऐसे में यूरोपीयन देशों के बाजारों में एक अनिश्चिता आ गई। यूरोपीयन देशों में स्थल मार्ग का विकल्प समुद्री मार्ग खोजा गया तथा इसी का परिणाम था कि 1498 में समुद्री मार्ग से वास्कोडिगामा भारत में कालीकट नाम स्थान पर आया। पुर्तगाली, स्पेनिश, ब्रिटिश व फ्रासींसी इस क्रम में यूरोपीयन देश भारत में प्रवेश करते है ये आपस में भारत में व्यापारिक हितों के कारण संघर्ष भी करते है लेकिन अन्ततः ब्रिटिश सत्ता भारत में स्थापित होती है। भारत ब्रिटेन का एक उपनिवेश बनता था और इसके पश्चात भारत में एक नये आर्थिक शोषण का दौर शुरू होता है। जिसका प्रारम्भ भारतीय शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन से होता है।

शिक्षा संस्कृति का मजबूत आधार होती है अतः ब्रिटिश राज ने सर्वप्रथम भारत की शिक्षा प्रणाली को अपने अनुरूप बनाने के प्रयास किये अर्थात अंग्रेजी भाषा में शिक्षा प्रणाली स्थापित की जिसका एकमात्र उद्देश्य भारतीयों को अपने व्यापारिक हितो हेतु तैयार करना था क्योंकि वे अधिक संख्या में यूरोप के नागरिको को नही ला सकते थे अतः भारतीयों का अपने अनुरूप तैयार करना अगल लक्ष्य बन गया। भारत में लम्बे समय तक सल्तनत व मुगल काल के कारण पुरातन शिक्षा प्रणाली अपना आधार खो चुकी थी तथा शिक्षा का कोई आधार सल्तनत व मुगल काल में विकसित नहीं हुआ था जिसका लाभ ब्रिटिश शासकों को यह मिला कि उन्होनें अपनी शिक्षा प्रणाली बिना किसी विशेष प्रतिरोध के भारत में स्थापित की। भारतीय को नौकरी प्राप्त करने के लिए अंग्रेजी शिक्षा अनिवार्य कर दी गई थी तथा 1828 में अंग्रेजी को राजकाज की भाषा बना दिया गया। भारतीय नागरिक राजा राम मोहन राय जो इग्लैण्ड में बह्म समाज के संस्थापक थे ने भी अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली को भारतीय समाज में स्थापित करने की वकालत की। इस प्रकार भारत में पश्चिमी शिक्षा पद्धति स्थापित हुई जिसका मूल कार्य व्यापारिक हितों की पूर्ति था।

औपचारिक परिवेश में शिक्षा सामाजिक यथार्थ के सन्दर्भो में

शिक्षा का पश्चिमी आधार शिक्षा को औपचारिक परिवेश की ओर ले जाता है अनौपचारिक परिवेश में व्यक्ति की शिक्षा का प्रथम आधार उसका परिवार होता था उसके पश्चात गुरूकुल होता था। यहीं भारतीय शिक्षा पद्धति का प्राचीन आधार भी रहा है जो कि वर्णाश्रम व्यवस्था जैसे अद्वितीय संस्था के अन्तर्गत आता था। औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली तथा उससे प्रभावित वर्तमान शिक्षा प्रणाली का स्वरूप औपचारिक है इस शिक्षा प्रणाली को तीन स्तरों में वंगीकृत किया गया है,

1.प्राथमिक स्तर

2.माध्यमिक स्तर

3.उच्च शिक्षा

प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थियों को भाषायी ज्ञान एव दैनिक जीवन से सम्बधित शिक्षा उपलब्ध कराती जाती है अर्थात जिज्ञासा, नैतिकता, तार्किकता, राष्ट्रप्रेम, सामाजिक विकास, एवं सामान्य अध्ययन, बाल साहित्य आदि से सम्बधित शिक्षा को पाठ्यक्रम में

शामिल किया जाता है ये सभी तत्व विधार्थी के समग्र विकास से जुड़ते है। भारतीय राष्ट्र में प्राथमिक शिक्षा को लागू करवाना चुनौती पूर्ण है पाठ्यक्रम के अध्ययन से यह तथ्य सामने आया कि राज्य स्तरीय शिक्षा प्रणाली और केन्द्र स्तरीय शिक्षा प्रणाली का असमान चरित्र विरोधाभासों को जन्म देता है उदाहरण के लिए राष्ट्र की संस्कृति की बात की जाए तो वर्तमान में 4635 सम्प्रदाय या समूह भारतीय समाज में अपना अस्तित्व रखते है राज्य स्तरीय पाठ्यक्रमों में स्थानीय संस्कृति गौण होती है तथा यहीं चरित्र केन्द्रीय स्तरीय पाठ्यक्रमों का रहा है कि उनमें राज्य स्तरीय संस्कृति गौण हो जाती है अपने सामाजिक अनुसन्धान के समय जब लेखक ने कक्षा 8 के विधार्थियों से त्रिपुरा की राजधानी जाननी चाही तो उनका जवाब था कि हमें हमारे अध्यापक ने दूसरे देशों की राजधानियों के नाम नहीं बतलाये है अतः यहाँ यह स्पष्ट होना स्वभाविक है कि किस तरह भारत के पूर्वोत्तर प्रदेशों या राज्यों की अवहेलना पाठ्यक्रम में की जाती है तथा विद्यार्थियों अपने राज्यों को दूसरा देश समझते है।

माध्यमिक शिक्षा स्तर के अन्तर्गत दो बड़े उपस्तर है जिनमें पहला तो सैकण्डरी स्तर तथा दूसरा उच्च सैकण्डरी स्तर। सैकण्डरी स्तर तक की शिक्षा प्राथमिक शिक्षा तक के स्तर को व्यापकता और विशालता प्रदान करती है तथा शिक्षा पाठ्यक्रम को एक निश्चित दिशा देने का प्रयास करती है ताकि विद्यार्थी भविष्य में यदि किसी क्षेत्र को चुनना चाहता है तो उसकी सहायता यह स्तर करें। उच्च सैकण्डरी स्तर विद्यार्थी का प्रथम वैकल्पिक स्तर होता है जहां उसे चुनाव करना पड़ता है कि वह अपनी प्राथमिक शिक्षा और सैकण्डरी स्तर तक की शिक्षा के आधार पर किस क्षेत्र में अपनी योग्यता को सुचारू रुप से और विकसित कर सके तथा अपना, अपने आश्रितों और अपने राष्ट्र को एक नई दिशा प्रदान कर सके अतः यह स्पष्ट होना भी स्वभाविक कि उच्च सैकण्डरी स्तर शिक्षा के औपचारिक परिवेश में बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है। लेखक ने अपने आनुभाविक अनुसन्धान में यह पाया कि विद्यार्थी अपनी माध्यमिक शिक्षा स्तर की अंकतालिका के आधार पर ही यह निर्णय ले लेता है कि उसे किस सकांय को चुनना है। उदाहरण के लिए विज्ञान या गणित विषयों में प्राप्तांक अच्छे है तो वह विज्ञान संकाय को चुनता है यदि इनमे कम अंक प्राप्तांक है तो वह कला संकाय को चुनता है तथा यदि परिवार वाणिज्ययिक गतिविधियों में या व्यवसाय से सम्बधित है तो वाणिज्य संकाय के चुनाव का आधार करता है।

उच्च सैकण्डरी स्तर पर भारत में एक और कारक प्रभावी है वह है जातीय प्रतिमान, यदि अपवादों को छोड़ दे तो यह तथ्य भी सामने आता है कि विज्ञान और वाणिज्य संकाय के चयन से मुख्यतः उच्च जातियां जुड़ जाती है तथा कला संकाय के साथ निम्न जातियां जुड़ जाती है हांलाकि संरक्षणात्मक मूलक भेदभाव के आधार पर इस प्रारुप में विकृतियां आ गयी है परन्तु शीर्षता का निर्धारण जातीय प्रतिमान ही करते है । जातीय प्रतिमान के साथ ही तीसरा महत्त्वपूर्ण कारक जो शिक्षा के औपचारिक परिवेश को प्रभावित करता है वह है आर्थिक। विज्ञान व वाणिज्य संकाय की शिक्षा जब निजी शिक्षण संस्थानों से जुड़ जाती है तो वह आर्थिक भार से युक्त होती है जबकि कला संकाय की शिक्षा के साथ ऐसा नहीं होता है अतः शिक्षा के उच्च सैकण्डरी स्तर को विधार्थी के औपचारिक एवं अनौपचारिक संस्थाऐं प्रभावित करती है अतः शिक्षा का आधार सामाजिक न होकर असमाजिक बन जाता है।

सैकण्डरी स्तर के पश्चात उच्च शिक्षा का स्तर शुरु होता है यह स्तर भी विद्यार्थियों को विकल्प का आधार देता है परन्तु यह आधार अवरोही क्रम का होता है। यह स्तर राष्ट्र निर्माण की अवधारणा के साथ भी जुड़ जाता है । इस स्तर में विधार्थी असंमजस की स्थिति में भी रहता है ऐसा इसलिए होता है कि इस स्तर की शिक्षा को मुख्यतः वाणिज्यिक शिक्षा, डिग्री शिक्षा और आगे शोध शिक्षा के साथ जोड़ा जाता है तथा भारत में इसी स्तर मे ंव्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है क्योंकि उच्च शिक्षा समाज के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका रखती है, समाज की पथ प्रदर्शक होती है।

भारत में उच्च शिक्षा का स्तर 1950 से लगभग 1990 तक कम संख्या के कारण संतोषजनक माना गया परन्तु इसके पश्चात इस स्तर में एक तरह से संख्यात्मक क्रान्ति आ गयी तथा जो योग्य है और जो योग्य नहीं है वह भी इस स्तर में प्रवेश कर गया जिसका परिणाम यह हुआ यह कि उच्च शिक्षा का गुणात्मक स्तर कमजोर होने लगा। उच्च शिक्षा स्नातक से शुरू होकर शोध तक जाती है जिसका विस्तार अनन्त है उत्तर औपनिवेशिक भारत में प्रथम 50 वर्षो तक उच्च शिक्षा विशेषकर सरकारी क्षेत्र का ही हिस्सा रही थी जिसमें भी शोध के स्तर पर पर गुणवत्ता थी लेकिन 21 वीं शताब्दी की शुरूआत एवं वैश्वीकरण ने उच्च शिक्षा को निजी संस्थाओं के लिए खुलवा दिया जिसका प्रभाव उच्च शिक्षा की गुणवत्ता पर नकारात्मक पड़ा, उच्च शिक्षा का व्यापारीकरण आरम्भ हो गया। निजी संस्थाओं ने अनुभवी एवं योग्य शिक्षकों एवं शोधकत्ताओं को अपने संस्थानों में उच्च वेतन पर रखा तथा शिक्षा को आर्थिक लाभ प्राप्ति के साधन के रूप

स्थापित कर दिया जिससे उच्च शिक्षा मे भी व्यापारीकरण आ गया यहां यह तथ्य भी सामने रखना आवश्यक होगा कि (इक्कीसवी सदीं में प्रत्येक संस्था बाजारवाद के प्रभाव में आ गयी है तो उच्च शिक्षा कैसे बच सकती है) सरकारी शिक्षण संस्थाओं में तथा सरकारी अनुदान प्राप्त शिक्षण संस्थाओं में संकाय सदस्यों का स्तर भी बाजारवाद की प्रणाली ने गिरा दिया ।

स्नातक एवं परास्नातक स्तर की उच्च शिक्षा केवल और केवल रोजगार प्राप्त करने से जुड़ती है जबकि एम.फिल एवं पीएच.डी. का स्तर रोजगार के साथ साथ शोध से भी जुड़ा हुआ है जिसका आशय है शिक्षा के विकास के साथ भी जुड़ा हुआ है। इसलिए इस स्तर में विशेष छात्रवृत्तियों की व्यवस्था भी की गई है इन छात्रवृत्तियों की व्यवस्था के पश्चात भी अच्छे परिणाम सामने नहीं आ रहे है। शोधार्थी के शोध कार्य पर प्रभावी नियंत्रण स्थापित नहीं किया जा सका है। छात्रवृत्तियों का भी उपयोग पूर्ण रूप से शोध कार्य में नहीं होकर व्यक्तिगत विकास के लिए किया जा रहा है जबकि उच्च शिक्षा में शोध का स्तर सामाजिक विकास से जुड़ता है। शोध भी शिक्षा का उच्च स्तर होने के कारण एक द्विमार्गी प्रकिया है जिसमें एक स्तर पर शोधार्थी होता है तथा दूसरे स्तर पर शोध पर्यवेक्षक होता है, दोनों स्तर पर पूर्ण संतुलन ही शोध के लिए आवश्यक है एक स्तर की कमजोरी भी शोध की गुणवत्ता का पतन कर देती है वर्तमान में दोनों ही स्तरों का पूर्ण संन्तुलन दिखाई नहीं देता है।

उच्च शिक्षा में शोध के स्तर पर छात्रवृत्तियों की निरन्तर बढ़ती संख्या ने शोध कार्यो की गुणवत्ता को निशचित ही कमजोर किया है जिसका परिणाम वैश्विक स्तर पर भारत के उच्च शैक्षणिक संस्थाओं की रैकिंग में गिरावट के साथ सामने आता है। दूर दृष्टि के आधार पर उच्च शिक्षा में शोध कार्य का मूल्यांकन करे तो हमें इस तथ्य को भी भंलीभांति समझना होगा कि हमें अधिक शोध की नहीं अपितु अच्छे शोध की आवश्यकता है। शोध के स्तर में सकारात्मक परिवर्तन ही मानवीय समाज व्यवस्था को स्थापित करेगा।

भारत में शोध के स्तर की प्राचीन कालीन व्याख्या की जावे तो हमें इस तथ्य को स्वीकार करना होगा कि शोध आध्यात्मिकता से जुड़ी अवधारणा थी। विज्ञान, वाणिज्य एवं कला मानव जीवन के व्यक्तिगत एवं सामाजिक मूल्यों से जुड़ते है जबकि आध्यात्मिक स्तर इन्हें अपने अनुकूल नहीं मानकर इनसे दूरी बनाता है । सरकारें भी अपना वित्तीय बोझ कम करने के लिए निजी विश्वविद्यालय को एक नीति के तहत अधिक संख्या में खोल रहीं है इसके साथ ही सरकारी अनुदान प्राप्त शिक्षण संस्थाओं में अनुदान की मात्रा कम की जा रही है तथा उन्हें स्वायत्ता का दर्जा भी प्रदान कर रही है उच्च शिक्षा के प्रति सरकारी की निजीकरण की नीति भी उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को कमजोर करती है तथा शिक्षा को एक सामाजिक संस्था के स्थान पर एक आर्थिक संस्था के रूप में स्थापित हो जाती है।

शोध विशिष्ट व्यक्तियों का विशिष्ट प्रयास (तप) है जो समाज के विकास के साथ किसी भी संकीणताओं को ना मानते हुए किया जाता है। शताब्दियों में यदि हम एक आइन्सटीन, न्यूटन, एडीसन भी बना पाये तो यह मानव कल्याण ही होगा हमें ये अधिक संख्या में नहीं चाहिए। जिस प्रकार एक कुशल सैनिक की तलवार, भाला या अन्य कोई हथियार उसके शरीर का एक भाग बन जाता है तथा उसके हथियार की हल्की सी विफलता उस कुशल सैनिक की मृत्यु का कारण बन जाती है उसी प्रकार शोध भी शोधार्थी के जीवन का भाग बनना चाहिए अन्यथा शोध की कमजोरी शोधार्थी को कमजोर भले न करे समाज को कमजोर अवश्य कर देगी। महान गणितज्ञ रामानुज अयंगर वैज्ञानिक विक्रम साराभाई एवं ए.पी.जे.अब्दुल कलाम आदरणीय शोधार्थियों में अपना स्थान बनाते है तथा भारतीय समाज में वास्तविक सामाजिक विकास की राह भी दिखलाते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *भट्टाचार्य,श्रीनिवास : सोश्यालोजी फाउन्डेशन ऑफ एजुकेशन, नई दिल्ली, एन्टलांटिक पब्लिशर्स एन्ड डिस्टीब्यूटर्स, (2002)।*
2. *जॉन डीवी : डेमोक्रेसी एण्ड एजुकेशन, न्यूयार्क, मैकमिलन कम्पनी, (1916)।*
3. *जॉन डीवी : द स्कूल एण्ड सोसायटी, शिकागो,यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, (1889)।*
4. *एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोश्यल सांइसेस वोल्यूम 4, पेज 510–512*
5. *कृष्ण,कुमार : पोलिटीकल ऐजेन्डा ऑफ एजुकेशन, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन,(1991)।*
6. *योजना : शिक्षा सफलता का मंत्र, जनवरी 2016।*

जैनेन्द्र कुमार के 'सुनीता' उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभावः एक अध्ययन

shodhshree@gmail.com

डॉ. उमेश कुमार शर्मा
सहायक आचार्य, एस.एस. जैन सुबोध स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जयपुर

शोध सारांश

उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार का हिन्दी उपन्यास जगत् में महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने कई उपन्यासों की रचना की है। जिनमे 'सुनीता' भी एक प्रमुख उपन्यास है । 'सुनीता' उपन्यास रवीन्द्रनाथ टैगोर के उपन्यास 'घरे–बाइरे' (घर और बाहर) से प्रभावित तो है ही, साथ ही उस पर पाश्चात्य उपन्यासकार डी.एच. लारेन्स के उपन्यास 'लेडी चैटर्लीज लवर' का भी खासा प्रभाव है। जैनेन्द्र के 'सुनीता' और लारेन्स के 'लेडी चैटर्लीज लवर' के कथानक और घटनाक्रम में एक ऐसा साम्य मिलता है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती । हिन्दी के अन्य उपन्यासकारों पर भी हमें यह पाश्चात्य प्रभाव देखने को मिलता है। इस प्रभाव को हमें सहजता से लेना चाहिए। क्योकि साहित्य में आदान–प्रदान का भाव चलता रहता है, और चलता रहना भी चाहिए।

संकेताक्षर : *गांधीवादी दर्शन, सत्य, अहिंसा, पाश्चात्य, वैयक्तिक यर्थाथ, अमानवीय, मनोविज्ञान, फ्रायडवादी, ग्रन्थि, तात्कालिक, एकरसता, अश्लील, काव्यमय, आत्मीयता, परवर्ती।*

मुंशी प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कहानी एवं उपन्यास को सर्वथा नई दिशा की तरफ मोड़ने का श्रेय जैनेन्द्र कुमार को है। सन् 1905 में अलीगढ़ के कौडियागंज में जन्में जैनेन्द्र कुमार की शिक्षा गुरुकुल तथा काशी विश्वविद्यालय में हुई, किन्तु महात्मा गांधीजी का देशव्यापी आन्दोलन उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने लगा और अन्ततः वे गांधीवादी दर्शन के रंग में रंग गये। गांधीजी के सत्य एवं अहिंसा जैसे सिद्धान्त उनके व्यक्तित्व के अंग बन गये। जैनेन्द्र के साहित्य की पृष्ठभूमि बहुत कुछ इसी दर्शन द्वारा निर्मित हुई है। जैनेन्द्र के प्रमुख उपन्यास निम्न हैं– परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, विवर्त, जयवर्धन, व्यतीत, मुक्तिबोध, अनन्तर और अनामस्वामी। ये उपन्यास हिन्दी उपन्यास को नई दिशा प्रदान करने वाले उपन्यास हैं।

जैनेन्द्र कुमार अपने आदर्शवाद के कारण इलाचन्द्र जोशी और भगवतीचरण वर्मा से नितान्त भिन्न हैं और वे प्रेमचन्द परवर्ती युग में प्रेमचन्द युग के ही विस्तार हैं तथा उनकी एक पृथक दृष्टि है जो उन्हें प्रेमचन्द से पृथक करती है। जैनेन्द्र सामाजिक यथार्थ पर आदर्श का आलेपन न कर वैयक्तिक यथार्थ को इसका आधार बनाते हैं। इस परिप्रेक्ष्य से वे प्रेमचन्द युग के न होकर परवर्ती युग के ही ठहरते हैं। जिसमें जोशी व वर्मा का कृतित्व फलता–फूलता है। इस प्रकार जैनेन्द्र दो युगों के सेतु का कार्य करते हैं और सन्धिकाल (1929–1936) के सर्वप्रमुख उपन्यासकार ठहरते हैं। गांधीवादी दर्शन को कसौटी बनाकर अपने जैन संस्कारों के कारण जैनेन्द्र का दार्शनिक पक्ष ही अधिक स्वीकार्य हुआ है। जैनेन्द्र कुमार उपन्यासकार अथवा कथाकार ही नहीं हैं, वे तत्व चिंतक भी हैं और यथार्थ का मंथन वे तत्व की भूमि पर ही करते हैं। उन्होंने रवीन्द्रनाथ, शरतचन्द्र प्रभृति बंगला साहित्यकारों के अतिरिक्त टॉल्सटाय का विशेष रूप से अध्ययन किया और उनकी रचनाओं के अनुवाद भी किये।

'सुनीता' उपन्यास के सम्बन्ध में लेखक की प्रभाव स्वीकृति का एक परिणाम यह भी हुआ है कि उस पर अन्य किसी प्रभाव की छानबीन नही हुई है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 'घरे–बाइरे' 1914–15 के आस–पास रचा था और उसके द्वारा तत्कालीन बंग आतंकवादी राजनीतिक कर्मियों के पाखण्ड, अवसरवाद और अमानवीयता पर प्रहार किया था। इसमें

सन्देह नही है कि अपने चरित्र–चित्रण में रवीन्द्र ने अपनी जन्मजात प्रतिभा के बल पर मनोवैज्ञानिकता का भरपूर उपयोग किया है, यथापि उसमें सिगमंड फ्रायड अथवा फ्रायड़वादी पाश्चात्य उपन्यासों की कोई गंध नहीं है। भारत में इन दोनों का आगमन प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त ही हुआ था, और हिन्दी में तो सन् 1925–26 के आसपास। 'सुनीता' के सम्बन्ध में रवीन्द्रनाथ के उपन्यास 'घरे–बाइरे' (घर और बाहर) का उल्लेख तो स्वयं जैनेन्द्र ही कर चुके हैं'बेशक जो 'घर और बाहर' में है वही 'सुनीता' (1935) में भी है। वही समस्या है। अनजाने ऐसा नहीं हो गया है, जानबूझकर ऐसा हुआ है।'[1] पर सुनीता' उपन्यास में आतंकवादी हरिप्रसन्न के होते हुए भी उसका मुख्य प्रतिपाद्य सुनीता का पातिव्रत्य ही है जिस पर हरिप्रसन्न के चरित्र में मानसिक ग्रन्थि का समावेश करके उसे मानवीय और कहीं–कहीं दयनीय तो बना दिया गया है, उपन्यास के चरित्र–चित्रण में फ्रायड के मनोविश्लेषण का भी सहारा लिया गया है। हरिप्रसन्न और सुनीता दोनों आत्म–मन्थन से विचलित हैं और उनके कारण उपन्यास निरन्तर डगमगाता–सा जान पड़ता है। वस्तुतः यह मंथन कृति के मध्यभाग में इतना स्थान घेर लेता है कि श्रीकान्त का आदर्शवाद एक कोने में पड़ जाता है और कृति किसी अन्य ही दिशा में धावित होने लगती है। इसीलिए मन की इस उथल–पुथल के उपरान्त सुनीता जब अकस्मात् निर्वसन होकर कृति को पुनः आदर्शवाद की ओर ढकेलती है तो न तो उसका कृत्य ही प्रामाणिक ठहरता है न उसका वक्तव्य– ''क्या चाहते हो, हरीबाबू? मुझे ही चाहते हो न? वह तो साड़ी है; मैं नहीं हूँ। मैं यह हूँ।''

'और यह कहते–कहते साड़ी बिल्कुल अलग कर दी।'[2] लगता है कि पूरी रचना में लेखक अपने 'परख' प्रमाणित आदर्शवाद और सद्य अर्जित मनोविश्लेषण – विज्ञान के विरोधी चापों से घिरकर बीच–बीच में भटकने लगता है। वह जैसे नाना पगडण्डियों में थोड़ी–थोड़ी दूर चलकर लौट आता है (हरिप्रसन्न द्वारा धन की याचना, सत्य की शिक्षा आदि) और अन्त तक अपनी दिशा निश्चित नहीं कर पाता, न अपना लक्ष्य निश्चित कर पाता है। और यह मनस्तत्व केवल शास्त्र से प्राप्त नहीं है। डी.एच. लारेन्स का उपन्यास 'लेडी चैटर्लीज लवर' पाश्चात्य जगत् में तहलका मचाकर भारत में उन्हीं दिनों आया था और जैनेन्द्र ने उसका एक पेरिस संस्करण पढ़ा था। (इंगलैण्ड में उसका प्रकाशन वर्जित हो गया था।) 'लेडी चैटर्लीज लवर' में यौन–सम्बन्ध का जो ऊहापोहात्मक स्वीकार था उसकी छाया हरिप्रसन्न और सुनीता के व्यवहार में मिलती है और सुनीता के निर्वसन होने में उपन्यासकार की तात्कालिक प्रतिक्रिया ही है, मानों उपन्यास को उस स्थल पर लाकर लेखक किंचित आशंकित हो उठा हो और चट से मुड़ गया हो। इस दृष्टि से हम श्रीकान्त के आदर्शवाद को भी समझ सकते हैं। लेखक ने उसे पहले से एक निश्चित रूप दे दिया है ताकि जब अपने विचित्र अनुभव के उपरान्त सुनीता घर लौटे तो वह उस परितप्ता को क्षमा करने के लिए सस्मित प्रस्तुत रहे। पर लेखक के हाथ से सुनीता छिटक कर अपने संस्कारवश अस्वीकार की प्रतिक्रिया दे बैठती है, और वह आदर्शवाद व्यर्थ की स्तुति में परिणत हो जाता है। (अवर क्वीन कैन डू नो रोंग[3])। यह वाक्य अतिरिक्त है क्योंकि सुनीता ने कोई 'भूल' की ही नहीं है, उसका मन तो संस्कार से बंधा ही है उसका तन भी चरम क्षण में संस्कार–बद्ध रह गया है।

जैनेन्द्र कुमार डी.एच. लारेन्स के प्रभाव का स्पष्ट निषेध करते हैं, कदाचित् इस कारण कि इन दो उपन्यासकारों के मन्तव्य और उद्देश्य निश्चित ही दो विपरीत ध्रुवों पर आधारित है। तथापि 'सुनीता' और 'लेडी चैटर्लीज लवर' के कथानक अथवा घटनाक्रम में एक ऐसा साम्य मिलता है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'सुनीता' रवीन्द्रनाथ के 'घरे–बाइरे' की प्रतिक्रिया में लिखा गया था और 'सुनीता' की बहुत–सी सामग्री लेखन ने वहीं से प्राप्त की है। पर 'घरे बाइरे' की कथा बारी–बारी से उसके प्रमुख पात्रों की आत्मकथा के रूप में उपस्थित की गई है। अतः उसमें घटना संयोजन 'सुनीता' से नितान्त भिन्न प्रकार का है। 'सुनीता' का कथानक तो 'लेडी चैटर्लीज लवर' से ही प्रभावित जान पड़ता है। यद्यपि जैनेन्द्र का उद्देश्य लारेन्स के विपरीत तन के मिलन का प्रत्याख्यान करना ही है, परन्तु वह प्रत्याख्यान सशक्त और प्रभावी बनता है तो केवल इसलिए कि वह लारेन्स की कृति के प्रत्यक्षीकरण का सहारा लेता है। परिणति में भिन्न होने पर भी उनका घटनाक्रम समानान्तर है। 'लेडी चैटर्लीज लवर' में लेखक रेग्बी सियासत के स्वामी विलफोर्ड और उनकी शिक्षिता सुसंस्कृता युवती पत्नी कान्स्टेन्स (कोनी) की पृष्ठभूमि, वंशागति एवं मनोदशा का वृतान्त उपस्थित करने के उपरान्त रियासत के पशु–रक्षक (गेमकीपर) मैलोर्स की अवतरणा करता है। कोनी उसके प्रति जिज्ञासु होती है, उसके काम की जानकारी में रूचि लेती है और फिर लेखक मानो उनके बीच से हट जाता है कोनी का पति अपाहिज होने के कारण अधिकतर अपने कमरे में बन्द रहने को बाध्य है। और कोनी एवं मैलोर्स का उद्दाम भौतिक प्रेम पूरे उच्छवास एवं तन्मयता से चित्रित होता है। उसी प्रकार 'सुनीता' में भी जैनेन्द्र पहले श्रीकान्त

एवं सुनीता की पृष्ठभूमि उपस्थित करते हैं, उनकी पारिवारिक एकरसता को रेखांकित करते हैं और तब हरिप्रसन्न का आगमन होता है। प्रारम्भ में जैसे मेलोर्स कोनी की उपेक्षा करता है, वैसे ही हरिप्रसन्न सुनीता की। पर सुनीता हरिप्रसन्न में रूचि लेने लगती है, और धीरे-धीरे उन दोनों के बीच से लेखक हट जाता है और सुनीता का पति श्रीकान्त (अपाहिज तो हो नही सकता) यात्रा पर लौहार चला जाता है। फलतः सुनीता और हरिप्रसन्न अपने आपको आमने-सामने पाते हैं। लारेन्स ने कोनी और मेलोर्स के मिलन अभिसारों का अत्यन्त सूक्ष्मदर्शी, कव्यात्मक एवं विवृत्तिपूर्ण वर्णन किया है, मन की एक-एक भावलहरी और तन की एक-एक मुद्रा को इतनी मार्मिकता से उकेरा है कि उन्मुक्त से उन्मुक्त क्षण भी अश्लील नहीं बनता। गुप्तांगों का प्रकट उल्लेख और रतिक्रिया का ऐसा निस्संकोच वर्णन अन्य किसी भी लेखक में नहीं मिलता और उसी के कारण यह कृति स्वयं इंगलैण्ड में भी कई दशाब्दों तक निषिद्ध रही थी। पर लारेन्स का गुण यही है कि वे समग्र और सम्पूर्ण वर्णन करते हैं खण्ड वर्णन ही कृति में अश्लीलता का कारण बनता है। जैनेन्द्र ने भी सुनीता और हरिप्रसन्न के विचित्र नैश अभिसार का ऐसा ही मार्मिक और विवृत्तिपरक चित्रण किया है। तथापि जैनेन्द्र का उद्देश्य वासना का प्रकृत, काव्यमय रूप अंकित करना नहीं है, अतः जब वे इस दृश्य में लारेन्स के से लाधव से काम लेते हैं तो सम्भवः इसीलिए कि पात्रों के मन की उथल-पुथल स्थापित हो सके। किन्तु जैनेन्द्र चरम क्षण पर पहुंचकर झिझक जाते हैं और उसकी पूरी शक्ति का उपयोग करने से चूक जाते हैं। 'सुनीता' को बार-बार पढ़ने पर यही लगता है कि इस स्थल पर कुछ अंश लिखने या छपने से छूट गया है। 'लेडी चैटर्लीज लवर' में ऐसे रति प्रसंग अनेक हैं और लारेन्स, कोनी एवं मेलोर्स की प्रणयकथा को परित्याग एवं परिणय तक पहुंचाकर ही दम लेते हैं। जैनेन्द्र अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए सुनीता को घर लौटा लाते हैं। लारेन्स में ये मिलनक्षण स्थायी सुख के आधार पर बनते हैं, जैनेन्द्र में यह अभुक्त और अपूर्ण मिलनक्षण दुःखद स्मृति ही बनकर रह जाता है। इस क्षण के चित्रण में जैनन्द्र ने जिन वाक्यों का प्रयोग किया है उनकी शब्दावली भी अचानक लारेन्स की शब्दावली से मिल जाती है। यथाः 'हरिप्रसन्न ने कहा,' तुम लेट जाओ, सुनीता'।....... और सुनीता लेट गई।'[4] ठीक यह वाक्य लारेन्स में हैः 'तुम लेट जाओ', उसने धीम से कहा।..... और एक विचित्र आज्ञाकारिता से वह कम्बल पर लेट गई।'[5] इसी प्रकारः 'किन्तु लहक तो लहकती ही गई। फिर वह पास आ बैठा। धीमे से उसके हाथ को उठाया और मुँह से लगाया। शनैःशनैः फिर सुनीता की देह पर अपने हाथ फेरना शुरू किया। मद जैसे उस पर चढ़ता ही जाता था।...... धीरे-धीरे सुनीता ने आँखें खोली। नहीं, उसने आँख नहीं खोली। वह अपने शरीर पर आहिस्ता-आहिस्ता फिरते हुए इस पुरूष के हाथ का स्पर्श अनुभव करने लगी। कुछ देर तो वह यों ही पडी रही। फिर आँख खोलकर मानों कूंजकर कहा, 'हरिबाबू'।[6] डी.एच. लारेन्स ने भी ऐसा ही लिखाः 'तब उसने अपनी देह का स्पर्श करते हुए उसके कोमल, कामविवश, अधीर हाथ का अनुभव किया जो उसका चेहरा टटोल रहा था। वह हाथ उसके चहरे को आहिस्ता-आहिस्ता अत्यन्त शान्ति और आश्वासन से थप-थपाने लगा। ..... वह चुपचाप लेटी थी, एक प्रकार की निद्रा में, एक प्रकार के स्वप्न में। तब वह सिहर उठी। उसने अनुभव किया कि वह हाथ आहिस्ता-आहिस्ता, फिर भी अजीब से झिझकते बेढंगेपन से उसके वस्त्रों को टटोल रहा है।'[7] परन्तु यहां तक समानान्तर आकर अगले ही क्षण यह वर्णन इन दो कृतियो में नितान्त भिन्न रूप से उठता है। लारेन्स में वह अपने स्वाभाविक विकास की ओर अग्रसर होता है, जैनेन्द्र में वह अचानक ठिठककर पलट जाता है, मानों लेखक ने बरबस अपने आप पर अंकुश लगा लिया हो। जैनेन्द्र ने सुनीता के स्वर का चित्रण करते हुए 'कूजने' की बात कही है जो गहन सुख और आत्मीयता का ही बोधक है। परन्तु परवर्ती चित्रण इसका साथ नहीं देता लगता। इसी कारण यह मोड़ पाठक को अत्यन्त अस्वाभाविक लग उठता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनेन्द्र कुमार पाश्चात्य उपन्यासकार डी.एच. लारेन्स, लियो टॉल्सटाय आदि से प्रभावित थे। उनके उपन्यासों का प्रभाव भी जेनेन्द्र कुमार के लेखन पर देखने को मिलता है साथ-साथ ही अन्य साहित्यकारों पर भी हमें यह प्रभाव दिखलाई देता है। इस प्रभाव को सहजता से लेना चाहिए, क्योंकि साहित्य में आदान-प्रदान का भाव चलता रहता है। और चलता रहना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *जैनेन्द्र के विचार– जैनेन्द्र कुमार : पृष्ठ 58*
2. *सुनीता : जैनेन्द्र कुमार : पृष्ठ 208*
3. *सुनीता : जैनेन्द्र कुमार : पृष्ठ 215*
4. *सुनीता : जैनेन्द्र कुमार : पृष्ठ 232*
5. *लेडी चैटर्लीज लवर : डी.एच. लारेन्स, पृष्ठ 106*
6. *सुनीता : जैनेन्द्र कुमार : पृष्ठ 235*
7. *लेडी चैटर्लीज लवर : डी.एच. लारेन्स : पृष्ठ 106*

भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के राज्यवार अन्तर्प्रवाह के आर्थिक प्रभावों का मात्रात्मक विश्लेषण

shodhshree@gmail.com

परवेज अली
शोधार्थी,गोविन्द गुरु जनजातीय विश्वविद्यालय,बांसवाड़ा
डॉ. कैलाश चन्द नायमा
शोध निदेशक,राजकीय महाविद्यालय,डूंगरपुर

शोध सारांश

जुलाई 1991 की नई आर्थिक नीति की घोषणा के पश्चात् अर्थव्यवस्था का शायद ही ऐसा कोई क्षेत्र रहा होगा जिस पर उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण का प्रभाव न पड़ा हो। नई आर्थिक नीति ने अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान करने के साथ–साथ भारतीय एवं विदेशी निवेशकों को नए अवसर प्रदान किए। वर्ष 1991 के बाजारोन्मुख आर्थिक सुधार, बढ़ता उदारीकरण निजीकरणएवं वैश्वीकरण, औधोगिक क्षेत्र का विनियमन, व्यापार बाधाओं को कम कर अर्थव्यवस्था को वैश्विक प्रतिस्पर्धा की ओर उन्मुख करना तथा पूंजी खाते को धीरे–धीरे विदेशी निवेश के लिए खोलने से भारत विदेशी निवेशकों हेतु निवेश के लिए अनुकूल गन्तव्य साबित हुआ है। इस प्रकार, विदेशी निवेश से भारत निःसंदेह एक तेजी से बढ़ती हुई विकासशील अर्थव्यवस्था के रुप में उभरा है।

संकेताक्षर : *नई आर्थिक नीति, विदेशी निवेश, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, अन्तर्प्रवाह, मात्रात्मक विश्लेषण।*

किसी देश की अर्थव्यवस्था में विदेशी निवेशकों द्वारा किया गया निवेश प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष दो रूपों में हो सकता है। जब विदेशी निवेशकों द्वारा किसी देश की भौतिक सम्पदा जैसे कारखाने, भूमि, पूंजीगत वस्तुऐं तथा आधारित संरचना वाले क्षेत्रों में निवेश किया जाता है तो इसे विदेशी प्रत्यक्ष निवेश कहा जाता है। इसी प्रकार,विदेशी निवेशकों द्वारा देश की वित्तीय परिसंपत्तियों जैसे अंश, अनुबंध पत्र, ऋण पत्र तथा अन्य प्रतिभूतियों में निवेश किया जाता है तब इसे विदेशी परोक्ष निवेश कहते है। विदेशी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष दोनों ही प्रकार के निवेश बहुराष्ट्रीय कंपनियों एवं विदेशी निवेशकों द्वारा किये जाते है।विदेशी निवेश से देश के उद्योग धन्धों में प्रतिस्पर्धा एवं गुणवत्ता बढ़ती है जिसके फलस्वरूप घरेलू एकाधिकार समाप्त होता है और देश के भीतर वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों में कमी आती है।

भारत सरकार ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विदेशी निवेश को देश के आर्थिक विकास हेतु घरेलू बचत के अनुपूरक के रूप में पहचाना और वर्ष 1972 में पूर्ण विदेशी निवेश की अनुमति प्रदान की परन्तु, प्रतिबंधात्मक सरकारी नीतियों के फलस्वरूप वर्ष 1990 तक विदेशी निवेश का स्तर निम्न रहा है।भारत में विदेशी मुद्रा विनिमय अधिनियम के अन्तर्गत ईक्विटी में विदेशी हिस्सेदारी की सीमा को अधिकतम 40 प्रतिशत रखना, विदेशी निवेश स्वीकृति की लम्बी प्रक्रिया और अर्थव्यवस्था के अनेक क्षेत्रों में विदेशी भागीदारी को प्रतिबंधित करना आदि प्रमुख ऐसे कारक रहे जिन्होंने विदेशी निवेश अन्तर्प्रवाह को हतोत्साहित किया है।संक्षेप में,स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग चार दशकों तक विदेशी निवेश का अर्न्तप्रवाह धीमा एवं कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित रहा है।

जुलाई 1991 की नई आर्थिक नीति की घोषणा के पश्चात् अर्थव्यवस्था का शायद ही ऐसा कोई क्षेत्र रहा होगा जिस पर उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण का प्रभाव न पड़ा हो। नई आर्थिक नीति ने अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान करने के साथ–साथ भारतीय एवं विदेशी निवेशकों को नए अवसर प्रदान किए। वर्ष 1991 के बाजारोन्मुख आर्थिक सुधार, बढ़ता उदारीकरण निजीकरण एवं वैश्वीकरण, औद्योगिक क्षेत्र का विनियमन, व्यापार बाधाओं को कम कर अर्थव्यवस्था को वैश्विक प्रतिस्पर्धा की ओर उन्मुख करना तथा पूंजी खाते को धीरे–धीरे विदेशी निवेश के लिए खोलने से भारत विदेशी निवेशकों हेतु निवेश के लिए अनुकूल गन्तव्य साबित हुआ है। इस प्रकार, विदेशी निवेश से भारत निःसंदेह एक तेजी से बढ़ती हुई विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में ऊभरा है।

भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह ने पिछले लगभग ढ़ाई दशकों के दौरान उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारतीय रिजर्व बैंक के विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह बुलेटिन पर एक दृष्टि डाले तो भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह वर्ष 1991–92 में 129 मिलियन डॉलर से बढ़कर वर्ष 2015–16 में 39328 मिलियन डॉलर हो गया है। विगत पच्चीस वर्षो की उक्त अवधि में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह की यह वृद्धि 236.33 प्रतिशत रही अर्थात् विगत पच्चीस वर्षो में देश में लगभग 9.45 प्रतिशत औसत वार्षिक वृद्धि के साथ विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का अन्तर्प्रवाह बढ़ा है।

भारत सरकार के औद्योगिक नीति एवं संवर्द्धन विभाग के अनुसार मॉरीसस, सिंगापुर, जापान, युनाइटेड़ किंगडम, नीदरलैण्ड़, संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, साइप्रस, फ्रांस एवं संयुक्त अरब अमीरात आदि भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश करने वाले प्रमुख राष्ट्र है। इसी विभाग के प्रतिवेदन के अनुसार देश में महाराष्ट्र दादर व नागर हवेली एवं दमन व दीव, दिल्ली, उत्तरप्रदेश का कुछ भाग एवं हरियाणा, तमिलनाडू एवं पाण्डिचेरी, कर्नाटक, गुजरात, आन्ध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल सिक्किम एवं अण्डमान व निकोबार, केरल, लक्षद्वीप, राजस्थान, मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ आदि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाहकों लुभाने वाले प्रमुख राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेश है। भारतीय रिजर्व बैंक बुलेटिन मई 2019 के अनुसार देश के सेवा क्षेत्र, कम्प्यूटर हार्डवेयर एवं सॉफ्टवेयर क्षेत्र, दूरसंचार क्षेत्र, निर्माण हाउसिंग रियल स्टेट एवं आधारभूत संरचना क्षेत्र, ऊर्जा क्षेत्र, ऑटोमोबाईल उद्योग, ड्रग एवं औषधीय निर्माण उद्योग, रसायन उद्योग तथा पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस तथा मेटालरजिकल उद्योग विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाहको लुभाने वाले प्रमुख क्षेत्र है। भारत सरकार के औद्योगिक नीति एवं संवर्द्धन विभाग के प्रतिवेदन में वर्णित राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों के उपरोक्त प्रमुख क्षेत्रों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह के आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण किया गया है।

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के राज्यवार अन्तर्प्रवाह के आर्थिक प्रभावों का मात्रात्मक विश्लेषण करना है। इस हेतु निम्न दो विशिष्ट उद्देश्य बनाये गये है।

1. भारत में विदेश प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह की वृद्धि एवं वर्तमान प्रवृतियों का अध्ययन करना।
2. देश में विदेश प्रत्यक्ष निवेश के राज्यवार अन्तर्प्रवाह के आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण करना।

साहित्य का पुनर्रावलोकन

प्रस्तुत शोध पत्र हेतु निम्न साहित्य का पुनर्रावलोकन किया गया है।

मलहोत्रा, बी. (2014) ने अपने शोध लेख में भारतीय अर्थव्यवस्था पर विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के विशेषकर आर्थिक सुधारों के बाद के प्रभावों का मूल्यांकन किया। इस हेतु भारतीय रिजर्व बैंक बुलेटिन, भारत सरकार के औद्योगिक नीति एवं संवर्द्धन विभाग तथा अन्य प्रकाशनों से भारत में विदेशी निवेश सम्बन्धी वर्ष 1991–92 से 2011–12 के द्वितीयक समंकों से विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह एवं आर्थिक संवृद्धि की वृद्धि दरों के विश्लेषण से विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह के अर्थव्यवस्था पर धनात्मक प्रभावों के साथ भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह की अपार संभावनाएं पायी।

नरेन्दर एवं राज एस. धनकड़ (2016) ने अपने शोध पत्र में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह एवं कुल रोजगार में सम्बन्ध को देखने का प्रयास किया। अध्ययन में विदेशी पूंजी अन्तर्प्रवाह के अन्तर्गत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, विदेशी अप्रत्यक्ष निवेश, बाह्य व्यावसायिक ऋण, गैर–निवासी भारतीय जमाऐं, कुल रोजगार, सरकार द्वारा आधारभूत संरचना पर व्यय, जनसंख्या वृद्धि, साक्षरता दर, सकल स्थिर पूंजी निर्माण एवं सकल घरेलू उत्पाद आदि व्याख्येय चरों को लेकर वर्ष 1991–92 से 2011–12 के द्वितीयक समंकों पर रेखीय प्रतीपगमन मॉडल, युनिट रूट टेस्ट एवं जॉनसन को–इन्टीग्रेशन टेस्ट प्रयुक्त कर विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह एवं बाह्य व्यावसायिक ऋणों को केवल निजी क्षेत्र में बेरोजगारी कम करने में सार्थक योगदान पाया।

चौपड़ा, एस. एवं एस.के. सचदेव (2014) ने अपने शोध पत्र में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह के निर्धारकों, अन्तर्प्रवाह प्रारुप एवं दिशा तथा देश में कम विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह के उत्तरदायी कारकों को जानने हेतु वर्ल्ड इन्वेस्टमेंट रिपोर्ट, एशियाई विकास बैंक रिपोर्ट, संयुक्त राष्ट्र के प्रकाशन, भारतीय रिजर्व बैंक के प्रतिवेदन से द्वितीयक संमक प्राप्त किए। अन्तर्प्रवाह के निर्धारकों में बाजार का आकार, लागत कारक, वास्तविक विनिमय दर, समष्टि आर्थिक स्थायित्त्व तथा मुद्रास्फीति की दर आदि कारकों से अन्तर्प्रवाह में वर्ष 1991–92 से वर्ष 2011–12 की अवधि में 1026 गुणा वृद्धि के साथ गरीबी निवारण, बेरोजगारी व अन्य आर्थिक बीमारियों के समाधान में इसकी भूमिका सार्थक नहीं पायी।

त्रिपाठी, वी. एवं अन्य (2013) ने अपने शोध में वर्ष 1997 से 2011 के विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह के समंकों का विश्लेषण किया। सांख्यिकीय विश्लेषण हेतु समष्टि आर्थिक चरों के अन्तर्गत बाजार का आकार, विनिमय दर, व्यापार उदारता, ब्याज दर, मुद्रास्फीति एवं राजनीतिक पर्यावरण को सम्मिलित किया। विश्लेषण में उन्होंने उक्त समष्टि आर्थिक चरों एवं विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह में सार्थक सहसम्बन्ध पाया।

चक्रबर्ती, सी. एवं पी. बसु (2002) ने अपने शोध में VECM मॉडल प्रयुक्त किया जिससे तीन महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त हुए। प्रथम, ग्रेंगर केसुलिटी टेस्ट से परीक्षण करने पर भारत के सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह के कारण नही वरन् सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर से विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह बढ़ा है। द्वितीय, भारत सरकार की व्यापार उदारीकरण नीति ने विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह पर कुछ अल्पकालीन धनात्मक प्रभाव डाले है और तृतीय, भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह से प्रति इकाई श्रम लागतों में कमी से श्रम का विस्थापन हुआ है।

सिंह, के. (2005) ने अपने शोध में भारत सरकार द्वारा अस्सी के दशक में देश में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह के प्रारूप एवं वर्तमान प्रवृतियों का विश्लेषण किया। उन्होंने आनुभाविक अध्ययन में आर्थिक सुधारों के बाद विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह में बढ़ती प्रवृति पायी। साथ ही विश्व के अन्य विकासशील देशों की तुलना में भारत में वर्तमान विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह की अधिक वृद्धि एवं उदारीकरण के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था पर निवेश अन्तर्प्रवाह का धनात्मक प्रभाव पाया।

कुमार, जी.एल. एवं एस. कार्तिक(2010) ने अपने शोध में अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के निष्पादन पर विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह के प्रभावों को जानने का प्रयास किया। उन्होंने घरेलू पूंजी, उत्पादन स्तर एवं रोजगार अवसरों के सृजन में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह की भूमिका को महत्त्वपूर्ण पाया। साथ ही विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह को देश के लिए एक लॉचिंग पैड की तरह पाया जिससे अर्थव्यवस्था में आगे किसी भी तरह के सुधार किये जा सकते है एवं पूंजी, तकनीकी ज्ञान एवं संसाधनों को बढ़ाकर देश को संवृद्धि की ओर बढ़ाया है।

सिंह, एस. (2014) ने अपने शोध में आर्थिक सुधारों के बाद अर्थव्यवस्था में देशवार एवं क्षेत्रवार विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह का अध्ययन किया। अपने अध्ययन में उन्होंने पाया कि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह ने भारतीय राज्यों की आर्थिक संवृद्धि पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला है। उन्होंने राज्य विशेष में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह को लुभाने वाले कारकों पर ध्यान आकर्षित किया। साथ ही निजी निवेशकों के बीच बढ़ती प्रतिस्पर्धा के चलते एफडीआई अन्तर्प्रवाह ने इन्हें प्रोत्साहित किया है पर राज्य सरकारों से इसे हेतु और प्रयास अपेक्षित है।

प्रधान, जे.पी. एवं अन्य (2004) ने अपने शोध में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह का रोजगार एवं मजदूरी पर प्रभाव देखने का प्रयास किया। अध्ययन में उन्होंने पाया कि विदेशी फर्मों के विनिर्माण क्षेत्र के रोजगार में मजदूरी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाला जबकि विदेशी फर्मों ने अपने मजदूरों को तुलनात्मक रूप से अधिक मजदूरी प्रदान की है। उन्होंने निष्कर्ष दिया कि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह ने श्रमिकों एवं मजदूरों को लाभ पहुंचाया है।

नागराज, आर. (2003) ने अपने शोध में भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह के क्षेत्रवार प्रभावों का विश्लेषण किया। उदारीकरण के पश्चात् भारतीय उद्योगों पर किए शोध में उन्होंने पाया कि विदेशी फर्मो के देश में प्रवेश से भारतीय बाजार से कुछ फर्मे धीरे–धीरे बाहर हो रही है। परन्तु विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह से तकनीकी कुशलता एवं प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है और इससे देश के उद्योगों हेतु पूंजी निर्माण में निरन्तर बढ़ोतरी हो रही है।

शर्मा, एम. एवं एस. सिंह (2016) ने अपने शोध में भारतीय अर्थव्यवस्था पर विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह के उदारीकरण से पूर्व एवं बाद के प्रभावों का चार चरणों में अध्ययन किया। अध्ययन मेंअन्तर्प्रवाह को प्रभावित करने वाले कारकों में बाजार का आकार, मानव संसाधनों की उपलब्धता, आर्थिक स्थायित्व, सरकारी नीतियों, विनिमय दर एवं मुद्रास्फीति को सम्मिलित किया। अध्ययन में अर्न्तप्रवाह से रोजगार सृजन एवं पूर्व स्थापित उद्योगों की उत्पादन क्षमता बढ़ोतरी पायी पर कम्प्यूटर हार्डवेयर समेत कुछ क्षेत्रों को छोड़कर शोध उद्योगों में अन्तर्प्रवाह का आकर्षण कम रहा है। साहित्य का पुनर्रावलोकन करने पर विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह पर अधिकांश शोध 1991 की नई आर्थिक नीति के पश्चात् अन्तर्प्रवाह के आर्थिक प्रभावों पर हुए। इन शोध अध्ययनों में मुख्यतः अन्तर्प्रवाहकी प्रवृति एवं प्रारूप,आर्थिक संवृद्धि एवं सकल घरेलू उत्पाद पर प्रभाव, भारतीय कृषि औद्योगिक एवं सेवा क्षेत्र पर प्रभाव, सम्पूर्ण भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव तथा सरकारी नीतियों से सम्बन्धित अध्ययन

हुए है। इन अध्ययनों में भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के राज्यवार अर्न्तप्रवाह के आर्थिक प्रभावों के मात्रात्मक विश्लेषण सम्बन्धि वर्तमान अध्ययन बहुत सीमित है। प्रस्तुत शोध पत्र इस कमी को पूरा करने की दिशा में एक सकारात्मक कदम है।

शोध प्रद्धति

प्रस्तुत भोध पत्रके लिए अपनायी गयी शोध प्रद्धति के अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र, समंक एवं उनके संकलन तथा विश्लेषण हेतु प्रयुक्त सांख्यिकीय तकनीकों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है।

अध्ययन क्षेत्र : प्रस्तुत शोध पत्र में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के राज्यवार अर्न्तप्रवाह के आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण किया गया है। इस अध्ययन में देश के उन सभी राज्यों को सम्मिलित किया गया है जो विदेशी प्रत्यक्ष निवेश केअन्तर्प्रवाह को अधिक लुभाते है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को विगत दस वर्षो में महाराष्ट्र, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, हरियाणा, तमिलनाडु, कर्नाटक, गुजरात, आन्ध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल, केरल, राजस्थान, मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ आदि राज्यों ने अधिक लुभाया है।

संमक संकलन

प्रस्तुत शोध पत्र में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के राज्यवार अन्तर्प्रवाह के आर्थिक प्रभावों के विश्लेषण हेतु द्वितीयक समंकों को उपयोग में लिया गया है। विश्लेषण में काल श्रेणी एवं अनुप्रस्थ काट दोनों प्रकार के समंक प्रयुक्त किए गए जिन्हें भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा प्रकाशित प्रकाशन, भारत सरकार के औद्योगिक नीति एवं सवर्द्धन विभाग द्वारा प्रकाशित प्रकाशन, विश्व बैंक के प्रकाशन, अंकटाड के प्रतिवेदन, सेंटर फॉर मोनीटरिंग इण्डियन इकोनॉमी के विभिन्न प्रतिवेदनों से प्राप्त किया गया है।

संमकों के विश्लेषण हेतु प्रयुक्त सांख्यिकीय तकनीकें

प्रस्तुत शोध पत्र में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के राज्यवार अन्तर्प्रवाह के आर्थिक प्रभावों का समान्तर माध्य, प्रमाप विचलन, विचरण गुणांक, प्रतिशत, वार्षिक एवं दशकीय वृद्धि दरों से विश्लेषण किया गया। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अधिकतम एवं न्यूनतम अन्तर्प्रवाह राशि के विश्लेषण के साथ अन्तर्प्रवाह राशि की वार्षिक वृद्धि दर एवं सकल घरेलु उत्पाद की वार्षिक वृद्धि दर को दण्ड आरेख तथा प्रमुख निवेशक देशों की निवेश राशि के साथ साथ भारतीय रिजर्व बैंक के क्षेत्रीय कार्यालय वार अन्तर्प्रवाह राशि को वृत आरेखों से प्रदर्शित किया गया है।

विश्लेषण एवं चर्चा

प्रस्तुत शोध पत्र में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के राज्यवार अर्न्तप्रवाह के आर्थिक प्रभावों के विश्लषण के अन्तर्गत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अर्न्तप्रवाह की वार्षिक वृद्धि दर एवं सकल घरेलु उत्पाद की वार्षिक वृद्धि दर का विश्लेषण किया गया। साथ ही भारत में निवेश करने वाले प्रमुख दस निवेशक देशों द्वारा विगत दस वर्षो में किए गए निवेश एवं उसके विचरण का विश्लेषण किया गया। इसके अतिरिक्त विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के राज्यवार अन्तर्प्रवाह का भारतीय रिजर्व बैंक के क्षेत्रीय कार्यालयवार अन्तर्प्रवाह राशि के अनुरूप विश्लेषण किया गया है।

एफडीआई एवं जीडीपी की वृद्धि : भारत में विगत दस वर्षो में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्त र्प्रवाह एवं सकल घरेलु उत्पाद की वार्षिक वृद्धि दरों के सारणी 1 में दर्शाया गया है।

स्त्रोत : भारतीय रिजर्व बैंक बुलेटिन मार्च 2019.

सारणी 1 : भारत में विगत दस वर्षो में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह एवं जीडीपी की वार्षिक वृद्धि

(वित्तीय वर्ष वार राशि करोड़ रूपये में)

क्र.सं.	वित्तीय वर्ष	एफडीआई अर्न्तप्रवाह	वार्षिक वृद्धि (प्रतिशत)	जीडीपी वृद्धि (प्रतिशत)
1	2009-10	123120	-	8.5
2	2010-11	97320	-20.9	10.3
3	2011-12	165146	+69.6	6.6
4	2012-13	121907	-26.1	5.5
5	2013-14	147518	+21.0	6.4
6	2014-15	181682	+23.1	7.4
7	2015-16	262322	+44.3	8.2
8	2016-17	291696	+11.2	7.1
9	2017-18	288889	-0.9	6.7
10	2018-19	309867	+7.2	7.1

सारणी 1 में वर्ष 2009-10 से 2018-19 की अवधि में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह एवं उसकी वार्षिक वृद्धि के साथ सकल घरेलु उत्पाद की वार्षिक वृद्धि को दर्शाया गया है। निवेश अन्तर्प्रवाह की दशकीय वृद्धि 151.67 प्रतिशत अर्थात् 15.16 प्रतिशत औसत वार्षिक वृद्धि से विगत दस वर्षों में निवेश अन्तर्प्रवाह बढ़ा है यदयपि कुछ वर्षों में वृद्धि दर ऋणात्मक रही। उक्त अवधि में जीडीपी की औसत वार्षिक वृद्धि 7.38 प्रतिशत रही है। दोनों वृद्धि दरों को चार्ट 1 में एक साथ दर्शाया गया है।

चार्ट1: भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह एवं जीडीपी की वार्षिक वृद्धि (2009-10 से 2018-19)

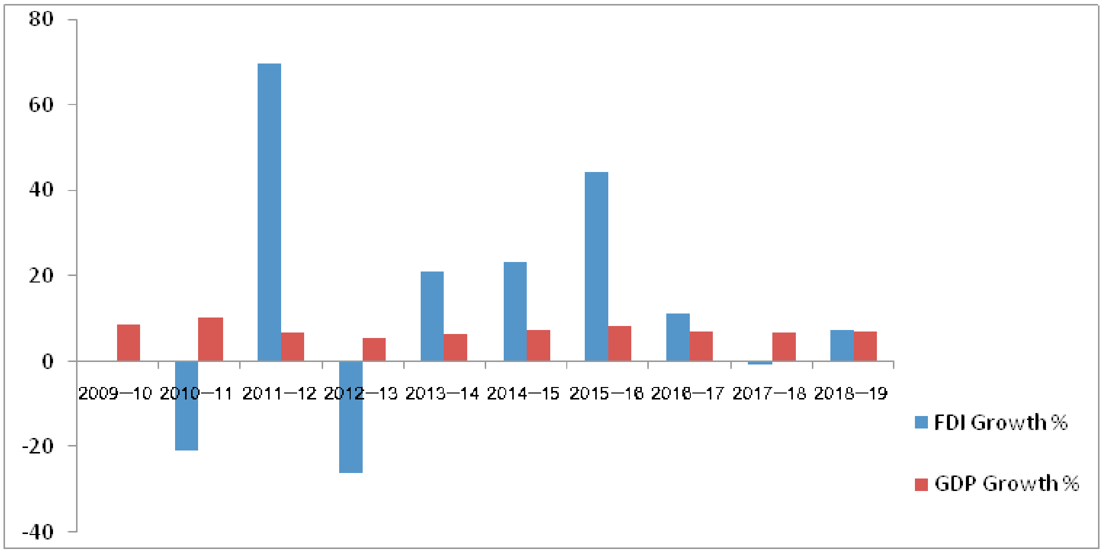

प्रमुख निवेशक देश एवं निवेश राशि : भारत में विगत वर्षों में प्रमुख दस निवेशक देशों द्वारा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह राशि को सारणी 2 में दर्शाया गया है।

सारणी 2 : भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह में प्रमुख निवेशक देशों का योगदान

(वित्तीय वर्षवार राशि करोड़ रुपये में)

क्र.सं.	देश	2015-16	2016-17	2017-18	2018-19	2000-19	प्रतिशत	CV (%)
1	मॉरिसस	54706	105587	102492	57139	738156	31	34.79
2	सिंगापुर	89510	58376	78542	112362	505946	21	26.57
3	जापान	17275	31588	10516	20556	173332	7	44.00
4	नीदरलैंड	17275	22633	18048	27036	162251	7	21.30
5	यू.के.	5938	9953	5473	9352	140370	6	29.95
6	यू.एस.ए.	27695	15957	13505	22335	146372	6	32.24
7	जर्मनी	6361	7175	7245	6187	65477	3	8.10
8	साइप्रस	3317	4050	2680	2134	51544	2	27.13
9	यू.ए.ई.	6528	4539	6767	6356	39310	2	16.86
10	फ्रांस	3937	4112	3297	2890	36825	2	15.94
योग (1 से 10)		232542	263970	248565	266347	2059583	87	
कुल अर्न्तप्रवाह		262322	291696	288889	309867	2378886	100	

स्त्रोत : भारतीय रिजर्व बैंक बुलेटिन मार्च 2019.

सारणी 2 में वर्ष 2015-16 से 2018-19 की अवधि में प्रमुख दस निवेशक देशों की निवेश

चार्ट2ः भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अर्न्तप्रवाह के प्रमुख निवेशक देश (वर्ष 2000–19 अंश प्रतिशत में)

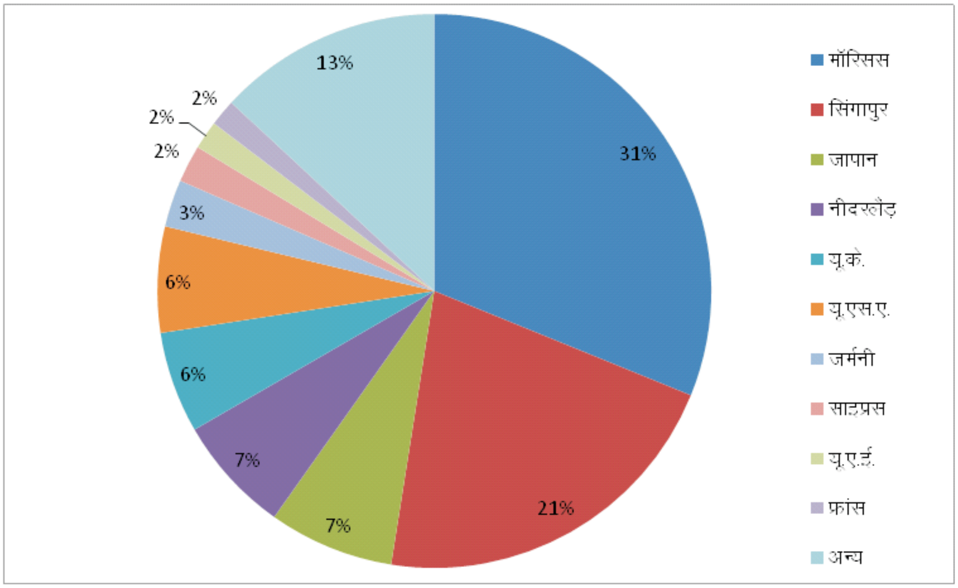

अर्न्तप्रवाहराशि एवं उसके विचरण गुणांक को दर्शाया गया है। साथ ही वर्ष 2000 से 2019 की संचयी निवेश अन्तर्प्रवाह राशि को दर्शाया गया है। वर्ष 2015–16 से 2018–19 की अवधि में प्रमुख दस निवेशक देशों में मॉरिसस का प्रतिशत सर्वाधिक है।उक्त अवधि में प्रमुख दस निवेशक देशों में अन्तर्प्रवाह राशि का औसत सिंगापुर का अधिकतम एवं साइप्रस का न्यूनतम रहा।इसी प्रकार जर्मनी द्वारा भारत में निवेश का विचरण गुणांक कम रहा जबकि जापान की निवेश राशि का विचरण गुणांक अधिक रहा अर्थात् भारत में निवेश करने में जर्मनी ने अधिक भरोसा दिखाया है। प्रमुख दस निवेशक देशों की वर्ष 2000 से 2019 की संचयी निवेश अर्न्तप्रवाह राशि को चार्ट 2 में दर्शाया गया है।

निवेश राशि का भारतीय रिजर्व बैंक के क्षेत्रीय कार्यालयवार विश्लेषण : भारत में विगत वर्षो में निवेश अन्तर्प्रवाह राशि को भारतीय रिजर्व बैंक के क्षेत्रीय कार्यालयवार सारणी 3 में दर्शाया गया है।

सारणी 3 में वर्ष 2015–16 से 2018–19 की

सारणी 3 : भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का RBI क्षेत्रीय कार्यालयवार अन्तर्प्रवाह

(वित्तीय वर्षवार राशि करोड़ रूपये में)

क्र.सं.	कार्यालय	2015–16	2016–17	2017–18	2018–19	2000–19	प्रतिशत	CV(%)
1	मुम्बई	62731	131980	86244	80013	713990	30	32.74
2	नई दिल्ली	83288	39482	49366	70485	484219	20	32.76
3	बैंगलोर	26791	14300	55334	46963	225510	9	52.18
4	चेन्नई	29781	14830	22354	18164	173896	7	30.30
5	अहमदाबाद	14667	22610	13457	12618	117149	5	29.00
6	हैदराबाद	10315	14767	8037	23882	106242	4	49.14
7	कोलकाता	6220	332	1409	8531	31119	1	94.52
8	कोच्ची	589	3050	1339	1807	12934	0.5	60.87
9	चंडीगढ़	177	39	697	4374	11647	0.5	155.43
10	जयपुर	332	1111	752	2553	11542	0.5	81.27

11	भोपाल	518	515	181	224	7533	0.3	50.66
12	पणजी	117	555	279	111	4930	0.2	78.38
13	कानपुर	524	50	578	234	3830	0.2	71.80
14	भुवनेश्वर	36	83	415	483	2978	0.1	89.44
15	गुवाहाटी	66	15	82	48	591	0.03	54.49
16	पटना	272	69	64	0.22	671	0.03	87.91
17	जम्मू	11	2	0	0.41	30	0.00	135.22
18	अन्य	25886	47909	48300	39377	469531	21	26.00
कुल अर्न्तप्रवाह		262322	291696	288889	309867	2378886	100.0	–

स्त्रोत : भारतीय रिजर्व बैंक बुलेटिन मार्च 2019.

अवधि मेंभारत में निवेश अन्तर्प्रवाह राशि को भारतीय रिजर्व बैंक के क्षेत्रीय कार्यालय वार बताया गया है। भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अर्न्तप्रवाह राशि का प्रतिशत देखे तो सर्वाधिक निवेश अर्न्तप्रवाह मुम्बई में हुआ है। मुम्बई के साथ नई दिल्ली को मिला दे तो दोनों महानगरों में भारत में कुल विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अर्न्तप्रवाह राशि का प्रतिशत पचास हो जाता है। इसी प्रकार यदि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अर्न्तप्रवाह राशि का विचरण गुणांक देखा जाए तो चंडीगढ़ का 155.43 प्रतिशत है, जो सर्वाधिक है जबकि अहमदाबाद का विचरण गुणांक 29.00 प्रतिशत है, जो सबसे कम है अर्थात् विदेशी निवेशकों का अहमदाबाद में भरोसा अधिक है। भारत में भारतीय रिजर्व बैंक के क्षेत्रीय कार्यालयवार वर्ष 2000 से 2019 की संचयी विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह राशि को चार्ट 3 में दर्शाया गया है।

चार्ट3ः भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का RBI कार्यालयवार अन्तर्प्रवाह (वर्ष 2000–19 अंश प्रतिशत में)

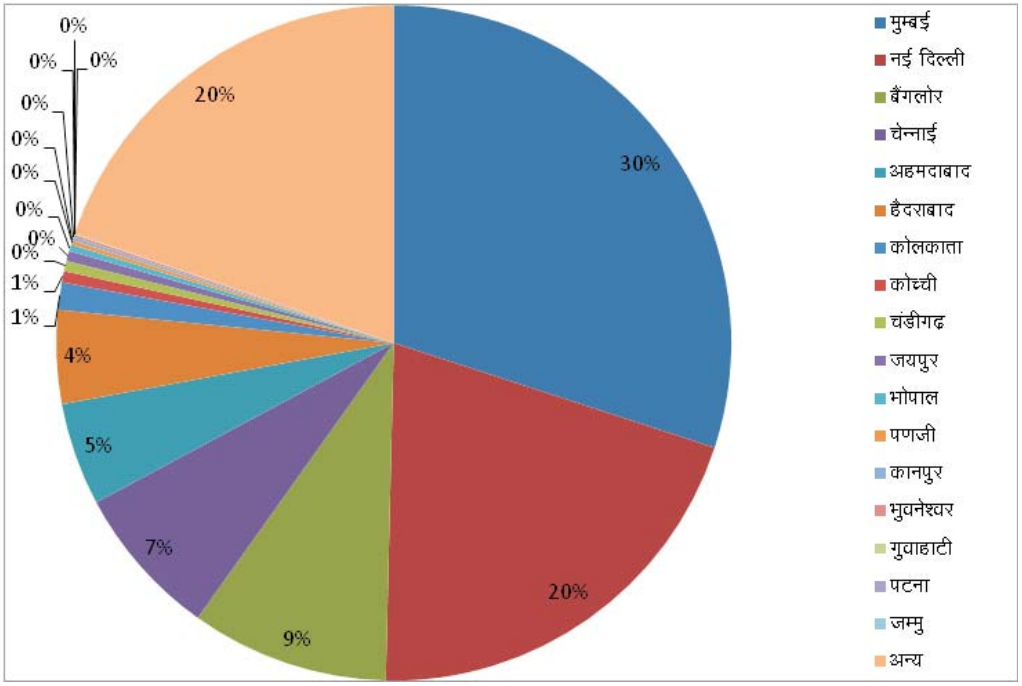

निष्कर्ष एवं सुझाव(Conclusion and Suggestions)

उपरोक्त विश्लेषण से निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए है जिनके आधार पर सुझाव दिए गए हैः

1. भारत के आर्थिक विकास पर विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। देश में विगत दस वर्षों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अन्तर्प्रवाह की औसत वार्षिक वृद्धि 15.16 प्रतिशत रही है जबकि सकल घरेलु उत्पाद की औसत वार्षिक वृद्धि 7.38 प्रतिशत रही है।
2. भारत में वर्ष 2015–16 से 2018–19 की अवधि में प्रमुख दस निवेशक देशों में मॉरीसस का निवेश प्रतिशत सर्वाधिक रहा है जबकि निवेश करने में जर्मनी ने अधिक भरोसा जताया है अतः देश में विदेश निवेश को लुभाने हेतु माहौल को और बेहतर बनाया जाना चाहिए।
3. भारत में कुल विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अर्न्तप्रवाह राशि का पचास प्रतिशत केवल मुम्बई एवं नई दिल्ली महानगरों में निवेश हो जाता है जबकि विदेशी निवेशकों का अहमदाबाद के साथ मुम्बई, नई दिल्ली एवं चेन्नई जैसे महानगरों में भरोसा अधिक है। अतः सरकार द्वारा देश के अन्य राज्यों एवं नगरों में विदेश निवेश बढ़ाने के प्रयास किए जाने चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *Annual Report (2017-18), Department of Industrial Policy and Promotion,Government of India, New Delhi.*
2. *Chakraborty, C. and P. Basu, "Foreign Direct Investment and Growth in India: a Cointegration Approach',Applied Economics, 2002, Vol. 34(9), PP. 1061-1073.*
3. *Chopra, S. and S. K. Sachdeva, "Analysis of FDI Inflows and Outflows in India', Journal of Advanced Management Science, Vol. 2 (4), Dec. 2014, PP. 326-332.*
4. *Economic Survey, Ministry of Finance, Government of India, New Delhi, Various Issues.*
5. *Khawar, M., "Foreign Direct Investment and Economic Growth: A Cross-Country Analysis', Global Economy Journal, Volume 5(1), 2005.*
6. *Kong, D. A. and Sakthivel S., "A Study on Foreign Investment in India since 1990s', International Area Review, Vol. 7 (2), 2004.*
7. *Kumar, G.L. and S. Kartik, "Sectoral Performance Through Inflows of Foreign Direct Investment (FDI)' 8. Kumar, N., "WTO Regime, Host Country Policies and Global Patterns of Multinational Enterprises Activity: Implications of Recent Quantitative Studies for India',Economic and Political Weekly, 36(1), Jan. 2001.*
9. *Lall, Sanjaya and Shveeten, Paul, "Foreign Investment, Transnational and Developing Countries", Mcmillan Press, London, 1997.*
10. *Malhotra, B. "Foreign Direct Investment: Impact on Indian Economy", Global Journal of Business Management and Information Technology, Vol. 4 (1), 2014, PP. 17-24.*
11. *Ministry of Commerce and Industries, Government of India, New Delhi, Various Issues.*
12. *Ministry of Finance, Departnemt of Econommic Affairs, Government of India, New Delhi, Various Issues.*
13. *Nagraj, R., "Foreign Direct Investment in India in the 1990s Trends and Issues", Economic and Political Weekly, April 26, 2003.*
14. *Narang, Kamal and Ravinder Singh, "Position of Foreign Direct Investment In India", The ICFAI University, Journal Of Financial Economics, Vol. VI(3), Sep. 2008.*
15. *Narender and Raj S. Dhankar, "Foreign Capital Inflows and Growth of Employment In India: An Empirical Evidence from Public and Private Sector", International Journal of Economics and Finance, Vol. 8 (2), 2016, PP. 189-196. 16. Pradhan, J.P. et.all, "Foreign Direct Investment and Lobour: The case of Indian Manufacturing", 2004.*
17. *Rao, K.S et.all, "Foreign Direct Investments in the Post Liberalization Period: A Overview", Journal of Indian School of Political Economy, July-Sept, 1999.*
18. *Report of the Steering Group on Foreign Direct Investment, Planning Commission, Government of India, New Delhi, August 2002.*
19. *Reserve Bank of Iinda's Monthly Bulletin on Foreign Direct Investment, Various Issues.*
20. *Singh, K., "Foreign Direct Investment in India: A Critical Analysis of FDI from 1991-2005", Centre For Civil Society, New Delhi, Research Internship Programme, 2005.*

21. *Singh, S. et.al. "Foreign Direct Investmentin India: Future and Growth Policies- An Overview", Journal of Management Research and Analysis, Vol. 1 (1), Oct. 2014.*

22. *Sharma, M. and S. Singh, "Impact of FDI on Indian Econmy", International Journal of Innovative Research & Development, Vol. 5 (2), Jan. 2016.*

23. *Tripathi, V. et al, "Foreigh Direct Investment and Macro Economic Factors: Evidence from the Indian Economy", Asia-Pacific Journal of Management Research and Innovation, 2013, Vol. 2, PP. 46-65.*

24. *Websites related to the data of FDI inflows in India: http://finmin.nic.in, www.rbi.org.in, www.indiabudget.nic.in*

25. *World Investment Report, 2016 published by United Nation Conference on Trade and Development (UNCTAD).*

शास्त्रीय संगीत और युवा पीढ़ी

दिपाली भण्डारी
शोधार्थी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारतीय शास्त्रीय संगीत को हमारी सभ्यता व संस्कृति का प्रतीक माना गया है शास्त्रीय संगीत स्वर समृद्ध है, विशाल है तथा इसमे इतना भंडार है, इतनी विधि है कि वह सागर के समान ''राई बड़े न तिल घटे प्रतीत होता है। संसार के प्रत्येक देश का यदि सांस्कृतिक निरीक्षण किया जाय तो लगभग हर देश में संगीत का बहुत ही अधिक महत्व देखने को मिलता है। इसके विपरीत यदि वर्तमान समय में फ्यूजन संगीत को अधिक महत्व दिया जाता है क्योंकि यह नियमों से बाधित नहीं होता है आज मनोरंजन के नाम पर जिस संगीत से युवा पीढ़ी का परिचय कराया जा रहा है वह सस्ता ना हो बल्कि हमारी भारतीय संस्कृति व परम्पराओं के अनुरूप ही संगीत का प्रचार युवा पीढ़ी में होना चाहिए।

संकेताक्षर : *शास्त्रीय संगीत, युवा, भारतीय संस्कृति, फ्यूजन संगीत, परंपरा, स्वर।*

गीतवादित्रत्रृत्यानां त्रयं संगीत मुच्यते अर्थात् संगीत में गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों का समावेश माना गया है, नृत्य तथा नाट्य परस्पर संबंधित माने गए है परन्तु संगीत के अंतर्गत गाने को ही प्रधानता दी गई है। जैसा की नाम से ही ज्ञात है सम. गीत अर्थात् इच्छा गीत ही संगीत कहलाता है। संगीत की सर्वमान्य परिभाषा हैं कि ''संगीत वह कला है जिसमें गायन, वादन, तथा नृत्य तीनों का सही समावेश हो।'' संगीत एक सार्वभौमिक कला हैं क्योंकि यह सभी जाति के लोगों द्वारा हर काल में अपनाई गई है। प्रारम्भ से ही मानव ने अपने व्यस्तम् क्षणों में भी संगीत के माध्यम से ही चरम आनन्द को प्राप्त किया है। यदि हम भारतीय संगीत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखे तो यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संगीत का जन्म अपने ईष्ट देवों की स्तुति के लिए हुआ था। समय के साथ-साथ संगीत का स्वरूप भी बदला और मध्यकाल तक आते-आते संगीत को राजदरबारों तथा रियासतों का आश्रय मिलने लगा। जिसके कारण कलाकार अपने आश्रयदाता को प्रसन्न हेतु उनका गुण-गान करने लगे। परिणाम यह हुआ की विलासिता का प्रभाव बढ़ने के कारण श्रंगारिक रचनाओं की अधिकता हो गई। तथा आधुनिक काल तक पहुँचते हुए पूरे भारत पर अंग्रेजों ने अपना आधिपत्य कर लिया जिन्हे हमारी भारतीय सभ्यता व संस्कृति से कोई सरोकार नहीं था इस कारण अंग्रेजों के काल में संगीत के स्तर में गिरावट आई। उस समय संगीत को हेय दृष्टि से जाना जाने लगा। इस प्रकार की विकट परिस्थितियों में पारम्परिक भारतीय संगीत को संरक्षण देने का कार्य घरानों ने किया। घरानेदार कलाकारों ने संगीत को सीमित करने के साथ ही संगीत के शास्त्रीय रूप को संजोने का कार्य भी किया। कालान्तर में अनेक विद्वान संगीतज्ञों ने संगीत का पवित्र एवं आध्यात्मिक रूप आम जनता के समक्ष प्रस्तुत करने का कार्य किया। जिससे आम जनता में संगीत के प्रति उपेक्षा की भावना समाप्त हुई और फिर शास्त्रीय संगीत की तीनों विधाओं (गायन, वादन, नृत्य) का प्रदर्शन सामाजिक समारोहों में

होने लगा जिससे संगीत पुनः अपने उच्च स्थान की और बढ़ा। जिसके फलस्वरूप आधुनिक काल में संगीत के विभिन्न रूप विकसित हुए। आज शास्त्रीय संगीत के साथ अनेक प्रकार के संगीत का प्रचलन भी बढ़ता जा रहा है। भारतीय संगीत में 'शास्त्रीय' शब्द जुड़ जाने से वह शास्त्रीय नियमों में आबद्ध हो जाता है। भारतीय संगीत भारत भूमि पर पनपने वाला कोई भी सरल संगीत, लोक संगीत, भक्ति संगीत या अन्य कई प्रकार का संगीत है जो हमारे भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम है।

शास्त्रीय संगीत से तात्पर्य मर्यादित एवं नियमों से बाधित संगीत होता है जो निश्चित परम्परा के साथ प्रस्तुत किया जाता है यथा ''सम्यक प्रकारेण यदगीयते तत्संगीतम्''। अर्थात् शास्त्र अनुसार जो सही एवं उचित रीति से गाया व बजाया जाए, वही शास्त्रीय संगीत है।

वैदिक काल में भारतीय संगीत की शास्त्रीय अवस्थाएं क्रमशः मन्त्रोच्चारण से प्रारम्भ होकर जाति गायन बना, तत्पश्चात् इसका स्थान राग गायन ने ले लिया। राग गायन के अनेक शास्त्रीय लक्षणों द्वारा अनेक विधाओं का उद्‌गम हुआ जिसमे फलस्वरूप शास्त्रीय संगीत में ध्रुपद, धमार, ख्याल आदि शैलियाँ विकसित हुई। निःसन्देह शास्त्रीय संगीत जनसाधारण का संगीत नहीं हो सकता परन्तु इसका प्रभाव सृष्टि के प्रत्येक पक्ष में अनुभव किया जा सकता है। शास्त्रीय संगीत के कुछ विशेष नियम होते है। जिनका पालन सदैव आवश्यक होता है। यह नियम गायक और संगीतकार की कल्पना के अनुसार होता है। गायक मुख्य नियमों के अंतर्गत स्वयं की कल्पना के अनुसार राग निर्माण में स्वतंत्रतापूर्वक स्वर विहार कर सकता है। आधुनिक युग में भारत में ही शास्त्रीय संगीत की दो अलग-अलग शैलियाँ हिंदुस्तानी संगीत पद्धति और कर्नाटक संगीत पद्धति प्रचलित है जिनका मूल स्त्रोत संगीत के प्राचीन ग्रंथ ''भारत का नाट्यशास्त्र'' शारंगदेव का ''संगीत रत्नाकर'' और मतंग का ''वृहदेशी'' है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में नियमों की पालना गुरु द्वारा मौखिक रूप से प्रदान करवायी जाती है। यह नियम बड़ी कठिन साधना के पश्चात् की क्रिया है जो कठोर साधना द्वारा ही प्राप्त होता है। इन्ही शास्त्रीय नियमों की पालना के कारण भारतीय संगीत में मर्मस्पर्शिता और आत्मरंजकता पूर्ण रूप से समाहित है। इसी शास्त्रसम्मता, ह्मदयग्रायहता और आत्मारंजकता के गुणों से ओतप्रोत वर्तमान में भारतीय शास्त्रीय संगीत को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचाना जाने लगा है आधुनिक युग में भारतीय शास्त्रीय संगीत की मौलिकता और संजीवता सदैव ही अपने मूल की और झुके रहने का संकेत करती है। आज शास्त्रीय संगीत को एक संवेदनशील मन से समझा जाता है। क्योंकि सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में आज कलाकारों की कृतियों को न केवल सुरक्षित रख सकते है बल्कि उन्हें संचार माध्यमों द्वारा जन-जन तक पहुँचा भी सकते है। वर्तमान में शास्त्रीय संगीत का ज्ञान अर्जित करने वाले प्रतिभाशाली व होनहार विद्यार्थियों को जगह-जगह भटकने की आवश्यकता नहीं है अपितु वह घर बैठे ही बहुत कुछ ज्ञान दृश्य-श्रव्य उपकरणों की सहायता से प्राप्त कर सकते है। यदि शास्त्रीय संगीत के संदर्भ में युवा श्रोताओं की बात करे तो आज का युवा इस व्यवस्तता भरी जीवन शैली में संगीत को भी भागते-दौड़ते ही पसंद करता है कारण समयाभाव या फ्यूजन संगीत को अधिक महत्व दिया जाता है। वास्तव में यदि देखा जाए तो 'फ्यूज़न म्यूजिक' यह शब्द जितना भारत में इस्तेमाल हो रहा है। उतना ही पश्चिम में भी इसलिए हम कह सकते है कि भिन्न संस्कृतियों के संयोग से जो संगीत बना वही फ्यूज़न म्यूजिक कहलाया। आज दृश्य-श्रव्य एलबमों के माध्यम से हर संस्कृति का संगीत अपनी जड़ों से उखड़ रहा है।

संगीत के क्षेत्र में व्यवसायीकरण होने के कारण यह अब मात्र कला ना रहकर अब व्यवसाय बन चुका है। आज की पीढ़ी के लिए सबसे बड़ा मुद्दा प्रसिद्धि प्राप्त करना है। आज युवाओं में विश्वास और सहनशीलता का अभाव है इसलिए शास्त्रीय संगीत के प्रचार-प्रसार हेतु वर्तमान में हमारी सरकारी एवं गैर सरकारी शिक्षण संस्थाए पूर्वजों द्वारा प्रदत्त भारतीय संस्कृति की धरोहर और शास्त्रीय संगीत की प्राचीन परंपरा को जीवित रखनें एवं उनके पुर्नस्थान हेतु कई प्रयास कर रही है

जैसे कई सम्मेलनों के आयोजन व गोष्ठियाँ वर्ष भर में आयोजित करती है। जो युवाओं की हमारी प्राचीन शास्त्रीय संगीत की और रूचि जागृत करने का एक माध्यम स्वरूप है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आजकल शास्त्रीय संगीत का जो स्वरूप जनता के मस्तिष्क में है उसे देखते हुए हम निश्चित तौर पर नहीं कह सकते की यह प्रगति पथ पर है अथवा अवनति की और क्योंकि वर्तमान समय में संगीत का प्रचार व प्रसार तो दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, किन्तु स्तर निम्नतर हो रहा है। इसी संदर्भ में पंड़ित निखिल बैनर्जी कहते है 'Indian Classical Music is so rich that needs no modernism.

हमारी संस्कृति का आधार है शास्त्रीय संगीत यह एक ऐसी गरिमामयी धरोहर है जिससे लोक व लोकप्रिय संगीत की अनेक धाराएँ निकलती है जो न सिर्फ हमारे तीज त्यौहारों में राग रंग भरती है बल्कि हमारे विभिन्न संस्कारों और अवसरों को भी उल्लासमय बनाते हुए अनोखी रौनक भी प्रदान करती है। भारतीय शास्त्रीय संगीत यह तथ्य प्रमाणित करता है की स्वर की भाषा विश्वव्यपी है और भारतीय शास्त्रीय संगीत सृष्टि के प्राकृतिक नियमों और विधानों पर निर्मित होने के कारण प्रकृति के प्रत्येक मानव के हृदय और आत्मा का संस्पर्श करता है यह सीधा आत्मा पर प्रभाव डालता हुआ युवा श्रोताओं को ध्यान में मग्न कर देता है इसके विपरीत आज फ्यूजन संगीत ने युवाओं को अपने आगोश में ले लिया है यह संगीत उन पर नकारात्मक प्रभाव डाल रहा है। बदलता परिवेश व डिस्को का प्रचलन हमारी सभ्यता को प्रदूषित कर रहा है। आज के युवाओं में पहले की अपेक्षा प्रतिभा बहुत है। आज युवाओं पर आधुनिकता का असर अवश्य है परन्तु शास्त्रीय संगीत की अन्तर्तम गंगा की धारा के समान वह पवित्र अविरल धारा है, जो गुजरती हर प्रदेश से है परंतु फिर भी स्वच्छ, पवित्र और धार्मिक अक्षुण्णता से अलग नहीं हो सकती इसी संदर्भ में श्रीमति आशा पाण्डेय जी भारतीय संगीत पर पाश्चात्य के संगीत के प्रभाव के समावेश पर कहती है पाश्चात्य संगीत भले ही भारतीय संगीत में समाविष्ट हो जाए, परंतु भारतीय शास्त्रीय संगीत की पारंपरिक धारा अविरल धारा के रूप में प्रवाहित होती रहेगी और उसकी पहचान कभी धूमिल नहीं हो सकती।

परन्तु इसी के साथ ही इस बात पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि फ्यूजन संगीत के इस दौर में रोज नए गायक उभरते है व ढलते सूरज की तरह कही खो जाते है इसका कारण यह है कि वर्तमान में ऐसे गायक व गायिकाएँ पॉप संगीत के क्षेत्र में आ रहे है जिन्हे संगीत कोई ज्ञान ही नहीं है या फिर वह संगीत की कठिन साधना में विश्वास ही नहीं रखते इसलिए इस प्रतिस्पर्धा के युग में गायक–गायिकाओं का ज्यादा देर तक टिक पाना संभव नहीं हो पाता। आज बड़े–बड़े महानगरों में शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम आयोजित किए जाते है प्रायः वे सभी सभागार श्रोताओं से भरे रहते है परंतु इनमें से कुछ ही श्रोतागण वास्तव में शास्त्रीय संगीत में रूचि रखते है क्योंकि फिल्मी संगीत के दौरान पॉप व फ्यूजन संगीत श्रोताओं को आनन्दित करता है अतः यह कहा जा सकता है कि निःसदेह ही पॉप म्यूजिक क्षण भर के लिए हल्का फुलका मनोरंजन देता है परन्तु मन की शांति हमें शास्त्रीय संगीत द्वारा ही प्राप्त होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *आधुनिक अंर्तराष्ट्रीयकरण में संगीत की भूमिका, नीलम बाला महेन्द्रू, 2011*
2. *भारतीय शास्त्रीय संगीत ब्लाग, विवेक कुमार* Speaking Tree. IN
3. *भारतीय संगीत का शिक्षण पद्धति, प्रीति शर्मा, 2018*
4. *वर्तमान सामाजिक परिवर्तन में संगीत की नई भूमिका, डॉ. जया मिश्रा, 2012*
5. *भारतीय संगीत शिक्षाः समस्या एवं समाधान, अलकनंदा पलटनीयकर*

अलवर प्रजामण्डल का जनजागृति में योगदान

डॉ. नितिन चौधरी
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

राजस्थान में प्रथम प्रजामण्डल की स्थापना जयपुर में 1931 मे श्री कपूरचन्द पाटनी की अध्यक्षता में हुई। सन् 1938 में सुभाषचन्द्र बोस की अध्यक्षता में कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन में रिसायतों की जनता को अपने–अपने राज्यों में उत्तरदायी शासन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए स्वतन्त्र संगठन बनाकर आन्दोलन करने और जनजागृति फैलाने का आह्वान किया गया । सन् 1938 के बाद राजस्थान की लगभग सभी रियासतों में प्रजामण्डलों की स्थापना हुई एवं सभी रियासतों में उत्तरदायी शासन की मांग को लेकर जन–आन्दोलन किए जाने लगे। उससे राज्यों में असाधारण जागृति आई व देशी राज्यों की जनता को राष्ट्र की मुख्य धारा में सम्मिलित होने का मौका मिला। प्रजामण्डल के नेताओं का प्रमुख नारा ''राजाओं अंग्रेजों का साथ छोड़ो'' रहा। इसका उद्देश्य यह था कि राजा अंग्रेजों की पराधीनता का त्याग कर आम जनता का साथ दे।

***संकेताक्षर :** प्रजामण्डल, अलवर, जनजागृति, सौहार्द ।*

राजस्थान के प्रजामण्डल आन्दोलन ने जनता में जनजागृति लाने में अहम भूमिका का निर्वाह किया। इसी सन्दर्भ में अलवर प्रजामण्डल संगठन की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही।

अलवर में प्रजामण्डल की शुरूआत 1937 ई. से हुई। 20 जून, 1937 ई. को सी.आई.डी. की रिपोर्ट में प्रजामण्डल की स्थापना तथा उसके कार्यकर्ता डॉ. मौहम्मद अली, रामजीलाल, सालिग राम और अब्दुल गफुर जमाली का उल्लेख मिलता है। इस रिपोर्ट में प्रजामण्डल का उद्देश्य, ''हिन्दू और मुसलमानों के मध्य एकता स्थापित करना''बताया है। प्रजामण्डल की सदस्यता फार्म भी जनता में बांटे गये थे। कुछ कार्यकर्ताओं ने उन्हे भर भी दिया था। परन्तु डॉ. मौहम्मद अली, जो अध्यक्ष बनने वाले थे, उन पर हिन्दु एवं मुसलमानों दोनों का विश्वास नहीं था। उसके अतिरिक्त समय पर सभा नहीं होने के कारण यह प्रस्ताव पारित नही हो पाया। मई 1938 ई.को पुरजन विहार में कांग्रेस कार्यकताओं का सम्मेलन हुआ। जिसमें राजस्थान की रिसासतों की तरह अलवर में प्रजामण्डल की स्थापना कर दी गई इस सम्मेलन की अध्यक्षता सुशील देवी ने की थी।

अलवर प्रजामण्डल की प्रथम कार्यकारिणी का गठन इस प्रकार किया गया।

1.	सरदार नत्थू सिंह	अध्यक्ष
2.	काजी शफरउद्दीन	उपाध्यक्ष
3.	हरनारायण	सचिव
4.	डॉ. सुमेर चन्द जैन	सहायक सचिव
5.	लक्ष्छीराम	कोषाध्यक्ष

लक्ष्मणस्वरूप त्रिपाठी, रामचन्द्र उपाध्याय, रामकिशोर, नत्थुराम भारद्वाज व नत्थूराज महाजन प्रमुख एवं सक्रिय सदस्य रहे।

प्रजामण्डल के उद्देश्य

अलवर के प्रधानमंत्री ने 12मई 1938 ई0 को एक पत्र जयपुर रेजीड्रेण्ट को लिखा था। जिसमें प्रजामण्डल को कांग्रेस का ही एक भाग कहा था। अलवर प्रजामण्डल के उद्देश्य निम्न प्रकार से थेः–

1. रियासत में उत्तरदायी शासन स्थापित करना।

2. सामाजिक और आर्थिक सुधार लाना।

3. मजहबी व साम्प्रदायिक मामलों से दूर रहना।

प्रजामण्डल ने अपना कार्यक्षेत्र केवल राजनीति को ही नहीं बनायां अपितु जनता की प्रगति के प्रत्येक क्षेत्र को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। जैसे, (1) कर व्यवस्था, (2) कृषि, (3) शिक्षा, (4) चिकित्सा, (5) कुटीर उद्योग, (6) खादी के महत्व, (7) नगर पालिका व नागरिक कार्य आदि।

राजनैतिक गतिविधियाँ

अलवर राज्य की दिल्ली से निकटता होने के कारण यहां कांग्रेसी नेताओं का आना जाना लगा रहता था। इससे प्रजामण्डल के सदस्यों में सदैव सक्रियता बनी रहती थी। अलवर प्रजामण्डल कि प्रमुख राजनैतिक कार्यक्रम निम्न रहेः–

शिक्षण शुल्क विरोधी आन्दोलन

महाराजा तेजसिंह से पहले महाराजा जयसिंह शिक्षा और साहित्य को सामाजिक व्यवस्था एंव प्रगति में बहुत महत्वपूर्ण मानते थे। जनता के हित की दृष्टि से शिक्षा को शिक्षण शुल्क से मुक्त कर रखा था। किन्तु महाराजा तेजसिंह के काल में सरकार ने जुलाई 1938 ई0 से शिक्षण शुल्क प्रारम्भ कर दियां। 16 जुलाई, 1938 ई. के हिन्दुस्तान में लिखा था, ''अलवर राज्य में अब तक बिना फीस लिये तालीम दी जाती थी, क्योंकि अलवर राज्य मालगुजारी के साथ दो पैसे प्रति रूपये के हिसाब से एक कर स्कूलों के लिये भी लेते थे। लेकिन हाल में अलवर राज्य ने यह फैसला किया है कि विद्यार्थियों से फीस ली जायें"। जून 1938 ई. में महाराजा ने आने वाले सत्र में छात्रों से शिक्षण शुल्क लेने की योजना बनाई। 24 जून को गजट में यह प्रकाशित करवा दिया गया ।

इस शिक्षण शुल्क के विरोध में अनेक सभाओं का आयोजन किया गया। जिसको लक्ष्मण स्वरूप त्रिपाठी, हरनारायण, बनवारी लाल, बाबा नरसिंह दास, जयनारायण व्यास जी आदि नेताओं ने सम्बोधित किया। सरकार को हजारों हस्ताक्षर युक्त महजरनामा भेजा गया किन्तु सरकार द्वारा आन्दोलन का दमन करने हेतु नेताओं को लम्बी–लम्बी सजा दी गई। इसके उपरान्त भी सुशीला देवी, रामचन्द्र उपाध्याय, मा. भौलानाथ आदि के नेतृत्वव में आन्दोलन सक्रिय रहा।

चाइना डे

दिल्ली कांग्रेस कमेटी की सलाह पर अलवर मे भी 9 जनवरी को ''चाईना" डे मनाया गया। इस दिन चीन के घायल लोगों की मदद के लिये चन्दा इकट्ठा करने का अभियान प्रारम्भ किया गया। 9 एंव 10 जनवरी दोनों दिन कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने सभाएँ की जिसमें बड़ी संख्या में लोगो की उपस्थिति रही। ।

आजाद दिवस

26 जनवरी को प्रजामण्डल के कार्यकर्त्ताओं द्वारा बड़े उत्साह के साथ ''आजाद दिवस" बनाया गया एवं कांग्रेस का झण्डा "इन्कलाब जिन्दाबाद" व "महात्मा गॉधी की जय" साथ पूरे बाजारों में घुमाया गया। इसी रोज जगन्नाथ जी मन्दिर में काजी शरफउद्धीन की अध्यक्षता में सभा का आयोजन हुआ। यह सभा हिन्दू–मुस्लिम सद्भाव का प्रतीक बनी।

ब्यावर में प्रान्तीय अधिवेशन

ब्यावर में राजपूताना और केन्द्रीय जनता की कान्फ्रेंन्स तथा किसान कार्फ्रेस का आयोजन 25 जनवरी व 26 जनवरी को किया गया। जिसमें अलवर के कार्यकर्त्ताओं ने बड़ी संख्या में भाग लिया। इस सभा में कार्यकर्ता द्वारा 1937 ई0 में हुई कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं की गिरफ्तारी की आलोचना की गई।

विद्यार्थियों का प्रदर्शन

छात्रों में राष्ट्रीय भावना तेजी से जागृत हो रही थी। उस भावना को दिखाने के लिये जैन छात्रावास के लड़कों ने तिरंगे के बैज अपनी टोपी और कोटों पर लगाने शुरु कर दिये। इंस्पेक्टर जनरल पुलिस ने प्रधानमंत्री को लिखा था कि इन्द्र सिंह भार्गव कॉलेज व स्कूल के छात्रों में समाजवादी और कांग्रेसी भावना का प्रचार कर रहा है।

झंण्डारोहण समारोह

कांग्रेस झंडा रोहण समारोह हर महिने के अखिरी इतवार को मनाया जाता रहा था। इस समय इन्द्रसिंह भार्गव, रूप नारायण, शिवचरण भार्गव आदि ने अपना अलग झण्डा बनाकर पुरजन विहार में 27 फरवरी 1938 को यह समारोह किया। इससे छात्रों पर बहुत गहरा असर हुआ।

इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त भी प्रजामण्डल कार्यकर्ताओं द्वारा समय–समय पर सभायें एवं जुलूसो का आयोजन, जेल जाना, प्रजामण्डल का रजिस्ट्रेशन संबघी आन्दोलन करना, नगर पालिका चुनाव, गैर जिम्मेदाराना मिनिस्टरों कुर्सी छोड़ो आन्दोलन, राष्ट्रीय आन्दोलनों में सहभगिता आदि प्रमुख राजनैतिक गतिविधियॉ रही है।

रचनात्मक कार्यक्रम

अलवर प्रजामण्डल में राजनीतिक कार्यक्रमों के साथ–साथ महिला शिक्षा, महिला उत्थान संबधी कार्य,

हिन्दू–मुस्लिम साम्प्रदायिक सौहार्द, हरिजन उद्धार, गांधी जी का जन्मोत्सव बनाना, चरखा एवं खादी को महत्व देना आदि रचनात्मक कार्यक्रमों को भी महत्व दिया।

महात्मा गॉधी का जन्मोत्सव

भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान प्रजामण्डल कार्यकर्ताओं ने महात्मा गांधी का जन्मोत्सव 2 अक्टूबर 1942 को उत्साह से मनाया, जगह–जगह सभायें की और जुलूस निकाले। जिनमें ब्रिटिश सरकार की नीतियों की आलोचना की गई। अलवर में इस दिन दुकाने बंद रहीं। गंगालहरी के प्रयास से नारायणपुर में प्रजामण्डल की शाखा खोली गयी एवं हरिजन संघ की भी स्थापना की गई।

प्रजामण्डल कार्यकर्त्ताओं द्वारा सभाओं, जुलूसों, गांधीजी के जन्मोत्सवों पर हिन्दु–मुस्लिमों को एकता बनाये रखने का आह्वान किया जाता था।

हिन्दु मुस्लिम सौहार्द को बढावा

प्रजामण्डल ने 1942 ई. एवं 1943 ई. में हरिजन बस्ती में पाठशाला खोली ताकि शिक्षा के विकास से उन लोगो में सामाजिक व राजनैतिक चेतना पैदा की जा सके। अलवर में 10 दिसम्बर 1943 ई. को “अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ” की स्थापना की गई तथा हरिजन उद्धार के कार्य को उत्साह से चलाने के लिए एक मैनेजिंग कमेटी बनाने का भी निर्णय लिया गया।

विशाल खादी प्रदर्शनी

अलवर में राष्ट्रीय प्रवृतियों का प्रदर्शन करने के लिये प्रजामण्डल ने विशाल खादी प्रदर्शनी का आयोजन किया। राजस्थान चरखा संघ के सचिव देशपाण्डे अगस्त में अलवर आये। 1 अक्टूबर, 1941 को महादेव देसाई (गाँधीजी के सचिव) द्वारा इस प्रदर्शनी का उद्घाटन हुआ था। इस समय हीरालाल शास्त्री जी, हरिशचन्द्र शर्मा जी, जुगल किशोर चतुर्वेदी जी, देश पांडे जी, श्रीमति रतन शर्मा जी आदि भी उपस्थित थे। करीब दो –ढाई हजार लोगो ने जुलूस में भाग लिया। इस प्रकार प्रजामण्डल के राजनैतिक एंव रचनात्मक कार्यो से जनता में एकता, उत्साह, साहस की भावना का प्रसार हुआ। जिसने भारत के स्वाधीनता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सी. आई.डी. डायरी, 19जून 1937 से 31 दिसम्बर 1937 तक फा. नं. 102, 8– एस VII पृष्ठ 8, रा.रा. अ. भि. अलवर
2. फा.नं. वही, पृष्ठ 14,1 जुलाई 1937 सी. आई .डी की डायरी
3. फा.नं. 8–एस–182, पृष्ठ 133/तेज प्रताप 8 मई 1938 ई0
5. पत्र नं. 15–एस/11 दि0 12 मई, 1938 ई0 रा. राअभि0 अलवर
6. फा.नं. वही, पत्र नं. 15–एस/11, दि0 12मई 1938 ई
7. फा.नं. 8–एस–121, पृष्ठ 168 रा.रा.अभि.अलवर
8. फा.नं 14 दी अलवर स्टेट गजट नं.26 अलवर, रा.रा. अभि., अलवर
9. हिन्दुस्तान, दि0 16 जुलाई 1938 ई.
10 अलवर स्टेट गजट नं. 26 जिल्द 41, दि. 24 जून 1938 फा.नं 14, रा.रा. अभि., अलवर 11. फा. नं. 8–एस 121 पृष्ठ 230, रा.रा. अभि., अलवर
12 फा.नं. वही, पृष्ठ 241
13. फा.नं. 8–एस 121,पृष्ठ 317,रा.रा. अभि., अलवर
14. फा.नं. 43,15–एस/11 रा.रा. अभि., अलवर
15. फा.नं. 3, फा.नं. 8–एस–121,पृष्ठ 25,रा.रा. अभि., अलवर
16. फा.नं. वही, पृष्ठ 38
17. फा.नं. वही, पृष्ठ 48
18. फा.नं. वही, पृष्ठ 68 का.नं. 14 सी.आई.डी. डायरी, दिनांक 24 फरवरी, 1938
20. फा,नं. वही पृष्ठ 74 रा.रा. अभि. अलवर
21. फा.नं. 8–एस–121,पृष्ठ 72 का. डायरी दिनांक 27 फरवरी, 1938
22. फा.नं. 162/सी/142/39 पृष्ठ 26, रा,रा,अभि., अलवर
23. सक्सेना शंकर सहाय, जो देश के लिये जिये, रा.रा. अभि. अलवर पृ. 139
24. फा.नं. 29 का नं 952/सी, दिनांक 2 अक्टूबर 1942 रा.रा. अभि., अलवर
26. फा.नं. 29 का.नं.963/सी दिनांक 7अक्टूबर , 1942 रा.रा.अभि., अलवर
27. हिन्दुस्तान 12 दिसम्बर,1943
28. हिन्दुस्तान 12 दिसम्बर,1943
29. फा.नं. 28/बी का पृष्ठ 230, रा.रा. अभि., अलवर
30. फा. नं. वही , पृ 230

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों में प्रगतिशील चेतना

डॉ. रानी सिंह
वर्नपुर (पं. बंगाल)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

मनुष्य को ही साहित्य का लक्ष्य मानने वाले आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के साहित्य-चिंतन और साहित्य-सृजन का समय नवजागरण, राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन और प्रगतिशील आंदोलन का समय था, तब यह कैसे सम्भव था कि 'आधुनिक वैज्ञानिक विश्व दृष्टि से साहित्यकार आचार्य द्विवेदी' प्रगतिशील विचारों से स्वयं को पूर्णतः विलग रखते। यद्यपि द्विवेदी जी ने प्रगतिशील आंदोलन से स्वयं को नहीं जोडा और न ही कभी मुखर रूप में स्वयं को प्रगतिशील विचारक माना, तथापि उनके निबन्धों की प्रगतिशीलता उनके ऊपर प्रगतिशील विचारों का प्रभाव ही दर्शाती है। द्विवेदी जी के विचार में वही साहित्य प्रगतिशील है, जो संसार को नये सिरे से ढालने का प्रयत्न करती है।

संकेताक्षर : *आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य निबन्ध, प्रगतिशील।*

द्वि द्विवेदी जी ने साहित्य की साधना को निखिल विश्व के साथ एकत्व अनुभव करने की साधना माना। शान्ति निकेतन पहुंचने के दिन को उन्होंने अपना दूसरा जन्म माना। यह अखिल वैश्विक दृष्टि उन्हें शान्ति निकेतन से ही मिली थी। डॉ. नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'दूसरी परम्परा की खोज' में लिखा है-''शान्तिनिकेतन में उन्हें एक अखिल भारतीय व्यापक दृष्टि मिली थी-अखिल भारतीय भी और विश्व व्यापक भी।''[1] द्विवेदी जी मनुष्य धर्म को सभी धर्मों में श्रेष्ठ मानते थे। उन्होंने बार-बार इस बात पर जोर दिया है कि एकत्व की खोज उन्मुख कराने वाला तथा मनुष्य को पशु सामान्य मनोवृत्तियों से ऊपर उठाकर मनुष्य में प्रेम एवं मंगलमय धर्म की प्रतिष्ठा करने वाला साहित्य ही वस्तुतः साहित्य कहलाने का अधिकारी है।

प्रगतिशील विचारकों की ही भांति द्विवेदी जी ने समाज तथा संस्कृति को स्थिर न मानकर शक्तिशीलता एवं निरन्तर विकास का परिणाम माना। उन्होंने लिखा है-''मनुष्य की जीवनी शक्ति बड़ी निर्मम है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है, संघर्षों से मनुष्य ने नई शक्ति पाई है। हमारे सामने समाज का आज जो रूप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है।''[2] इस प्रकार स्पष्ट है कि द्विवेदी जी ने समाज और संस्कृति को स्थिर न मानकर निरन्तर विकासमान एवं गतिशील माना, जो प्राचीन के विधेयात्मक तत्त्वों को ग्रहण करते हुए क्षयी एवं मरणशील तत्त्वों का परित्याग करती है। उन्होंने प्रगतिशील विचारकों को परम्परा से मूल्यवान तत्त्वों को ग्रहण करने की सलाह देते हुए लिखा है-''मार्क्सवादी के लिए कोई सत्य लोहे की मोटी दीवारों से घिरा नहीं है और इसलिए वह प्रत्येक स्टेज में अर्जित ज्ञान को अपने काम में लाने से नहीं हिचकता। नीति की अवस्थाएँ रूप देती हैं। जो लोग इस देश में प्रगतिशील आंदोलन का नेतृत्व कर रहे हैं उन्हें अपने देश के संचित ज्ञान की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। आज नही ंतो कल उन्हें उस ज्ञानराशि के संरक्षण और आलोचना का भार अपने कंधों पर लेना होगा। हजारों वर्ष की समृद्ध ज्ञानराशि को फेक देना बुद्धिमानी नहीं है। दुनिया की अन्य सभी वस्तुओं को फेक देने से भार हल्का हो सकता है पर ज्ञान के फेंकने से भार बढ़ जाता है।''[3] प्रस्तुत उद्धरण से द्विवेदी जी का मंतव्य स्पष्ट है कि उन्होंने मार्क्सवादी साहित्यकारों को उनके कर्त्तव्य बोध का भान कराते हुए परम्परा से ज्ञान अर्जित करने की सलाह दी है। उनके विचार से मार्क्सवाद कोई रूढ़िबद्ध अवधारणा नहीं बल्कि मार्क्सवाद समयानुसार प्राचीन संचित ज्ञान निधि में नये तत्त्वज्ञान का समावेश कर समृद्ध होता है। अतः उन्होंने मार्क्सवादी साहित्यकारों को परम्परा से ज्ञान अर्जन की

सलाह दी है। उनके विचार में मार्क्सवाद का प्रचारित तत्त्वज्ञान कोई शास्त्रीय मतवाद नहीं बल्कि वह मनुष्य के सुख वैविध्य के अनुकूल दुनिया को बदलने वाला विज्ञान है।

मार्क्सवादी आर्थिक विषमता को जातियों के निर्माण का प्रमुख आधार मानते हैं। द्विवेदी जी ने भी जातियों के निर्माण में आर्थिक विषमता को एक प्रमुख कारण माना है, उन्होंने इस संबंध में अपने निबन्ध 'अशोक के फूल' में लिखा है–''इतिहास में इस बात के अनेक सबूत हैं कि आर्थिक स्थिति अच्छी होते ही कई जातियाँ क्षत्रिय, वैश्य और ब्राह्मण बन गई हैं। आर्थिक विषमता के कारण कभी–कभी एक ही जाति दो भागों में बंट गई है। सम्पन्न श्रेणी ऊँची जाति मान ली गई है और असम्पन्न श्रेणी निचली जाति में।''[4] स्पष्ट है कि द्विवेदी जी ने आर्थिक विषमता को जातियों के निर्माण का प्रमुख कारण माना। उन्होंने अपने निबन्धों में केवल तथ्यों को नहीं रखा बल्कि तथ्यों को तर्कों के साथ अन्वेषक दृष्टि को प्रयोग करते हुए प्रमाणों के आधार पर स्वीकारा है।

सम्प्रदायवाद, जातिवाद तथा धार्मिक कट्टरता के कटु आलोचक एवं निबन्धकार आचार्य द्विवेदी के निबन्ध 'ठाकुर जी की बटोर' में उनके उत्तेजित भाव उनके मानवतावादी प्रगतिशील विचारों का ही परिचय देती हैं। उन्होंने लिखा है–''जो ठाकुर जाति–विशेष की पूजा ग्रहण करके ही पवित्र रह सकते हैं, जो दूसरी जाति की पूजा ग्रहण करके अग्राह्य–चरणोदक हो जाते हैं, वे मेरी पूजा नहीं ग्रहण कर सकते। मेरे भगवान हीन और पतितों के भगवान हैं जाति और वर्ण से परे के भगवान हैं, धर्म और सम्प्रदाय के ऊपर के भगवान हैं। वे सबकी पूजा ग्रहण कर सकते हैं, और पूजा–ग्रहण करके अब्राह्मण–चाण्डाल सबको पूज्य बना सकते हैं।''[5] अर्थात् स्पष्ट है कि द्विवेदी जी को वह ईश्वर भी ग्रहण नहीं जो जाति भेद करे। इनके ईश्वर के प्रति ये विद्रोही विचार वस्तुतः उनके भीतर प्रगतिशील विचारों का ही संवहन कर रहे हैं। उनके ईश्वर तो दीन, हीन तथा पतितों के ईश्वर हैं। उन्होंने सदियों से पददलिज निर्वाक तथा छोटी जाति समझी जाने वाली, जनता को एक वर्ग के रूप में संगठित हो स्वयं अपनी मर्यादा को उच्च बनाने का संदेश दिया है–''जन जाग्रति जिस दिन सचमुच होगी उस दिन ऊँची मर्यादा वाले इनका उद्धार नहीं करेंगे, वे स्वयं अपनी मर्यादा को उच्च बनायेंगे। वह एक अपूर्व समय होगा जब शताब्दियों से पददलित निर्वाक, निरन्न जनता समुद्र की लहरियों के फत्कार के समान गर्जना से अपना अधिकार मांगेगी।''[6] द्विवेदी जी का मंतव्य स्पष्ट है कि वे शोषितों को शोषकों के विरुद्ध वर्ग संघर्ष की प्रेरणा दे रहे हैं। द्विवेदी जी की नैतिक रूढ़ियों को तोड़ने वाली विशेषता को रेखांकित करते हुए डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है–''द्विवेदी जी की विशेषता यह है कि जिस दौर में अन्य कवि और लेखक पुरानी नैतिकता की रूढ़ियों को तोड़ने के लिए या तो खुलेआम अनैतिकता का औचित्य सिद्ध कर रहे थे या नैतिकता–अनैतिकता की बहस से परे विनैतिकता की वकालत करने में लगे थे, द्विवेदी जी ने एक नई संतुलित नैतिकता का स्वरूप सामने रखा, जिसमें वैयक्तिक स्वच्छन्दता के लिए पर्याप्त अवकाश है, पर उसके साथ सामाजिक मर्यादा की चिन्ता भी है।''[7] इस प्रकार स्पष्ट है कि द्विवेदी जी ने पुरानी नैतिक रूढ़ियों को अपने लेखन के माध्यम से तोड़ने का प्रयास किया। प्रो. चौथीराम यादव ने अपनी पुस्तक 'हजारी प्रसाद द्विवेदी समग्र पुनरावलोकन' में लिखा है–''सुसंगत भौतिकवादी औजारों का प्रयोग किये बिना भी आचार्य द्विवेदी बड़ी स्पष्टता के साथ सामाजिक–आर्थिक अन्तर्विरोधों की चर्चा करते हैं, और सामाजिक–आर्थिक गैरबराबरी को मिलने की चिन्ता से चिन्तित निरन्न, निर्वसन, जनता के पक्ष में मजबूती के साथ खड़े हैं।''[8] स्पष्ट है कि भौतिकवादी विचारक न होते हुए भी द्विवेदी जी ने सामाजिक और आर्थिक विषमता को मिटाने की चर्चा बड़ी ही स्पष्टता से की है।

द्विवेदी जी ने साहित्य के उत्कर्ष एवं अपकर्ष की कसौटी इस बात में मानी है कि साहित्य मनुष्य का हित साधन करता है, या नहीं। उन्होंने मनुष्य का परिचय उसके भीतर वर्तमान मनुष्यता से करवाकर सम्पूर्ण देश को एकीकृत करने का प्रयास किया है। उनके शब्दों में–''सारा देश आपका है। भेद और विरोध ऊपरी है, भीतरी मनुष्य एक है। इस एक को दृढ़ता से पहचानने का यत्न कीजिए। जो लोग भेद भाव को पकड़कर ही अपना रास्ता निकालना चाहते हैं, वे गलती करते हैं, विरोधी रहे हैं, तो उन्हें आगे भी बने ही रहना चाहिए, यह कोई काम की बात नहीं हुई। हमें नए सिरे से सब कुछ गढ़ना है, तोड़ना नहीं है, भाव की जयमाला से हम पार नहीं उतर सकते।''[9] यहाँ द्विवेदी जी ने भारत की बहुजातीयता को ध्यान में रखते हुए भारतीयों से आपसी भेद भाव को दूर कर एकीकृत होने का आग्रह किया है, वे इस तथ्य से भली भांति परिचित थे कि आपसी भेदभाव को बढ़ाकर हम भारतीय उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकते।

साहित्यकारों को उनके दायित्व के प्रति जागरुक करते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है–''जबकि हमारे देश में नाना भांति के कुसंस्कार और गंदगी वर्तमान में हैं जबकि हमारी नब्बे प्रतिशत जनता अज्ञान के मलबे के नीचे

दबी हुई है, तब तो हमें मानना चाहिए कि दिल्ली बहुत दूर है। हम साहित्य के नाम पर जो कुछ कर रहे हैं, उसमें कहीं बड़ी भारी कमी रह गई है।''[10] द्विवेदी जी की दृष्टि में साहित्यकारों का कार्य तब तक अधूरा है, जब तक भारतीय जनता सुशिक्षित नहीं हो जाती तथा वह अपने सड़े गले कुसंस्कारों को नहीं त्याग देती। उन्होंने साहित्य को केवल बुद्धि विलास नहीं माना, बल्कि साहित्यों को उन्होंने यह सलाह दी की वे अपनी वर्तमान राजनीति तथा विज्ञान की नई प्रवृत्तियों से परिचित होकर साहित्य सृजन करें।

हिन्दी को द्विवेदी जी ने साधारण जन की भाषा माना। हिन्दी की सेवा को वे जनता की सेवा मानते थे। उनके शब्दों में–''हिन्दी साधारण जनता की भाषा है। जनता के लिए ही उसका जन्म हुआ था और जब तक वह अपने को जनता के काम की चीज बनाये रहेगी, जनहित में आत्मबल का संचार करती रहेगी, तब तक उसे किसी से डर नहीं है।''[11] द्विवेदी जी के विचारानुसार हिन्दी भाषा ने जनहित की भावना दी वह उसमें जीवन शक्ति का संचार करती है।

द्वितीय जी उन विरले ललित निबन्धकारों में हैं, जिन्होंने आधुनिक वैज्ञानिक अखिल विश्व दृष्टि का समावेश अपने निबन्धों में किया है। उनके निबन्ध हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उन्होंने दुनिया को बदलने एवं नए रूप में निर्मित करने का प्रयास अपनी साहित्यिक दृष्टि के माध्यम से किया। उनकी प्रगतिशीलता को रेखांकित करते हुए डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है–''द्विवेदी जी ने आधुनिक रचनाशीलता की इसी विशेषता पर बल देकर प्रगतिशील आंदोलन से अपने आत्मिय संबंध का प्रमाण दिया है। इसके बावजूद अगर कुछ लोग द्विवेजी जी के संदर्भ में मार्क्सवाद और प्रगतिशील आन्दोलन के नाम लेने पर वैसे ही भड़क उठते हैं, जैसे बैल लाल कपड़े को देखकर भड़कता तो उनकी बुद्धि को क्या कहा जाए।''[12]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि द्विवेदी जी में प्रगतिशील विचार कस्तूरी मृग में विद्यमान कस्तूरी की भांति है। यद्यपि उन्होंने स्वयं को मुख्य रूप में प्रगतिशील नहीं कहा परन्तु उनके निबन्धों में हम उनकी वैचारिक प्रगतिशीलता को यत्र–तत्र देख सकते हैं।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. *सिंह नामवर, दूसरी परम्परा की खोज, राजकमल, प्रकाशन प्रा.लि., 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, राजकमल पेपरबैग में पहली आवृत्ति–2011 पृ.सं.–13*
2. *द्विवेदी हजारी प्रसाद, अशोक के फूल, 'अशोक के फूल', लोकभारती प्रकाशन, 15–ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित, सत्ताइसवां संस्करण–2005 पृ.सं.–14*
3. *द्विवेदी हजारी प्रसाद, साहित्य सहचर, 'साहित्य का नया रास्ता, लोकभारतीय प्रकाशन, 15–ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित, सत्ताइसवां संस्करण–2002 पृ.सं.–128, 129*
4. *द्विवेदी हजारी प्रसाद, अशोक के फूल, 'प्रायश्चित की घड़ी, लोकभारती प्रकाशन, 15–ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित, सत्ताइसवां संस्करण–2005 पृ.सं.–25*
5. *द्विवेदी हजारी प्रसाद, कल्पलता 'ठाकुर जी की बटोर', राजकमल, प्रकाशन प्रा.लि., 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, नवां संस्करण, 1983, तीसरी आवृत्ति–1999 पृ.सं.–55*
6. *द्विवेदी हजारी प्रसाद, अशोक के फूल, 'प्रायश्चित की घड़ी, लोकभारती प्रकाशन, 15–ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित, सत्ताइसवां संस्करण–2005 पृ.सं.–35*
7. *सिंह नामवर, आलोचना और विचारधारा, सं. त्रिपाठी आशीष, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली–110002, पहला संस्करण–2012, पहली आवृत्ति–2014, पृ.सं.–243*
8. *यादव चौथीराम, हजारी प्रसाद द्विवेदी समग्र पुनरावलोकन लोकभारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद–211001, प्रथम संस्करण–2012, पृ.सं.–199*
9. *द्विवेदी हजारी प्रसाद, अशोक के फूल, 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है।', लोकभारती, प्रकाशन 15–ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–1, द्वारा प्रकाशित सत्ताइसवां संस्करण–2005, पृ.सं.–167*
10. *वही पृ. सं. 165*
11. *वही पृ.सं. 160*
12. *पाण्डेय मैनेजर, साहित्य और इतिहास वृत्ति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–110002, पृ.सं.–146*

मुगल–राजपूत सम्बन्ध : जोधपुर शासक महाराजा गजसिंह प्रथम (1619–1638) के विशेष संदर्भ में

shodhshree@gmail.com

उपासना दाधीच
शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

शोध सारांश

मारवाड़ के राठौड़ महाराजाओं के समकालीन मुस्लिम शासकों के साथ सम्बन्धों का अध्ययन स्पष्ट करता है की मारवाड़ राज्य का उद्भव एवं विकास मध्ययुग मे मुस्लिम शासन के समानान्तर हुआ था। 1581 ई. तक इस राज्य के शासकों ने मुस्लिम आक्रमणकारियों के विरूद्ध मारवाड़ की प्रादेशिक स्वतन्त्रता को बनाये रखने के लिए भरसक पयास किया परन्तु 1581 के बाद मारवाड़ के महाराजाओं ने केन्द्रिय सत्ता के विरूद्ध 'विरोध की नीति त्याग कर सहयोग की नीति' का अनुसरण किया। सहयोग की लम्बी अवधि में मारवाड़ की भौगोलिक सीमाओं का विस्तार हुआ, उनके वंश एवं व्यक्तित्व की ख्याति की अभिवृद्धि हुई थी। बाह्य सम्पर्क के कारण सभ्यता का समागम हुआ, परिणामतः ''मारवाड़ के निवासियों का संकुचित दृष्टिकोण शनैः–शनैः समाप्त होने लगा। मनसब और जागीर को स्वीकार करने के पश्चात् मारवाड़ के शासक प्रायः जोधपुर राज्य में अनुपस्थित रहे, शोध–पत्र के केन्द्र बिन्दु मुगल सेवाओं के साथ–साथ युद्ध अभियानों को भी शोध–पत्र में दर्शाया गया है।

संकेताक्षर *: मुगल–राजपुत संबंध, मनसबदारी प्रथा, युद्ध अभियान, राजनैतिक उपलब्धियाँ, मारवाड़ की केन्द्रीय सत्ता में भूमिका, जागीर एवं परगने।*

मुगल–राजपूत सम्बन्धों का वास्तविक प्रारम्भ अकबर के काल से हुआ। अकबर के काल में राजस्थान में मुख्य रूप से 6 राजपूत रियासते थीं।

1. मारवाड़ – रावचन्द्रसेन, मोटाराजा उदयसिंह, महाराजा गजसिंह प्रथम, जसवंत सिंह, अजित सिंह।
2. मेवाड़ – महाराणा उदयसिंह, महाराणा प्रताप, माहाराणा अमरसिंह, महाराणा कर्ण सिंह।
3. आमेर – राव भारमल, राव भगवान दास, महाराजा मानसिंह, मिर्जा राजा जयसिंह, सवाई जयसिंह।
4. बीकानेर – राव कल्याणमल, राव रायसिंह, कर्ण सिंह, अनूपसिंह, स्वरुप सिंह।
5. जैसलमेर – राव हरराय भाटी।
6. बूंदी – राव सुर्जन सिंह हाड़ा।

ये सभी अकबर के समकालीन राजस्थान की राजपूत रियासतों के शासक थे।

➢ अकबर ने राजपूतो के साथ ''सुलहकुल की नीति'' को अपनाया था।

➢ अकबर की राजपूत नीति के उद्देश्य अपने दरबार में शक्ति संतुलन की स्थापना करना तथा राजपूतों के सहयोग से साम्राज्य का विस्तार करना था।

अकबर की राजपूत नीति के तीन साधन थे।

1. वैवाहिक सम्बन्ध – आमेर, मारवाड़ (जोधपुर), बीकानेर एवं जैसलमेर

2. मित्रतापूर्ण सम्बन्ध – बूंदी रियासत के साथ
3. आमक्रमण की नीति – मेवाड़ के साथ।

(मेवाड़ रियासत ने मुगलो की अधीनता स्वीकार नहीं की)

अकबर राजपूत राजाओं से सम्पूण समर्पण चाहता था। वह उन्हें प्रशासन सेवा में मनसबदार के पद का लालच देकर उनकी सेवाओं को प्राप्त करने के लिए लालायित रहता था। राजनैतिक सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने के लिए उसने आमेर, बीकानेर और जैसलमेर की राजकुमारियों के साथ विवाह भी किये थे।

लोहे को लोहे से काटने की नीति अकबर ने मुगल राजपूत सम्बन्धों में अपनाई थी। मालदेव की मृत्यु (1562) के बाद उसके पुत्रों में उत्तराधिकार–विवाद उठ खड़ा हुआ, मालदेव का छोटा पुत्र चन्द्र सेन गद्दी पर बैठा। मुगलों के दबाव के कारण उसे अपने भाइयों को पट्टा के रूप में राज्य के कुछ भाग देने पड़े। लेकिन चन्द्रसेन इस बात से दुःखी हुआ और कुछ समय बाद उसने विद्रोह कर दिया। अब अकबर ने मारवाड़ को सीधे मुगल प्रशासन में ले लिया।

कुछ वर्षा बाद अकबर ने जोधपुर को चन्द्रसेन के बड़े भाई उदयसिंह को सौंप दिया। अपनी स्थिति को मजबूत बनाने के लिए उदयसिंह ने अकबर के सबसे बड़े पुत्र सलीम से अपनी पुत्री ''जगत गोसाई'' का विवाह कर दिया, जो शांहजहां की माता थी।

महाराजा गजसिंह प्रथम (1619-1638 ई.)

यह सवाई राजा सूरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे[1]। राजस्थान में मारवाड़ इतिहास को सुव्यवस्थित करने वाले इतिहासकार गौरी शंकर हीराचन्द्र ओझा द्वारा कृत ''जोधपुर राज्य का इतिहास'' पुस्तक के अनुसार – गजसिंह का जन्म वि. स. 1652 कार्तिक सुदी 8, ई. स. 1696, 30 अक्टूबर को हुआ था[2]।

गजसिंह भी अपने पिता सूरसिंह (1571–1619) की तरह की तरह बुद्धिमान और वीर शासक रहें, इसी वजह से अपने पिता के काल में अनेक महत्वपूण कार्यो में भाग लिया तथा सफलता प्राप्त की। इन कार्यो से प्रसन्न होकर सूरसिंह ने गजसिंह को अपना युवराज नियुक्त कर दिया। पिता की अनुपस्थिति में मारवाड़ का सम्पूर्ण प्रबन्ध युवराज गजसिंह की देख–भाल में होता था। वह अपने पिता की जीवितावस्था में ही जहाँगीर के 10 वें राज्य वर्ष (वि. स. 1672, ई.स. 1615) में पिता के साथ उसकी सेवा में उपस्थित हो गया था अर्थात् वह युवराज के पद पर रहते हुए भी मुगलों से उचित प्रकार से परिचित हो गया था। सूरसिंह की मृत्यु (वि.स. 1676, ई.स. 1619) को बुरहानपुर (दक्षिण) जिले के मेहकर नामक स्थान पर हुई, उस समय उनका पुत्र गजसिंह जोधपुर में था, अतएवं मृत्यु का समाचार पाकर जोधपुर का प्रबन्ध राजसिंह कूपावत को सौंपकर गजसिंह बुरहानपुर के लिए निकल गया। मुगल सम्राट जहाँगीर ने अब्दुलरहीम खानखाना के पुत्र दराब खाँ के हाथों जोधपुर राज्य के टीके की रस्म गजसिंह के पास भिजवाई थी[3]। उस समय परगने जोधपुर, जैतारण, सोजत, सिवाना, सातलमेर, तेरवाड़ा गजसिंह को प्रदान किये गये थे[4]।

जब गजसिंह महकर के थाने से लौटने की तैयारी कर रहा था, उसी समय मलिक अम्बर के साथियों ने महीकर के थाने को लूट लिया था, उसी समय गजसिंह के पास केवल 2000 सैनिक थे, लेकिन फिर भी उसने बहादुरी से मुगल थाने की रक्षा की। जहाँगीर ने प्रसन्न होकर उसे (दल–थंभन त्रसेना को रोकने वाला) की उपाधि प्रधान की थी[5]। इसके बाद मलिक अम्बर और मुगलो के बीच समझौता हो गया, अतएव गजसिंह को दक्षिण से आगरा के मार्ग से जोधपुर लौटने की आज्ञा मिल गई। इसके साथ ही गजसिंह को जालौर और सांचौर के परगनें दिये गये थे। मनसब को भी बढ़ा दिया गया। जोधपुर लौटते समय वह 4000 जात और 3000 सवार का मनसबदार था[6]।

शाहजादा खुर्रम ने 1622 में अपने पिता जहाँगीर के विरूद्ध विद्रोह किया, उस समय भी जहाँगीर की आज्ञा से गजसिंह खुर्रम का पीछा करने के लिए शाहजादा परवेज और महावत खाँ के साथ रवाना हुआ और उस समय फलौदी की जागीर उसे दी गई थी और मनसब को बढ़ाकर 5000 जात व 4000 सवार कर दिया गया था[7]। इसी बीच बिलौचपुर के युद्ध में खुर्रम पराजित हुआ और उदयपुर की ओर चला गया। कुछ समय पश्चात् पुनः आधुनिक पटना के पास गंगा नदी के तट पर स्थित हाजीपुर नामक स्थान पर 16 नवम्बर, 1624 को मुगल सेना और खुर्रम के बीच संग्राम हुआ था। युद्ध में भीम सिसोदिया (राजा कर्ण के भाई) ने गजसिंह को ललकारा तो गजसिंह ने अपनी बहादुरी का परिचय दिया, परिणामस्वरूप खुर्रम की सेना के पैर उखड़ गये[8]। हाजीपुर के युद्ध में गजसिंह के शिथिल व्यवहार पर टिप्पणी करना आवश्यक है।

खुर्रम जगत गोसाई का पुत्र था। इस रिश्तेदारी से गजसिंह का सम्बन्धी (गजसिंह खुर्रम के मामा का बेटा) हुआ। सम्भवतः इसीलिए युद्ध के प्रारम्भ में राठौड

नरेश गजसिंह ने सक्रिय रूप से भाग नहीं लिया था। गजसिंह ने यह बहाना किया था कि शाहजादा परवेज ने उसे मुगल सेना के हरावल (अग्र भाग) में नियुक्त नहीं किया। परन्तु जब भीम सिसोदिया ने उसे ललकारा तो उसके जातीय सम्मान को ठेस पहुँची और उसने सम्पूण क्षमता के साथ शौर्य का पदर्शन किया। जहाँगीर ने प्रसन्न होकर उनकी मनसब बढ़ाकर 5000 जात और 5000 सवार कर दी[9]। उस समय किसी भी हिन्दू सरदार को इससे ऊँचा मनसब प्राप्त नहीं था। तत्पश्चात् जब खुरम और जहाँगीर के बीच समझौता हो गया तो जहाँगीर ने गजसिंह को दक्षिण की ओर भेज दिया, मार्च 1626 तक गजसिंह वहीं रहे, कुछ समय पश्चात जहाँगीर की मृत्यु की खबर पाकर गजसिंह अजमेर में भावी मुगल सम्राट खुर्रम(शाहजहाँ) से मिलने के लिए उपस्थित हुआ। इस अवसर पर शाहजहाँ ने गजसिंह का आदर-सत्कार किया और खासा खिलअत, जडाऊ खंजर, फलकहार, जड़ाऊ तलवार, खासे अस्तबल का सुनहरी जीनवाला घोड़ा, खासा हाथी, नक्कारा और निशान देकर, बादशाह जहाँगीर के समय का इनका 5000 जात और 5000 सवार का मनसब यथा नियम स्वीकार कर लिया[10]।

शाहजहाँ को भी जहाँगीर की तरह गजसिंह पर विश्वास प्राप्त हो गया था। आगरा के समीप भौमियों के विद्रोह में शाहजहाँ ने गजसिंह को नियुक्त किया था[11]। 1630 में जब दक्षिण के सूबेदार खानजहाँ लोदी ने विद्रोह किया उस समय भी गजसिंह को ही नियुक्त किया गया था। दक्षिण में भेजने से पहले गजसिंह को शाहजहाँ के द्वारा ''महाराजा'' की उपाधि तथा ''मारोठ का परगना'' उपहार में दिया गया था। इस प्रकार शाहजहाँ के शासनकाल में गजसिंह की प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि हुई थी।

1631 में महाराजा गजसिंह प्रथम की नियुक्ति पुनः दक्षिण में की गई। इस प्रकार लगातार उनकी नियुक्तियाँ दक्षिण में की जा रही थी, साधारणतः इसका कारण यह रहा होगा कि वह दक्षिण व्यक्तियों की गुरिल्ला युद्धनीति से परिचित हो चुका था और लगातार संघषो पर विजय प्राप्त कर रहा था।

जोधपुर राज्य की ख्यात से प्राप्त होता है कि आगरा में रहते समय महाराजा गजसिंह प्रथम अस्वस्थ थे, उस समय बादशाह शाहजहाँ उनकी तबियत का हाल पूछने उसके डेरे पर आया और गजसिंह से पूछा - ''इस समय जो भी तुम्हारे मन में हो वो कहो।'' महाराजा ने निवेदन किया मेरे बाद मेरे पुत्र जसवन्तसिंह को राज्य देने का आप वचन देवे। बादशाह ने इस बात को स्वीकार कर लिया। (वि.स. 1694, ई.स. 1638, 6 मई) रविवार को आगरा में ही महाराजा का देहावसान हो गया और अंतिम संस्कार यमुना नदी के किनारे हुआ[12]।

''गुणरूपक बन्ध'' के अनुसार महाराजा गजसिंह की मृत्यु के समय मारवाड़ के शासन के अधीन 5400 गाँव थे तथा उनका आधिपतय 9 बड़े-बड़े दुर्गो पर स्वीकार किया जाता था।

सहस पंचत्रण गांम-मंडिनव को मुरद्दर।
जसी सहस रखतां-असी सहसां हुई पखर।।
हल मुचे आई पद-असी सहसां असवारां।
सूलड़िया नव लाल-खुदकारों खंदारा।।
राठौड़ मौड़ हिंदुबाण सिर महादुर्ग गढ़ जोधपुर।
गजसिंह कुवंर नृप सूरसिंह-सहुऔ बदे सुर असुर।।

इस वर्णन की पुष्टि जखीरूल खवानीन और पादशाहनामा से भी होती है। जिसमें गजसिंह को श्रेष्ठ और शक्ति सम्पन्न राजपूत राजा लिखा गया है।

अतः 1619-1638 के मध्य मारवाड़ के शासक महाराजा गजसिंह प्रथम मुगल सम्राटों के समर्थक बने रहे थे। इन्होनें सहयोग के काल में मुगल साम्राज्य की प्रंशसनीय सेवा की थी। इस सेवा की एवज में उन्हें औपचारिक उपहार एवं उपाधियाँ प्राप्त होती रही। परिणामतः मारवाड़ के राठौड़ राजाओं की प्रतिष्ठा में उतरोतर अभिवृद्धि हुई। लेकिन सहयोग के इस काल में मारवाड़ का राज्य मुगलों का अधीनस्थ राज्य बन गया था। अर्थात् सहयोग के काल में मारवाड़ का राठौड़ राज्य मुगलों के प्रभाव में रंग गया था।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *रेक, पं. विश्वेश्वर नाथ - मारवाड का इतिहास, भाग 1, राजस्थान ग्रन्थागार 1999 - पृ.स. 199*
2. *लालस, श्री सीताराम-गजगुणरूपक-बन्ध, राजस्थान प्राच्य विद्या पतिष्ठान 1968-पृ.सं. 01*
3. *भार्गव, डॉ. वी.एस-मारवाड़ से मुगलों के सम्बन्ध, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, द्वितीय संशोधित संस्करण-1995-पृ.स.-28*
4. *राणावत, रघुवीर व मनोहर सिंह-जोधपुर राज्य की ख्यात, भारतीय इतिहास अनुसंधान संस्थान-1988-पृ.स. 150*
5. *ओझा, गौरी शंकर हीराचन्द्र-जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग 1, व्यास एण्ड सन्स प्रकाश, अजमर 1995-पृस. 170*

6. गहलोत, जगदीश सिंह – मारवाड़ राज्य का इतिहास, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर–1991–पृ. स. 116
7. भाटी, डॉ. हुकम सिंह – राठौडा री ख्यात, भाग 1, इतिहास अनुसंधान संस्थान, जोधपुर–2007–पृ.स. 166
8. भार्गव, विश्वेश्वर स्वरूप – मारवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परस, मुन्शीराम मनोहरलाल पब्लिसर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1966–पृ.स.73
9. राणावत, मनोहरसिंह–शाहजहाँ के हिन्द मनसबदार, हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर–1973–पृ.स. 01
10. आसोपा, रामकरण
11. मारवाड़ का मूल इतिहास, हिन्दी साहित्य मन्दिर व जोधपुर 1931–पृ.स. 168

– लाहौरी कृत बादशाहनामा, जि. 1, पृ.स.–158, 159

– वीर विनोद, पृ.स. 819

12. भाटी, डॉ. विक्रम सिंह–मूंदियाड़ री ख्यात, ठा. अर्जुन सिंह सोनगरा, जालौर–2005–पृ.स.–76
13. कविराज, श्यामलदास–वीर विनोद भाग 3, राजस्थान ग्रन्थागार–2007, पृ.स. 820

कौटिल्य के मुख्य राजनीतिक विचार

एकता सागर
शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

कौटिल्य के राजनीतिक विचारों के आधार के रूप में ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों का विशेष योगदान है। इन परिस्थितियों के अतिरिक्त “वैदिक परम्परा” का सैद्धान्तिक प्रभाव भी कौटिल्य पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। कौटिल्य ने ‘परम्परागत मर्यादाओं’ के भीतर ‘राजनीतिक समस्याओं’ का हल खोजा। कौटिल्य के राजनीतिक चिंतन में उसके व्यवहारिक उद्देश्य की स्पष्ट झलक मिलती है। सिद्धान्तों का निरुपण कौटिल्य का उद्देश्य नहीं था। वह वास्तविक समस्या का हल खोजना चाहता था। इसके लिये कौटिल्य ने पूर्व प्रचलित सिद्धान्तों में समन्वय और कुछ संशोधन करके अपने उद्देश्यों को सिद्ध करने का प्रयास किया।

संकेताक्षर : *सप्तांग सिद्धान्त, धर्म और नैतिकता, अर्थ, राजकोष, राजत्व आदर्श ।*

कौटिल्य के राजनीतिक चिंतन का आधार राज्य के सप्तांग सिद्धान्त है।

कौटिल्य ने ‘अर्थशास्त्र के छठे अधिकरण’ में राज्य के सात अंगों की विवेचना की है –

राजा या स्वामी - कौटिल्य **राजा** या **स्वामी** को राज्य का सर्वप्रथम और शीर्षस्थ अंग मानते है। राजा राज्य का प्रथम नागरिक होता है तथा राज्य की समस्त शक्तियां राजा में ही निहित होती है, चूंकि राजा राज्य का सर्वोच्च पदाधिकारी होता है। अतः उसका गुणगान और चरित्रवान होना अतिआवश्यक है। कौटिल्य का मत था कि शिक्षा द्वारा ***‘सद्‌गुणों का विकास’*** किया जा सकता है। राजा की शक्तियाँ काफी व्यापक होती है, अतः उसके कुशल संचालन के लिये राजा में उच्च नेतृत्व की क्षमता होनी चाहिये। कौटिल्य राजा के लिये **‘कठोर ➢ दिनचर्या’** की व्यवस्था करते है। कौटिल्य का मत था कि परिस्थितियों के अनुरूप राजा अपनी दिनचर्या में परिवर्तन भी कर सकता है। राजा के बाद कौन राजा बने अर्थात् **‘उत्तराधिकार के प्रश्न’** पर कौटिल्य का राजा को कहना था कि ‘संकट के समय के अलावा राजा के ज्येष्ठतम् पुत्र को उत्तराधिकारी बनाने के नियम की पालना की जानी चाहिये।

➢ **अमात्य या मंत्री** -‘अमात्य या मंत्री’ राज्य के दूसरे महत्वपूर्ण अंग के रूप में कौटिल्य द्वारा विवेचित किये गये है। कौटिल्य का मत था कि अमात्यो की नियुक्ति राजा स्वयं करें और उसकी नियुक्ति योग्यता के आधार पर की जानी चाहिये। चूंकि अमात्य अति महत्वपूर्ण दायित्वों का निर्वहन करते है, अतः राज्य के लिये योग्य अमात्यों की उपयोगिता स्वतः बढ़ जाती है। राजा से कौटिल्य का सुझाव था कि उसे निर्णय लेते समय अमात्यों से **‘सलाह-मशविरा’** करना चाहिये।

➢ **प्रादेशिक क्षेत्र या जनपद** - कौटिल्य के अनुसार जनपद का अर्थ राज्य की प्रादेशिक सीमाओं और उसके भीतर रहने वाले लोगों से है। व्यक्तियों से विहिन–प्रादेशिक क्षेत्र और प्रादेशिक क्षेत्र विहिन व्यक्ति जनपद नहीं कहला सकते। आधुनिक राज्य की परिभाषा के दो महत्वपूर्ण तत्व–**‘क्षेत्र और व्यक्तित्व’** कौटिल्य की जनपद की अवधारणा से मेल खाते है।

➢ **दुर्ग** - दुर्ग राज्य का चौथा अंग है। दुर्ग राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से आवश्यक समझे गये है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में 'चार प्रकार' के दुर्गों' का उल्लेख किया है–औदिक दुर्ग : जो दुर्ग चारों ओर से जलराशि से घिरा हो, पर्वत दुर्ग : जो दुर्ग पहाड़ों पर बना हो तथा चारों ओर से पत्थरों से घिरा हो, धान्वन दुर्ग : मैदान पर बना दुर्ग, वन दुर्ग : वनों से घिरा दुर्ग।दुर्ग राज्य की जनता की सुरक्षा के लिये आवश्यक समझे गये है।

➢ **राजकोष** - राज्य के पांचवे अंग के रूप में कौटिल्य 'राजकोष' को विवेचित करते है। कौटिल्य राज्य के लिये राजकोष के अत्याधिक महत्व को स्वीकारते हुए कहते हैं कि "चूंकि सभी उधम धन (वित्त) पर निर्भर होते है अतः सर्वाधिक ध्यान राजकोष पर दिया जाना चाहिये।'' मनुष्य को धर्म से सुख प्राप्त होता है। 'राज्य' धर्म का मूल होता है और स्वयं राज्य का मूल अर्थ अर्थात् 'वित्त' होता है।

➢ **दण्ड या सेना** - कौटिल्य प्रजा के रक्षण तथा राज्य की सुरक्षा के लिये दण्ड या सेना को राज्य का महत्वपूर्ण अंग मानते है।

➢ **मित्र** –'मित्र' को कौटिल्य राज्य का महत्वपूर्ण अंग मानते है, क्योंकि राज्य की सुरक्षा के लिये 'मित्र राज्यों' का होना आवश्यक है जो राज्य की संकट के समय सहायता कर सके।[1]

कौटिल्य के अनुसार राज्य इन सात तत्वों से मिलकर बनता है चूंकि ये तत्व एक दूसरे के साथ इतने निकट से जुड़े है जैसे ये एक ही शरीर के भिन्न–भिन्न अंग है इसीलिये इन्हें 'राज्य के अंग' कहा जाता है। जैसे शरीर के किसी अंग– आँख, कान, हाथ, पैर इत्यादि का पृथक् अस्तित्व संभव नहीं है और इन अंगों को काट देने से शरीर मृत या विकलांग हो जाता है, वैसे ही राज्य के ये अंग राज्य से पृथक् नहीं रह सकते, यदि इनमें से किसी अंग को हटा दे तो राज्य भी विकलांग हो जाता है। कौटिल्य ने राज्य के प्रत्येक अंग को कार्य व महत्व की दृष्टि से मानव शरीर के भिन्न–भिन्न अंगों के तुल्य सिद्ध किया है। इस प्रकार 'सप्तांग सिद्धान्त' न केवल राज्य के सावयव का निरूपण करता है, बल्कि यह संकेत भी देता है कि राज्य के किस–किस अंग का क्या–क्या कार्य है ? इसके अतिरिक्त, इस सिद्धान्त से यह भी पता चलता है कि राज्य की विशेषताएं क्या–क्या है ? दूसरे शब्दों में, 'राज्य का अस्तित्व तभी संभव है, जब उसमें राजा, मंत्री, मित्र, कोष, सेना, दुर्ग, जनपद का समावेश है।

राज्य की सर्वोच्चता

कौटिल्य ने राज्य को अपने आप में साध्य मानते हुए सामाजिक जीवन में उसे सर्वोच्च स्थान दिया है। धर्म और नैतिकता के प्रति उनका दृष्टिकोण रूढ़िवादिता से परे है। 'अर्थशास्त्र' के रचयिता कौटिल्य 'अर्थ' को सर्वोच्च स्थान देते है। कौटिल्य ने राजा का कार्यक्षेत्र इतना विस्तृत रखा है कि उसने राज्य की सम्पूर्ण संस्थाओं को मनुष्य के अध्यात्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक कल्याण का साधन बना दिया है। कौटिल्य ने राज्य को न केवल धर्म के संरक्षण के लिये उत्तरदायी ठहराया है बल्कि उसे पति–पत्नी, पिता–पुत्र और भाई–बहन, गुरू–शिष्य इत्यादि के संबंधों की पवित्रता की रक्षा का दायित्व भी सौंप दिया है।[2]

राजा की दिनचर्या

कौटिल्य राजा को सतर्क एंव संयमी बनाये रखने के लिये राजा की दिनचर्या का भी वर्णन करते है। कौटिल्य ने राजा के प्रत्येक क्षण के कार्यो का वर्णन किया है और हमेशा इस बात पर ध्यान दिया है कि राजा के प्रत्येक कार्य जनहितकारी हो और राजा हमेशा संयमी व संतुलित जीवनयापन करे, क्योंकि राजा के संतुलित, सयंमित एवं जनहित में किये गये कार्य ही राज्य की समृद्धि का आधार है।कौटिल्य राजा के 'दिन व रात' के कार्यक्रम को 24 घण्टे व 16 घड़ियों में विभाजित करते है। कौटिल्य राजा के दिन–रात के कार्यक्रम को 16 घड़ियों में बांटते है, इसीलिये प्रत्येक घड़ी 1 घण्टा, 30 मिनट (1) घण्टा की होती है।

कोई भी राजा केवल राजा तब तक ही होता है जब तक वह केवल राज करता है, शासन नहीं। लेकिन जो राजा राज तथा शासन दोनों करता है, वह राजा मात्र नहीं होता वरन् प्रशासक, महाप्रबंधक, मुख्य कार्यपालक तथा प्रशासनिक प्रधान भी होता है। कौटिल्य ने अपने राजा को राज्य के एक प्रधान सेवक की भांति समस्त जनता की सेवा करने का उपदेश दिया है। कौटिल्य का राजा केवल राजा ही नहीं वरन् 'महाप्रबंधक' तथा प्रमुख 'कार्यपालक' है। इस बात की पुष्टि कौटिल्य द्वारा दी गई राजा की दिनचर्या से होती है। राजा अपना बहुमूल्य समय राज्य प्रशासन की देखरेख में लगाये। दिनचर्या के माध्यम से राजा एक महान् प्रशासक बन सकता है। POSDCORD सिद्धान्त के संदर्भ में भी कौटिल्य का राजा बिल्कुल खरा उतरता है। Planning–योजना बनाना, Organization–संगठन बनाना, Staffing–स्टाफ की व्यवस्था करना, Direction –निर्देश देना, Co-ordinating– समन्वय, Reporting–रिपोर्ट देना, Budgeting–बजट तैयार करना।

कौटिल्य ने राजा को एक कुशल प्रशासक बनाने के लिये यह विचार दिया है कि प्रत्येक राजा को किसी भी

कार्य को करने से पहले उसकी सुनियोजित योजना बनानी चाहिये। योजना को संगठित किया जाना चाहिये। योजना के सफल संचालन के लिये उसके लिये स्टाफ की व्यवस्था करनी चाहिये। योजना के सफल क्रियान्वयन के लिये निर्देश दिया जाना चाहिये। योजना को समन्वित किया जाना चाहिये तथा योजना की समय–समय पर रिपोर्ट देनी चाहिये तथा अंत में बजट तैयार किया जाना चाहिये।

राजा की शक्तियाँ और कार्य

➢ **राज्य की सुरक्षा** - कौटिल्य ने राज्य का प्रथम एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य राज्य के सुरक्षात्मक कार्य को बताया है। प्रत्येक राजा को राज्य के बाहरी शत्रुओं से तो बचाव करना ही है उसके कुछ आंतरिक शत्रु भी होते है। उनसे भी सुरक्षा के उपाय राज्य को ही करने पड़ते है। राज्य के सीमा पार जो पड़ोसी राज्य होते है वे सदैव इसी प्रयास में रहते है कि वह उसे कमजोर कर उस पर चढ़ाई करके अपने कब्जे में कर ले। अतः राजा को इससे बचाव हेतु ‘सैनिक प्रशासन’ पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

➢ **शांति व्यवस्था** - सदैव राजा को अपने क्षेत्र में ‘शांति एवं व्यवस्था’ का वातावरण कायम रखना पड़ता है। इसी से वह बाह्य शत्रुओं से भी मुकाबला कर सकता है। यदि किसी राज्य की जनता अपने राज्य कार्य से सन्तुष्ट नहीं है तो वैसी स्थिति में बाहरी शत्रुओं के इशारे पर अपने शासक के विरुद्ध बगावत भी कर सकती है, जिसका लाभ शत्रु राष्ट्र उठा सकता है। अतः आवश्यक है कि राज्य अपने आंतरिक क्षेत्र में कानून एवं व्यवस्था का पालन जनता से कराये जिससे सर्वत्र अनुशासनिक वातावरण कायम रहे। राज्य में ‘शांति एवं व्यवस्था’ बनाये रखने हेतु कौटिल्य ने ‘गुप्तचर विभाग’ का गठन किया है। गुप्तचरों का यह कर्त्तव्य है कि राज्य द्रोहियों, अपराधियों तथा गलत कार्य करने वालों का पता लगाये और उसकी सूचना राजा को दे ताकि राजा उसे दण्डित कर सके। तभी राज्य में शांति एवं सुव्यवहार का वातावरण कायम रह सकता है।

➢ **प्रजा की रक्षा** - राजा का यह परम कर्तव्य होता है कि उसकी प्रजा खुशहाल हो। राज्य प्रशासन ऐसा हो जिससे कि उस राज्य में निवास करने वाली जनता अमन चैन की जिन्दगी बसर करे। राज्य अपने कार्यों के माध्यम से जनता को चोरी, डकैती, हिंसा तथा भ्रष्टाचार से बचाता है और जनहित का वातावरण कायम रखता है। प्रजा की रक्षा हेतु राज्य तरह–तरह के लोक कल्याणकारी कार्यक्रमों का निर्माण करता है।

➢ **राज्य का विस्तार** - कौटिल्य का मानना है कि कोई भी राज्य अपने आप में पूर्ण नहीं होता है वरन् उसे सदैव अपनी ‘सीमा का विस्तार करना’ चाहिये सीमा विस्तार द्वारा राज्य अपनी जनता को ज्यादा से ज्यादा कल्याणकारी साधन उपलब्ध कराता है। कृषि योग्य भूमि, खान, नदी, झील, झरना आदि की प्राप्ति हेतु ‘राज्य का विस्तार’ अर्थात् पास के छोटे–छोटे राज्यों को येन–केन–प्रकरेण अपने राज्य में मिलाकर राज्य का विस्तार करना प्रत्येक राज्य का प्रमुख कार्य होता है।

➢ **कृषि से सम्बन्धित कार्य** :- कृषि कार्यों का सम्पादन कराना, राज्य का प्रमुख कार्य है। कौटिल्य के अनुसार, “राज्य कृषि विकास हेतु नहर, तालाब, कुओं, बांधों आदि के माध्यम से समुचित सिंचाई की व्यवस्था करता है। कृषि के विकास हेतु कौटिल्य ने राज्य द्वारा “सीताध्यक्ष” नामक एक उच्चाधिकारी को नियुक्त किया है जो किसानों की समस्या राजा तक सुनाता है और राज्य द्वारा प्राप्त सहायता किसानों तक पहुँचाता है।’’

➢ **औद्योगिक एवं व्यापारिक कार्य** :- राज्य के समुचित विकास हेतु औद्योगिक तथा व्यावसायिक कार्यों का सम्पादन राज्य द्वारा करने की सलाह कौटिल्य ने दी है। उद्योग के विकास हेतु राज्य को अनेक नयी–नयी कम्पनियों का गठन करना होगा। उसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की खपत हेतु ‘समुचित विपणन व्यवस्था’ का संचालन करना होगा। ‘यातायात के समुचित साधनों की उपलब्धता’ भी राज्य का ही एक प्रमुख कार्य होता है। कौटिल्य ने राज्य द्वारा व्यापारिक एवं औद्योगिक कार्यों पर निगरानी रखने एवं उसका विकास करने हेतु ‘‘पण्याध्यक्ष’’ नामक अधिकारी की नियुक्ति की है। इसी कार्य हेतु ‘पौतवाध्यक्ष एवं शुल्काध्यक्ष’ नामक अधिकारियों की भी नियुक्ति की जाती है।

➢ **वन एवं खान की सुरक्षा एवं विकास** :- राज्य का एक यह भी प्रमुख कर्त्तव्य होता है कि वह अपने राज्य में स्थित वन एवं खान को समुचित सुरक्षा दे एवं उसका विकास करें। राज्य की सुरक्षा हेतु राजा अपने राज्य के चारों ओर दुर्गम जंगल लगवा दे और उस जंगल की ओर आक्रामक पशुओं को छोड़ दे ताकि बाहरी दुश्मन आसानी से उसके क्षेत्र में गलत इरादे लेकर प्रवेश न कर सके। कौटिल्य ने अपनी पुस्तक ‘अर्थशास्त्र’ के दूसरे अधिकरण के प्रथम अध्याय में लिखा है कि ‘‘राजा सर्वप्रथम लकड़ी के जंगल जिसमें विशेषकर चंदन के पेड़ लगवाये, जिसमें विषैले सर्प स्वतः जंगल में आ जाते है। राज्य को अपने क्षेत्र में खनिज की भी सुरक्षा एवं विकास पर विशेष ध्यान देना चाहिये।’’

➢ **पशुओं का संवर्द्धन एवं संरक्षण** -कौटिल्य के अनुसार,

''राज्य का एक प्रमुख कार्य 'पशुधन का संवर्द्धन एवं संरक्षण' करना भी है। पशुधन राज्य की एक बहुमूल्य धरोहर है। अतः राज्य द्वारा इसकी सुरक्षा, चारागाह की व्यवस्था तथा नस्ल में सुधार आदि कार्य किये जाने चाहिये। कौटिल्य ने पशुओं के संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु 'जौ अध्यक्ष', 'हस्तीध्यक्ष', 'अश्वाध्यक्ष', 'सेनाध्यक्ष' तथा 'विक्ताध्यक्ष' नामक अधिकारियों के नियुक्ति की व्यवस्था की है।

➢ **राजा सम्प्रभु के रूप में** - कौटिल्य ने राजा को राज्य के सात अंगों में सबसे महत्वपूर्ण व उच्च स्थान प्रदान किया है जो शासन की समस्त शक्तियों का उपयोग करता हो तथा उसकी शक्तियों पर किसी प्रकार की वैधानिक सीमाएँ न हो।

➢ **कार्यपालिका संबंधी कार्य** :- कौटिल्य ने राजा को 'शासन की धुरी' कहा है। राज्य प्रधानमंत्रियों, राज्य के अन्य नागरिक, सैनिक, उच्च पदाधिकारियों आदि की नियुक्ति राजा के माध्यम से ही की जाती है। गुप्तचरों की नियुक्ति एवं उनके प्रतिवेदनों पर वाद–विवाद करना, राज्य में शांति व्यवस्था को कायम करना, सेना पर नियंत्रण करना, विदेश नीति व युद्ध नीति का संचालन करना, प्राकृतिक आपदाओं से राज्य की रक्षा आदि राजा की प्रमुख कार्यपालिका संबंधी शक्तियां व कार्य है।

➢ **विधायी शक्तियाँ** :- कौटिल्य राजा को कानून निर्माता के रूप में नहीं स्वीकारता वरन् उसे एक प्रबंधक के रूप में स्वीकारता है। राजा को विधि का स्त्रोत माना गया है। 'कानून की व्यवस्था' एवं परम्परागत कानूनों को लागू करने का उत्तरदायित्व उस पर ही होता है।

➢ **न्यायिक शक्तियां** :- कौटिल्य ने राजा को न्याय का मुख्यस्त्रोत एंव न्याय का अंतिम न्यायालय माना है। राजा द्वारा न्यायालय में न्यायधीशों की नियुक्ति की जाती है। कौटिल्य के अनुसार राजा न्यायपालिका का अध्यक्ष अवश्य होता है, लेकिन कानून का स्त्रोत नहीं।

➢ **धर्म संबंधी कार्य** :- कौटिल्य के अनुसार, "राजा पुरोहितों व अन्य ऋत्विकों को नियुक्ति करता है तथा उसे विभिन्न प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान व यज्ञ भी करने होते थे।

➢ **सैनिक कार्य** :- राजा अपने निवास व दुर्ग का स्थान छांटता था। कौटिल्य ने राजा को सैनिकों का निरीक्षण व परीक्षण करने का अधिकार प्रदान किया है। कौटिल्य ने राजा को सेना का सर्वोच्च सेनापति स्वीकार किया है। उसे प्रतिदिन सेना के अंगों का निरीक्षण करना होता था।

➢ **युद्ध करना** :- कौटिल्य की मान्यता थी कि युद्ध करना राज्य का प्रमुख कार्य है। राजा को राज्य की रक्षा के लिये युद्ध के लिये हमेशा तैयार रहना चाहिये। कौटिल्य के अर्थशास्त्र का केन्द्र एक ऐसा विजीगीषु राजा है जिसका उद्देश्य निरंतर नई भूमि प्राप्त कर अपने क्षेत्र में वृद्धि करना है।

➢ **भूमिकर संबंधी शक्तियाँ** :- कौटिल्य के अनुसार राज्य करो की वसूली विश्वस्त अधिकारियों द्वारा होनी चाहिये।इस क्षेत्र में राजा की शक्तियाँ अंतिम तथा व्यापक थी। यह देखना उसका कर्त्तव्य था कि कोष खाली न रहे। प्रतिदिन आय और व्यय के ब्यौरे को देखना व इस विभाग के उच्च अधिकारियों को नियुक्त करना भी राजा का प्रमुख कर्तव्य है।

➢ **वैदेशिक सम्बन्धों (पर राष्ट्र)का संचालन** :- कौटिल्य ने राजा के प्रमुख कार्यो में वैदेशिक संबंधों का संचालन आवश्यक माना है। राज्य की सुरक्षा प्रजा एवं उसके जीवन, स्वतंत्रता व सम्पति की रक्षा के लिये इस ओर ध्यान देना आवश्यक है। राज्य में शांति व्यवस्था बनाये रखने के लिये दूसरे राष्ट्रों के साथ मित्रतापूर्ण संबंध बनाये जाने चाहिये। राजा को सदैव सतर्क एवं कर्मठ होना चाहिये। राजा का व्यवहार ऐसा हो जो प्रजा के लिये प्रेरणा का स्त्रोत बने। राजा को हमेशा जनता के साथ सम्पर्क बनाये रखना चाहिये। अतः कौटिल्य के अनुसार राजा को सदैव कर्त्तव्य परायणता में संलग्न रहना चाहिये।

"मानवीय तत्व" राज्य का मुख्य तत्व

कौटिल्य ने राज्य को एक मानवीय तत्व के रूप में स्वीकार करते हुए इसका विशेष महत्व बताया है। उसकी यह मान्यता थी कि "राज्य का निर्माण व्यक्तियों द्वारा होता है तथा उनके बिना राज्य एक बाँझ गाय के समान है।" कौटिल्य के राज्य के संदर्भ में दिये गये विचार प्लेटो के इस कथन के काफी समीप है –"राज्य का निर्माण पहाड़ों और पेड़ों से नहीं होता बल्कि वहां रहने वाले नागरिकों के चरित्र से होता है, जो पासा पलट देता है और प्रत्येक वस्तु उसका अनुसरण करती है।" कौटिल्य की यह मान्यता थी कि "विजेता राजा का यह कर्त्तव्य है कि वह विजित राष्ट्र के नागरिकों के हितों को ध्यान में रखे। बिना जनता वे न तो जनपद है और न ही साम्राज्य। कौटिल्य ने अपने ही काल के यूनानी दार्शनिक अरस्तु की भांति 'राज्य को व्यक्तियों का एक संघ' माना है, जिसकी उत्पति व्यक्तियों के हित साधन के उद्देश्य की पूर्ति के लिये हुई है। अतः राज्य का उद्देश्य नागरिकों की सुख समृद्धि है।''[3]

राजा के गुण

कौटिल्य ने राजा में चार प्रकार के गुणों का होना आवश्यक बताया है –अभिगामिक गुण, प्रजागुण, उत्साह गुण, आत्म सम्पन्न गुण। कौटिल्य ऐसे कुलीन व्यक्ति को राजा बनाना चाहता है जिसके समक्ष प्रजाजन राजा के व्यक्तिगत गुणों के कारण ही नतमस्तक हो जाये। कौटिल्य ने 'चरित्र' को ही राजा के लिये सबसे बड़ी पूंजी माना है। कौटिल्य द्वारा "अर्थशास्त्र" में राजपुत्रों के 'शिक्षण–प्रशिक्षण' पर विशेष ध्यान दिया गया है। राजा के लिये विद्याध्ययन की आवश्यकता पर कौटिल्य ने जितना बल दिया है उतना ही राजा के जितेन्द्रिय होने पर भी बल दिया है। राजा को काम, क्रोध आदि शत्रुओं का सर्वथा परित्याग करके इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनी चाहिये। कौटिल्य 'राजतंत्र' को एक आदर्श के रूप में स्वीकार करता है तथा वह शासन की समस्त शक्तियों को सम्राट में ही केन्द्रित कर देता है। कौटिल्य के अनुसार, "राजा का जीवन कर्त्तव्यमय" है। प्रजा के हित में राजा का हित है। राजा को अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिये सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिये। क्योंकि राजा के कर्तव्यशील होने पर ही समस्त प्रजा प्रयत्नशील होती है।

राजा की शक्ति एवं उसके प्रतिबंध

कौटिल्य का राजा 'राज्य का सर्वाधिक प्रमुख तत्व है। उसके पास असीमित अधिकार है एवं कौटिल्य ने उसे बल, बुद्धि, चातुर्य एवं चरित्र में भी महान सद्गुणी बनाने का विचार दिया है। कौटिल्य का राजा 'सम्प्रभुता का प्रतीक' है किन्तु वह निरंकुश नहीं है। राजा के ऊपर अनेक 'प्रतिबंध' है। राजा का प्रशिक्षण एवं संस्कार, धार्मिक नियम एवं रीति रिवाज, मंत्रीपरिषद एवं जनमत राजा पर नियंत्रण रखने का कार्य करते है। राजा मनमाने तरीके से कोष का "व्यय" भी नहीं कर सकता। कौटिल्य ने राज परिवार के सदस्यों के लिये वेतन निर्धारित कर दिया है। राजा राज कार्यो में मनमाना आचरण भी नहीं कर सकता है क्योंकि कौटिल्य राजा पर यह प्रतिबंध लगाता है कि आत्म सम्पन्न राजा के यदि सुयोग्य अमात्य न हो तब भी वह उन्हीं का आश्रय ले किन्तु सुयोग्य अमात्य आदि के होने पर अमात्य सम्पति रहित राजा का आश्रय नहीं लेना चाहिये। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राजा की योग्यता एवं कर्त्तव्यों की जो रुपरेखा प्रस्तुत की गई है वह 'प्लेटो' के दार्शनिक शासक के समतुल्य है। कौटिल्य का राज्य एक सकारात्मक राज्य है। कौटिल्य का राज्य शांति, विकास, रक्षा एवं कल्याणकारी कार्यक्रमों के अतिरिक्त धर्म की व्यवस्था एवं नैतिकता को बनाये रखने की भी व्यवस्था करता है।[4]

कौटिल्य के अनुसार शासन का केन्द्र बिन्दु 'राजा' है। परन्तु राजा को धर्म के अनुसार शासन करने का आदेश देकर कौटिल्य ने राज्य शक्ति मर्यादित कर दी। उसे पुर, ग्राम, देश तथा सामाजिक संगठनों, श्रेणी, निगम और पूग आदि की विधियों को ध्यान में रखने का आदेश था। राजा को 'वर्णाश्रम धर्म' को पूर्णतया स्थापित और संरक्षित रखना था जो स्वतः राज शक्ति पर एक प्रतिबंध हो गया। 'राज्य कर' व्यक्ति शोषण की एक राजनीतिक विधि होती है। कौटिल्य ने भिन्न–भिन्न करों में राजा का भाग तथा जनहित में व्यय होने वाला भाग दोनों निश्चित कर दिये थे। कर की दर का निर्धारण करने में राजा को 'क्षेत्र विशेष की विधि परम्पराओं को, प्रधानता देने का आदेश था। राजा को 'षड्भाग'उसके वेतन के रूप में प्रजा के रक्षणार्थ ही मिलता था। कर के स्वरूप और अंश को तथा कौन–कौन से कर राजा किन–किन कार्यो पर खर्च कर सकता है, यह निश्चित कर कौटिल्य ने राज शक्ति पर व्यवहारिक प्रतिबंध लगा दिये। कौटिल्य का कहना है कि, 'राजा किसी कठिन समस्या के उपस्थित होने पर मंत्री और मंत्रिपरिषद् को बुलावे। उस समय अधिकांश व्यक्ति जिस बात की पुष्टि करे वही उपाय वह कार्य में परिणत करे। कार्य सिद्धि के लिये राजा को उचित मन्त्रणा मिल सके इसीलिये कौटिल्य मंत्रिपरिषद् के तीन या चार सदस्यों से मन्त्रणा करने की सम्मति देता है। राजा को न्याय संगत परामर्श मिले, जिसकी वह सहज ही अवहेलना न कर सके, इसके लिये वह मंत्रियों की शिक्षा, कुलीनता एवं चारित्रिक विशिष्टताओं पर विशेष बल देता है।[5]

राजत्व आदर्श

कौटिल्य के अनुसार, "राजा का कर्त्तव्य धर्म की रक्षा करना है और जो राजा धर्म, व्यवहार, संस्था, न्याय के अनुसार शासन करता है वह समुद्र की सीमा तक विस्तृत पृथ्वी को जीत लेता है। यदि राजा सम्पन्न हो तो प्रजा भी सम्पन्न होती है। राजा का जो शील होता है वही शील प्रजा का भी होता है। राजा दुष्ट अमात्यों को हटाकर नए अमात्यों की भी नियुक्ति कर सकता है।[6]कौटिल्य प्रबल शक्तिशली राजतंत्र के समर्थक है। राजा सर्वशक्तिमान है। प्रजा की मत्स्य न्याय से वही रक्षा करता है। प्रजा के कल्याण के लिये ही वह 'दण्ड' को धारण करता है।

राजा की सतर्कता

कौटिल्य ने राजा को कुछ बातों में सतर्क रहने की भी सलाह दी है। उदाहरण राजपरिवार के पुरुषों तथा स्त्रियों पर राजा को पूर्ण विश्वास नहीं करना चाहिये। कौटिल्य की मान्यता है कि राजपुत्र केकड़े के स्वभाव

वाले होने के कारण अपने पिता को ही खा जाते है। अतः राजा को अपने पुत्र पर तर्क दृष्टि रखनी चाहिये। अपने सेवकों पर भी राजा को पूर्ण विश्वास नहीं करना चाहिये।

वंशानुगत राजतंत्र

कौटिल्य वंशानुगत राजतंत्र का समर्थन करता है। उसका मत है कि एक राजपरिवार में ही सत्ता जारी रखना श्रेयस्कर है। राजा की अचानक मृत्यु के बाद प्रधानमंत्री को आत्मगुण सम्पन्न राजपुत्र को ही राजगद्दी पर बैठाना चाहिये।

राजा के विशेष अधिकार

राजा के विशेष अधिकार है– राजा अदण्ड्य है, वह करो से मुक्त है, किसी प्रजाजन का उत्तराधिकारी न होने पर वह उसकी सम्पत्ति का अधिकारी है, पृथ्वी में गड़े हुए धन पर उसका अधिकार है, न्यायालय में उसको साक्षी नहीं माना जा सकता है, समाज में उसका स्थान सर्वोच्च है।[7] कौटिल्य ने राज्य को केवल नागरिकों की आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा का काम ही नहीं सौंपा है वरन् व्यक्ति के जीवन के पूर्ण विकास के लिये राज्य को आवश्यक माना है। अर्थशास्त्र ने अच्छे राज्य का आधार 'सुदृढ़ अर्थव्यवस्था' को माना है ताकि उसके निवासी अपने जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति कर सके। अर्थशास्त्र के माध्यम से व्यक्ति को धर्म, अर्थ, कामतीनों की प्राप्त करनेका प्रयास किया गया है। [8]

राजा के अधिकार

ब्राह्मणादि, चतुवर्ण एवं ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रमों को बनाये रखना, राजा का धर्म होता है। लोकयात्रा की भांति रक्षा के लिये राजा को वास्तविक दंडधर होकर राज्य का शासन करना चाहिये। कौटिल्य का दृढ़ विश्वास है कि वर्णाश्रम धर्म का सुचारू रूप से पालन होने पर स्वर्ग तथा मोक्ष की भी प्राप्ति की जा सकती है। स्वधर्म का उल्लंघन होने पर समाज में 'कर्मसंकर' तथा 'वर्णसंकर' का प्रसार होता है और सारा समाज दूषित हो जाता है। जनसाधारण को स्वधर्म से भ्रष्ट नहीं होने देना राजा का प्रमुख कर्त्तव्य है। [9]

राजा की शिक्षा

कौटिल्य ने राजा की शिक्षा पर विशेष बल दिया है तथा राजा को 'दार्शनिक सम्राट' माना है। कौटिल्य को यह विश्वास था कि यदि एक कुलीन तथा होनहार व्यक्ति को बचपन से ही उचित शिक्षा दी जाये तो उसे एक 'दार्शनिक राजा' बनाया जा सकता है। अतः 'अर्थशास्त्र' में उस शिक्षा का वर्णन विस्तार से किया गया है जो बचपन और युवावस्था में राजा को दी जानी चाहिये। कौटिल्य के शब्दों में, "भली–भांति शिक्षा प्राप्त राजा समस्त प्रजाजनों के हित में लगा हुआ तथा प्रजा के रक्षण में तत्पर, चिरकाल तक पृथ्वी का उपभोग करता है।"

कौटिल्य के शब्दों में,"जिस प्रकार घुण (एक प्रकार का कीड़ा जो लकड़ी को भीतर से काट कर नष्ट कर देता है) से कटी हुई लकड़ी शीघ्र नष्ट हो जाती है उसी प्रकार जिस राजकुल के राजकुमार शिक्षित नहीं होते है, वह राजकुल बिना किसी युद्धादि के स्वयं ही नष्ट हो जाता है।" राजकुमार को शिक्षा देने योग्य अवस्था के विषय पर कौटिल्य लिखते हैं कि बालक का जब मुंडन संस्कार हो जाये तो वर्णमाला और अंकमाला का ज्ञान व अभ्यास कराया जाये तथा उपनयन के बाद त्रयी, आन्वीक्षिकी, वार्ता और दण्डनीति का ज्ञान कराया जाये। 'त्रयी विद्या' के द्वारा 'वर्ण और आश्रम' व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त कर उसे सुरक्षित रखने का प्रयास करता है जिससे उसे धर्म और अधर्म का ज्ञान भी होता है। 'वार्ता' के अध्ययन से राजा राज्य की आर्थिक समस्याओं को समझकर उन्हें नियंत्रित करता है। 'दण्डनीति' में सुशिक्षित राजा ही अपने राज्य में शांति और सुव्यवस्था स्थापित कर लोक कल्याण में वृद्धि कर पाता है। आन्वीक्षिकी विद्या राजा की बुद्धि को स्थिर रखती है। यह विद्या सभी विद्याओं का प्रदीप, सभी कार्यों का साधन और सब धर्मों का आश्रय मानी गई है।[10]

कौटिल्य का राजा 'राजनैतिक निकाय' का मुख्य आधार है। शासन सत्ता का वास्तविक प्रयोगकर्ता स्वयं राजा होता है। साम्राज्य विकास एवं स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था हेतु स्वामी एक प्रेरक शक्ति है, जिसे चाणक्य ने सामान्य हितों का अभिभावक, धर्म प्रवर्तक एवं कानून का प्रबंधक कहा है। कौटिल्य अपने राजा को राज्य का केवल शासक ही नहीं देखना चाहता वरन् वह उसे राजर्षि के रूप में देखना चाहता है।[11]कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में राजा को 'राज्य' कह दिया है क्योंकि राज्याभिषेक होते ही राजा सुस्थिर एवं अक्षय शक्ति का केन्द्र हो जाता है। राज्य के अन्य सभी अंगों पर उसी का नियंत्रण होजाता है। उसके निर्णयों का सीधा प्रभाव राष्ट्र पर पड़ने लगता है। उसके गलत निर्णय एवं कार्यों से राष्ट्र का भी नाश हो जाता है।[12] कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में राजा की कुलीनता पर पर्याप्त जोर दिया है क्योंकि संकटों का मुकाबला करने वाली जनता प्रायः कुलीन राजा के प्रति ही स्वामिभक्ति प्रकट करती है।

राज्यों के प्रकार

अर्थशास्त्र में मुख्यतः राजतंत्र को श्रेष्ठ माना गया है

और इसी संगठन से संबंधित विचार भी प्रकट किये गये है। राजतंत्र में राज्य शक्ति कुलीन वर्ग के हाथ में रहती है और उपयुक्त अनुशासन तथा प्रजा में स्वामिभक्ति की स्थापना की जा सकती है। कौटिल्य के अनुसार राजतंत्र जनता को एक स्थाई, व्यवस्थित तथा केन्द्रीयकृत शासन दे सकता था। राज्य के तीन प्रकार – द्वैराज्य, वैराज्य एवं संघ राज्य।

राजा और राजपद

अर्थशास्त्र के अनुसार राज्य में 'वर्णाश्रम धर्म' का पालन करने के लिये 'दण्ड शक्ति' का आविष्कार किया गया है। दण्ड के द्वारा समाज में फैली हुई अराजकता और अव्यवस्था को दूर करके व्यक्ति को उसके धर्मपालन के लिये प्रवृत्त किया जाता है। इस दण्ड का संचालन करने वाली सता 'राजा और राजपद' कहलाती है।[13]

कौटिल्य का प्रमुख राजनीतिक चिन्तन 'जनहित' तथा 'राज्य की सुरक्षा' को लेकर है। यद्यपि कौटिल्य राज्य प्राप्त करने, उसका विस्तार करने, शत्रुओं से राज्य एवं जनता की रक्षा करने हेतु शासन सत्ता की वकालत करते है किन्तु उनकी प्राथमिकता में जनहित भी सम्मिलित है। कौटिल्य सुझाव देते हैं कि "राजा को इस प्रकार कर वसूलना चाहिये जैसे– 'सूर्य समुद्र से वाष्प के रूप में जल ग्रहण करता है और उसे वर्षा के रूप में समुद्र को वापिस लौटा देता है।'"[14]

आचार्य कौटिल्य भारतीय राजनीतिक विचारधारा की उस परम्परा का प्रतिनिधित्व करते है जिसके अन्तर्गत राजा के अधिकार तथा उसकी महत्ता को देश के कल्याण की साधना में उसके उस महान कर्तव्य के अधीन माना जाता है जो राजपद के अधिकारी होने के नाते उसे सौंपा जाता है। कौटिल्य के राजनीतिक विचारों में प्राचीन भारत की धार्मिक परम्परा तथा राजनीतिक परम्परा का स्पष्ट मिश्रण है। एक तरफ तो वह वेदों और स्मृतियों में वर्णित वर्णाश्रम धर्म को स्वीकार करता है, राजा के लिये पुरोहित की नियुक्ति आवश्यक बताता है और ब्राह्मणों को स्मृतियों के अनुसार, सामाजिक एवं कानूनी विशेषाधिकार प्रदान करता है तो दूसरी ओर कौटिल्य ने अर्थशास्त्र की परम्परा को अपनाते हुए राजनीतिक ध्येयों की प्राप्ति के लिये धर्म से किसी भी प्रकार लाभ उठाने की बात कही है।[15]

कौटिल्य ने अपनी कृति अर्थशास्त्र में राज्य के आवश्यक तत्वों का उल्लेख किया है। ये है –निश्चित प्रदेश आन्तरिक शांति बनाये रखने तथा विदेशी आक्रमणों को रोकने के निमित्त आर्थिक और सैनिक संगठनों से सम्पन्न सुसंगठित सरकार तथा अन्य राज्य द्वारा मान्यता।[16]

राजा की सुरक्षा

कौटिल्य ने व्यवस्था की है कि राजा के निवास के लिये विशेष सुरक्षा और सुविधाओं से सम्पन्न राजप्रसाद का निर्माण किया जाना चाहिये। राजप्रसाद को परिखा और प्राकार से परिवेष्टित होना चाहिये। इसको बहुद्वार, बहुप्रकोष्ठ, गुप्त भित्तियों वाला, गुप्त मार्गों तथा सुरंगों से युक्त होना चाहिये। राजप्रसाद में अन्तःपुर, प्रसूतिकागृह, चिकित्सालय, प्रमदवन, सरोवर, वाटिका, मन्त्रणागृह आदि की व्यवस्था होनी चाहिये। राजभवन की सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये।[17] कौटिल्य ने राजा को चारों ओर से शत्रुओं से घिरा देखा है। घर और बाहर हर तरफ खतरा नजर आता है। घर के रसोइये से लेकर, रानी, दास, राजकुमार तथा बाहर अमात्य, मंत्री, सेनापति आदि सबके प्रति कौटिल्य की शंका है। अतः भोजन में विष से बचने के लिये उसको पहले कुछ पक्षियों या पशुओं को खिलाकर तथा कुछ अग्नि में होम कर पीछे राजा को खाना चाहिये, क्योंकि यदि भोजन विषयुक्त हो तो अग्नि से हल्का व नीला धुंआ निकलेगा। राजा की सुरक्षा के लिये भिषज (वैद्य) हमेशा उसके पास रहते थे। कौटिल्य ने रानियों के षड़यंत्रों के उदाहरण दिए है तथा राजा को हिदायत थी कि वह स्वयं किसी रानी के शयन कक्ष में नहीं जायेगा। इसी प्रकार राजकुमारों के षड़यंत्रों से राजा की रक्षा भी एक समस्या थी। राजकुमार विभिन्न तरीकों से धन संग्रह करके या चोरों, पाखंडियों को अपनी ओर करके राजा का वध करवाता था। कौटिल्य का मत था कि राजा को विनयशील, विधावान, काम, क्रोध, लोभ, मोह से रहित होना चाहिये नहीं तो उसका जीवन खतरे में रहता है। कौटिल्य के अनुसार, "राजा उन दोषों को दूर करें जिससे मित्र दूर हो जाते हो तथा उन स्थितियों को दूर करे जिससे मंत्री तथा सेनापति विद्रोह करने को तत्पर हो जाये"।[18]

उत्तराधिकारी का प्रश्न

कौटिल्य ने राजपद के उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये है। उसके मतानुसार सामान्यतः राजा के ज्येष्ठ पुत्र को राजपद का उत्तराधिकारी मानना चाहिये किन्तु केवल ज्येष्ठता ही राजपद को प्राप्त करने की एकमात्र योग्यता नहीं मानी जा सकती। कौटिल्य ने राजकुमारों को बुद्धिमान, आहार्य और दुर्बुद्ध इन तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। बुद्धिमान राजकुमार उसे कहा गया है जो सिखाने से धर्म और अर्थ की शिक्षा को विधिवत ग्रहण कर लें और उस पर आचरण कर लें। जो राजकुमार धर्म और

अर्थ को समझने के पश्चात् उसके अनुसार कार्य नहीं करे उसे 'आहार्य बुद्धि' और जो प्रतिदिन विपति लाने के उपाय सोचे और धर्म तथा अर्थ के विरुद्ध आचरण करे उसे 'दुर्बुद्धि' कहा गया है। कौटिल्य का कहना है कि दुर्बुद्धि को तो कभी भी राजपद देना ही नहीं चाहिये। राजपद सौंपते हुए बुद्धिमान राजा को प्राथमिकता दी जानी चाहिये और उसके अभाव में आहार्य बुद्धि को राज्य सत्ता सौंपी जाए। कौटिल्य ने उत्तराधिकारी की सीमाओं का विस्तार राजवंश की स्त्रियों तक किया है, उनका मत है कि राजा की मृत्यु हो जाने पर राजकुमार, राजकुमार का पुत्र, राजकन्या के पुत्र आदि के अभाव में राजकन्या अथवा गर्भित राजमहिषी को राजपद पर अभिषिक्त करना चाहिये। "उत्तराधिकार के प्रश्न" पर कौटिल्य ने रक्त की शुद्धता पर बहुत जोर दिया है। उन्होंने राजा की जाति में उत्पन्न न होने वाले राजा के पुत्र को उसकी वास्तविक संतति नहीं माना है। ऐसा राजपुत्र केवल मन्त्रणा देने का अधिकार रखता है उसे राज्य का अधिकार नहीं सौंपा जा सकता। इस प्रकार कौटिल्य ने राजा के अकुलीन पुत्र को राज्याधिकार से वंचित रखा है चाहे वह कितना ही योग्य क्यों न हो ?

राजा-प्रजा का सम्पर्क

प्रजा को दर्शन देना तथा उसको फरियाद करने का अवसर देना राजा अपना कर्त्तव्य समझता था। जब वह दरबार में जाता था तो दरवाजे खुले रहते तथा पीड़ितों को फरियाद करने का अवसर दिया जाता था। यदि राजा प्रजा को दर्शन नहीं देता था अथवा उनकी फरियाद की सुनवाई नहीं करता था तो राजा के विरुद्ध प्रजा में असंतोष व्याप्त होता था।[19]

प्रतिनिधियों की वापसी का अधिकार (Right to Recall)

कौटिल्य का यह समझौता द्विपक्षीय था जिसमें प्रजा और राजा अपने-अपने कर्त्तव्य से बंधे हुए थे। राजा प्रजा के प्रति अपने उत्तरदायित्व एवं कर्त्तव्यों को निभाने के लिये बाध्य थे और जो राजा प्रजा के प्रति अपने कर्त्तव्य से विमुख होगा, वह अपने अधिकार से वंचित कर दिया जायेगा एवं प्रजा उसकी धन-धान्य से सहायता करना बंद कर देगी अर्थात् राजा को पद से पदच्युत कर देगी। उन्होंने कहा प्रजा के सुख में राजा का सुख है अर्थात् प्रजा के हित में राजा का हित है, राजा का अपना कुछ नहीं है। राजा के अपने कुछ निश्चित कर्त्तव्य है जिनको पूरा करने के बदले में ही वह प्रजा से निश्चित करो के रूप में अपनी वृत्ति या वेतन प्राप्त करता है। राजा को प्रजा पर अर्थात् जनता की पूर्व अनुमति के बिना कर लगाने, तत्संबंधी धन संचय करने तथा उसे खर्च करने का अधिकार नहीं है। इस प्रकार कौटिल्य प्रजा के हाथ में वित्तीय अधिकार सौंप कर निश्चित रूप से राजा की निरंकुशता पर प्रतिबंध लगाते है जो उनकी सूझबूझ को प्रदर्शित करता है।

कौटिल्य : राष्ट्र की अवधारणा के प्रथम सृजक राजनीतिक चिंतक

विद्वान Michal Liobig का मत हैं कि "Kautilya symbolises the first political unification of the Indian subcontinent as the defacto creater of the Mauyan Empire." कौटिल्य को प्रजाशोषक नंद विनाश के विनाश और विश्व विजय के अभियान पर निकले विदेशी आक्रांता सिकंदर को भारत में पराजित करवाने का श्रेय दिया जाता है परन्तु उससे भी सर्वोपरि तथ्य राजनीतिक चिंतन के क्षेत्र में यह है कि एक राजनीतिक चिंतक के रूप में उन्होंने मानव इतिहास में पहली बार राष्ट्र की अवधारणा पर विचार किया। उनके समय में भारत विभिन्न राज्यों (मगध, अवंतिका) आदि में बंटा था। उन्होंने इन सभी राज्यों को केन्द्र सरकार के अधीन लाकर इस एकीकृत सम्पूर्ण भू-भाग को "आर्यावत" का नाम दिया जिसे बाद में "इंडिया" यानि "भारत" कहा गया। सम्पूर्ण विश्व के शासक अनेक युगों तक ठोस अर्थव्यवस्था और आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित राष्ट्र के निर्माण के लिये कौटिल्य एवं उसके अर्थशास्त्र से मार्गदर्शन प्राप्त करते रहे है।[20]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *थोरी, नरेन्द्र एवं चौधरी, नीलम, प्रशासनिक विचारक, आर. बी. एस. पब्लिशर्स, जयपुर, 2012, पृ.32*
2. *गाबा,ओमप्रकाश, राजनीतिक चिंतन की रूपरेखा, मयूर पेपर बैग्स, 2010 पृ. 16,17,18,20*
3. *सक्सैना, अनुपमा, कुमारी, अर्चना, प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारक, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008 पृ. 38,46,47,48*
4. *मिश्र, विश्वनाथ, राजविधा एवं राजनीति शास्त्र (राजनीतिक सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन), विश्वविद्यालय प्रकाशन, सागर, मध्यप्रदेश, 2007 पृ. 107, 110, 122*
5. *गोपाल, लल्लनजी, प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारधारा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 236*
6. *गोयल, श्रीराम, चन्द्रगुप्त मौर्य (एक नवीन राजनीतिक सांस्कृतिक अध्ययन), कुसुमांजलि प्रकाशन, मेरठ 1987, पृ. 172-173*

7. कुमार, कृष्ण, प्राचीन भारत की प्रशासनिक एवं राजनीतिक संस्थाएं, श्रीसरस्वती सदन, नई दिल्ली, पृ.52
8. सिंहल, जी.पी., प्राचीन भारत, रिसर्च पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1998 पृ. 147
9. झा, ब्रजकिशोर, प्रमुख राजनीतिक चिंतक, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2002, पृ. 398
10. http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/204645/2
11. शर्मा, देवकान्ता, कौटिल्य के प्रशासनिक विचार, प्रिण्टवैल पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स,जयपुर,1998,पृ. 60
12. पाण्डेय, उदयशंकर, प्राचीन भारत की राज्यव्यवस्था (वैदिक एवं स्मृति कालीन), नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1998, पृ. 75
13. हीरावत, चंद्रा, प्रशासनिक विचारक, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर पृ.सं. 7,10,11
14. कटारिया, सुरेन्द्र, प्रशासनिक चिंतक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2005, पृ.24
15. शर्मा, सुरेन्द्र. मोहन, प्राचीन भारतीय चिंतन में राज्य समाज, आर.बी.एस. पब्लिशर्स, जयपुर, 2012 पृ. 50, 52
16. नेमा, जी. पी., जैन, राजेश, प्रसाद, गोपाल, आधुनिक राजनीतिक निबंध, विश्व भारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2010 पृ. 5
17. कुमार, कृष्ण, प्राचीन भारत की प्रशासनिक एवं राजनीतिक संस्थायें, श्रीसरस्वती सदन, नई दिल्ली, पृ. 5
18. सिंहल, जी.पी, प्राचीन भारत, रिसर्च पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1998 पृ. 152
19. उपर्युक्त, पृ. 148–149
20. http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/204645/2/011

आधुनिक युग में इतिहास की उपयोगिता : प्राचीन भारतीय इतिहास के विशेष सन्दर्भ में

shodhshree@gmail.com

डॉ. दिनेश कुमार चारण
एसो. प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष ,राज. लोहिया महाविद्यालय, चूरू

शोध सारांश

एक अवधारणा के अनुसार इतिहास एक अनुपयोगी विषय है और उसके अध्ययन–अध्यापन की आवश्यकता नहीं है। कुछ लोग अनुभव करते हैं कि इतिहास की जानकारी से कोई लाभ नहीं कष्ट होता है। और यदि इतिहास कष्टप्रद रहा हो तो वर्तमान पर उसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसमें इतिहास का दोष नही है। दुनिया के सभी लोग, समुदाय और राष्ट्र अपने अतीत की निरन्तर खोज करते रहते हैं। इन सभी में इतिहास के अभाव में बैचेनी रहती है। इतिहास प्रिय या अप्रिय भी हो सकता है। इतिहास का उपयोग या दुरुपयोग भी हो सकता है। वास्तव में, वस्तु की उपयोगिता उसके प्रयोग करने वाले पर निर्भर करती है। परमाणु शक्ति इसका सटीक उदाहरण है।

संकेताक्षर - *वैश्वीकरण, उदारीकरण, कल्पना, भूमण्डलीकरण, पर्यावरण, परिवार, मितव्ययी, मनोवैज्ञानिक।*

अमेरिकन विद्वान एफ. फुकुयामा लिखते हैं कि वैश्वीकरण, उदारीकरण एवम् विज्ञान के इस युग में इतिहास महत्त्वहीन हो गया है और अब इतिहास की कोई आवश्यकता नहीं है।[1] ई.एच. कार के कथनानुसार इतिहास का अन्त नहीं हो सकता है।[2] नेपोलियन इतिहास को केवल कल्पित कथाएँ मानता था।[3] यूरोपीय विद्वान स्पेंसर का मत है कि इतिहास की शिक्षा निरर्थक है।[4] वहीं कुछ लोगों की समझ में इतिहास के दुःखद अंशों का वर्तमान पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

अतः इतिहास और उसके स्वरूप की चर्चा आवश्यक है। प्रत्येक युग में मानव अपने संबंध में अधिक से अधिक जानने की जिज्ञासा से अभिभूत रहा है, इतिहास उसी की प्रतिक्रिया है। राजस्थान के विख्यात इतिहासकार रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा लिखते हैं कि इतिहास एक ऐसा विषय है जिसके अभाव में मनुष्य–जाति अपनी उन्नति करने में समर्थ नहीं हो सकती।[5] इतिहास मानव समाज का बहुत उपकार करता है। इतिहास मानव को विवेकशील बनाता है। प्रायः इतिहास को विगत की राजनीति मात्र समझ लिया जाता है जबकि इतिहास की विषयवस्तु कहीं अधिक विस्तृत है। इतिहास मानव के विकास की कहानी है। इतिहास ही समाज विज्ञान का मूल कोत है।[6] इसी में से साहित्य की धारा फूटती है। वहीं विज्ञान ने इतिहास को एक स्वतन्त्र और गहन बौद्धिक विषय के रूप में प्रतिष्ठित किया है।[7] इतिहास की विषयवस्तु का स्वरूप सदैव परिवर्तनशील रहता है।[8] रेनियर ने उचित लिखा है कि प्रत्येक युग में समाज इतिहासकारों से कुछ प्रश्न करता है और इतिहासकार नवीन साक्ष्यों के आलोक में अतीत से उनका उत्तर प्राप्त कर समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है।[9] मध्यकाल तक मानव में वर्ण, जाति, धर्म व क्षेत्र के प्रति आग्रह होने के कारण संकीर्णता थी, जो कि आधुनिक काल में शिथिल पड़ने लगी है और वर्तमान में भूमण्डलीकरण व बदलते परिवेश के कारण मानवीय दृष्टिकोण में व्यापकता आ गई। आज इतिहास का अध्ययन केवल अतीत की घटनाओं और राजनीति के विवरण तक सीमित नहीं है अपितु नैतिक नियमों, सामाजिक संस्थाओं, आर्थिक पहलुओं, साहित्य, कला, पर्यावरण तथा विज्ञान भी उसके अध्ययन की महत्वपूर्ण विषयवस्तु है। प्रत्येक काल में इतिहास लेखन का उद्देश्य समकालीन समाज की आवश्यकता के अनुसार होता है। सामान्यतया मनुष्य के अध्ययन का विषय मनुष्य

रहता है। आज समस्त लेखन मानववाद पर आधारित है कुछ लोग अनुभव करते हैं कि व्यक्ति को अपने वर्तमान में ही प्रगतिशील रहना चाहिए और अतीत की जानकारी में समय नष्ट नहीं करना चाहिए। यह सत्य है कि वर्तमान महत्त्वपूर्ण होता है और यह ही जीवन है। परन्तु प्रत्येक वर्तमान का आधार एक अतीत ही होता है। अतीत की नींव पर ही वर्तमान रुपी महल सुशोभित है।

यदि अतीत पर दृष्टि डालें तो ज्ञात होता है कि विज्ञान का जन्म भी मानव के साथ ही हो गया था। मानव ने हमेशा अपने समय की आवश्यकता के अनुसार आविष्कार किए हैं। सभी मानते हैं कि आवश्यकता, आविष्कार की जननी होती है। विज्ञान तब भी था जब आदि मनुष्य ने आत्मरक्षा के लिए अपने साथी मनुष्यों के साथ मिलकर रहना तथा शिकार की खोज में एक साथ जीना सीखा। विज्ञान वह भी था जब आदि मानव ने पत्थर के औजार बनाना, कपड़े के रूप में जानवरों की खाल इस्तेमाल करना, रहने के लिए आश्रय, आग जलाना व खेती करना सीखा। उसी समय मानव ने पहिये का आविष्कार किया, जो कि अपने काल की एक महान उपलब्धि थी। यह आविष्कार मानव की उस पीढ़ी ने ही नहीं कर लिया था, जो अपने दो पैरों के सहारे सीधे खड़े होकर चलने लगा था। पहिये के आविष्कार के पीछे उस काल तक का मानव संचित ज्ञान था। क्योंकि आदि मानव ने भी अतीत के ज्ञान को व्यर्थ नहीं समझा था और इसीलिए वह प्रगति कर सका।

विज्ञान सैन्धव काल में भी था। सिन्धु–सरस्वती सभ्यता अपने काल की एक उन्नत एवं श्रेष्ठ सभ्यता थी।[10] निःसन्देह उनका विज्ञान भी उनकी आवश्यकता के अनुसार श्रेष्ठ था। फिर भी एक सर्वश्रेष्ठ सभ्यता का अन्त हो गया। इस सभ्यता का अन्त क्यों और कैसे हुआ ?क्या ऐसी जिज्ञासा जाग्रत नहीं होगी! यदि ऐसी जिज्ञासा होगी तो इसका समाधान इतिहास में ही मिलेगा। यदि हम पूर्व में नष्ट हो चुकी सभ्यताओं के कारण नही जानेगें तो कैसे अपनी सभ्यता को सुरक्षित रख पायेगें।

आजादी में भारत को जर्जर आर्थिक स्थिति प्राप्त हुई तो अन्य देशों के अनुभव से बोध हुआ कि एक योजना आयोग का गठन करके पंचवर्षीय योजनाएँ बनाई जाएँ। इस प्रकार देश की अर्थव्यवस्था पटरी पर आने लगी। हरित क्रान्ति और श्वेत क्रान्ति हुई। हमारे सामने अमेरिका का मॉडल था। साथ ही जनसंख्या बहुल देश चीन का उदाहरण था, जिसने अपनी आर्थिक स्थिति में लगातार सुधार कर स्वयं को दुनिया में एक आर्थिक शक्ति के रूप में स्थापित किया। भारत ने चीन से सीख ली कि जनसंख्या को बोझ न समझकर उसका उपयोग संसाधन के रूप में किया जाए।

भारत ने समय की आवश्यकता को समझते हुए उदारीकरण की प्रक्रिया को भी अपनाया और उसके परिणाम सामने है। इसी प्रकार आज जब हम किसी देश से कोई व्यापारिक या सामरिक समझौता करते हैं तो अपनी सम्प्रभुता के प्रति जागरूक रहते हैं क्योंकि हमें इतिहास स्मरण कराता है कि ईस्ट–इंडिया नाम की एक कम्पनी व्यापार करने आई थी और उसने हमें, हमारे देश में दो शताब्दियों तक गुलाम बनाकर रखा था। इतिहास प्रत्येक कदम पर पथ–प्रदर्शक के रूप में मानव को सजग रखते हुए उसे उचित के लिए प्रोत्साहित करता है।[11]

अभी जिस भूमण्डलीकरण की अवधारणा से समस्त दुनिया प्रभावित हो रही है, वह भारतीय इतिहास के जानकारों के लिए कोई नई नहीं है। प्राचीन भारतीय संस्कृत ग्रन्थ ''हितोपदेश'' का वाक्य :–

अयं निज परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

भूमण्डलीकरण से अधिक व्यापक है। जिसका अर्थ है कि ''यह मेरा है या दूसरे का, ऐसी सोच तुच्छ हृदय की होती है तथा जो उदार हृदय होते हैं उनके के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी कुटुम्ब होती है।'' यदि दोनों की तुलना करें तो ज्ञात होता है कि जहाँ भूमण्डलीकरण में सम्पूर्ण विश्व एक बाजार है, जिसमें एक प्रतिस्पर्धा है वहीं वसुधैव कुटुम्बकम् में सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है, जो कि समन्वय एवं सहयोग की भावना पर आधारित है। आज का ''ग्लोबल विलेज'' ग्लोबल मार्केट है, न की ग्लोबल फैमिली।

प्रगति की भूख में सारे जंगल को खाने व पानी को चूसने के बाद भी मनुष्य को सन्तोष नहीं मिल पाया है। समस्त पर्यावरण धुएँ से आच्छादित हो गया है। सब कुछ प्राप्त करने कर लेने की तृष्णा में प्रकृति को लूट रहा मनुष्य स्वयं को भी भूल चुका है। मनुष्य जहाँ अतीत की सीख को अनावश्यक व समय व्यर्थ प्रक्रिया समझ रहा है वहीं भविष्य से भी बेखबर रहना चाहता है और वर्तमान जीवन के आनन्द में उसका विश्वास रह गया है। बुद्धिजीवियों को अब

संसाधनों के अत्यधिक दोहन की चिन्ता सताने लगी है और इस दोहन को रोकने की कवायद हो रही है। इस विषय की गम्भीरता भी प्राचीन भारत के संस्कृत ग्रन्थ ''हितोपदेश'' के वाक्य 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' से प्रतिपादित हो गई थी।

परमाणु शक्ति का प्रयोग जब विनाश के लिए होने लगा तो वैश्विक जनमत उसके विरुद्ध हो गया। इसका विरोध करने के लिए लोग संगठित होने लगे, बड़े–बड़े संगठन बनाए गए। शान्ति के नारे लगाने वाले बुद्धिजीवियों को पुरस्कारों से नवाजा जाने लगा। शान्ति व मानव अधिकारों की रक्षा की चारों ओर वकालत हो रही हैं। इसमें कोई बुराई नही है, यह ठीक भी है। शान्तिपूर्वक जीवन मनुष्य की नैसर्गिक इच्छा है। इतिहास के किसी भी काल व भूगोल के किसी भी भूखण्ड में सभी जीवों की यही कामना रही है। यही शान्ति का पाठ प्राचीन भारत के ग्रन्थों में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत ग्रन्थ ''शुक्ल–युजर्वेद'' के मन्त्र–

ऊँ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिः
पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः,
सर्व शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि।।[१२]

अर्थात्, ''हे ईश्वर ! त्रिभुवन में शान्ति कीजिए, अन्तरिक्ष में, पृथ्वी में, जल में, औषधियों में शान्ति कीजिए। वनस्पति में, विश्व के सभी देवों में, सृजन में, सभी में शान्ति कीजिए, शान्ति में भी शान्ति कीजिए।'' उनकी दृष्टि अत्यन्त व्यापक थी। इस मन्त्र में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की शान्ति की कामना की गई है। वर्तमान में जहाँ शान्ति एक मुद्दा मात्र है वहीं प्राचीन भारतीय समाज में ''शान्ति एक जीवन दर्शन'' था।

उन्नति, लालच, स्वार्थ, तनाव, अनिद्रा व रूग्ण मानसिकता वाले समाज में रिश्ते खो गए है। मानवीय संवेदना बुद्धिजीवियों की कलम तक सिमट कर रह गई । प्रिन्ट मीडिया और सूचना क्रान्ति में नैतिक मूल्यों का तेजी से पतन हो रहा है। दादा–दादी और नाना–नानी की कहानियों को विज्ञान व तकनीक ने डिलिस्ट कर दिया है। मोबाईल, लैपटॉप, कम्प्यूटर, फास्ट–फूड और दवाइयाँ ही जीवन का आधार हो गए हैं। रोबोट बन चुका मानव जब इनसे ऊब गया तो डिप्रेशन में चला गया तब उसको परामर्श मिला कि एकान्त से बचे और परिवार में रहे। वैसे भी बाजार संस्कृति में यह सिद्ध हो गया है कि एकल परिवारों की अपेक्षा संयुक्त परिवार किफायती होते हैं। व्यय दर घटते ही बहुत सी समस्याएँ स्वतः ही समाप्त हो जाती है। हमारे पूर्वज मितव्ययी थे और यही उनकी शिक्षा थी। उनकी आवश्यकताएँ सीमित थी और यही उनका प्रबन्धन था। ना कोई तनाव और न ही असन्तोष। इतिहास के पन्ने पलटेंगे तो मालूम चलेगा कि संयुक्त परिवार में समस्त समस्याओं का निदान था, वे एक संस्था थे। संयुक्त परिवार संस्कृति और परम्पराओं के संवाहक होते थे। परिवार में बच्चे को ऐसे संस्कार मिलते थे, जिससे वह एक अच्छा व राष्ट्रीय नागरिक बनता था। ऐसा नागरिक जिसमें अहिंसा, दया, स्नेह, सम्मान, सहयोग, संवेदना, नैतिकता, सहिष्णुता, उत्साह व साहस आदि मानवीय गुण उसके सहज स्वभाव में थे। उन्हें किसी मनोवैज्ञानिक परामर्श या लिविंग आर्ट कोर्स की आवश्यता नहीं पड़ती थी।

यदि इतिहास का अध्ययन करें तो हमें गर्व होता है कि सहस्त्राब्दियों वर्ष पूर्व भारत में वे सभी मान्यताएँ स्थापित थी, जिसको आज विज्ञान व पाश्चात्य एक अवधारणा के रूप में पेश करता है। आज विज्ञान अपने चरम पर है तथा अमेरिका व यूरोप का परचम है लेकिन वहाँ के लोग उतने ही अतृप्त व व्याकुल है और वे योग व अध्यात्म की शरण में आ रहे हैं। व्रत, उपवास, ध्यान, मन्त्र, योग, अध्यात्म, चौपाल, मनोरंजन व प्रकृति सबकी महत्ता पुनः स्थापित हो रही है। यह समस्त विधाएँ हमारे प्राचीन इतिहास की ही देन है। जहाँ विज्ञान, मानव के तन की आवश्यकता की पूर्ति करता है वही इतिहास मन की आवश्यकता की पूर्ति करता है और मन का निदान नही हुआ तो तन भी रोगी हो जाएगा। यदि ऐसा हुआ तो फिर विज्ञान भी मानव को इतिहास होने से नहीं रोक पाएगा। यदि मनुष्य को इतिहास की जानकारी नहीं होगी तो इस तनाव और विज्ञापन युग में वह जीने के विकल्प कहाँ से प्राप्त करेगा।

निष्कर्ष

इतिहास, विषवमन का कार्य भी कर सकता है, यह असत्य नहीं है। यदि संकीर्ण मानसिकता वाले लोग पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर इतिहास का प्रयोग अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए करेगें तो यह घातक होगा। विज्ञान के भी कल्याण और विनाश के रूप में दो पक्ष हैं। विज्ञान का विनाशकारी स्वरूप देखने के बाद भी इसे रोक नहीं दिया गया क्योंकि मानव जीवन में इसकी उपयोगिता

स्वयं सिद्ध है। कोई भी वस्तु स्वयं में अनुपयोगी नहीं होती, यह उसके प्रयोग करने वाले पर निर्भर करता है। इतिहास का उपयोग भी यदि समाज हित में किया जाए तो यह मानव के लिए कल्याणकारी होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *Francis FuccoYamm & End of History and the last man, 1992, Introduction*
2. *कार, ई.एच. – इतिहास क्या है, पृष्ठ संख्या 3*
3. *खुराना, बंसल – इतिहास–लेखन, धारणाएँ तथा पद्धतियाँ, पृष्ठ संख्या 2*
4. *वही – पृष्ठ संख्या 3*
5. *ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द – राजपूताने का प्राचीन इतिहास, भूमिका*
6. *चौबे, जे. – इतिहास दर्शन, पृष्ठ संख्या 1*
7. *Gooch, G.P. - The History and Historions of 19th Century, Page No. 88*
8. *पांडे जी.सी. – इतिहासः स्वरूप एवं सिद्धान्त, पृष्ठ संख्या 43*
9. Renier, G.J. - History, Its Purpose and Method , Page No. 9
10. *द्विवेदी, अंशुमान – हड़प्पा सभ्यता एवं संस्कृति, पृष्ठ संख्या 103*
11. *ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द राजपूताने का प्राचीन इतिहास*
12. *शुक्ल–यजुर्वेद – 36/17*
13. *Acton - Lectures on Modern History*
14. *माथुर, त्रिपाठी – इतिहास लेखन की अवधारणा एवं आधुनिक विचारधाराएँ*

व्हिसल ब्लोअर्स : आरम्भिक परिचय व सुरक्षा प्रावधान

shodhshree@gmail.com

भानुप्रिया दवे
शोधार्थी,जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

शोध सारांश

व्हिसल ब्लोअर्स हाल के वर्षो में चर्चित रहा है। जिससे संपूर्ण विश्व का ध्यान इस और आकर्षित हुआ है। परन्तु यह कोई नवीन अवधारणा नहीं है। यदि इतिहास की ओर दृष्टिपात करें तो सर्वप्रथम अमेरिका में 1777 में दो सैन्य अधिकारियों द्वारा अपनी रेजिमेंट के कमांडर द्वारा प्रताड़ित होने पर शिकायत दर्ज करने व अधिकारी के दोषी पाए जाने पर सजा देने के बाद यह अवधारणा प्रचलन में आई। व्हिसल ब्लोअर्स का सम्बन्ध गलत के विरुद्ध आवाज उठाने से हैं। जहां कही गलत होता है वहां उसके विरुद्ध कुछ लोग आवाज जरूर उठाते हैं। पहले इन लोगों के कोई सुरक्षा प्रावधान नहीं थे जिससे इन्हें कई समस्याओं का सामना करना पडता था। विश्व के साथ भारत में भी समय–समय पर विभिन्न लोगों ने भ्रष्टाचार व शासन व्यवस्था की गलत नीतियों के विरुद्ध व्हिसल ब्लोअर्स की भूमिका निभाई है। भारत में व्हिसल ब्लोअर्स की अवधारणा का सीधा सम्बन्ध आरटीआई एक्ट से हैं। इससे व्हिसल ब्लोअर्स की अवधारणा और व्यापक हो गयी है। 26 जनवरी, 1950 को जब भारतीय सविंधान स्वीकृत हुआ तो उसने यह तय कर दिया कि भारत में शासन व्यवस्था कानून व संविधान अनुसार चलेगी तथा भारत लोकतांत्रिक गणराज्य होगा।

संकेताक्षर : *व्हिसल ब्लोअर्स, सुरक्षा, शासन व्यवस्था, आर.टी.आई.।*

समय के साथ विभिन्न समस्याएं सामने आती गई तथा वर्तमान भौतिकवादी आधुनिक जीवनशैली के कारण हमारी मान्यताओं विचारों व रहन–सहन तथा जीवन स्तर में व्यापक बदलाव आया है जिससे समाज का कोई भी हिस्सा अछूता नहीं है। आज आतंकवाद के बाद कोई सबसे बड़ी समस्या है तो वह है भ्रष्टाचार। कोई क्षेत्र इससे अछूता नहीं है न ही निजी प्रशासन न ही लोक सेवाएं और रही बात राजनीतिक व्यवस्था की तो कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि भ्रष्टाचार व राजनीति एक दूसरे का पर्याय बन गए है। इसी के तहत आज राजनीतिक का अपराधीकरण हो गया है। वैसे भ्रष्टाचार कोई बिल्कुल नई अवधारणा नहीं है। इसका उल्लेख कोटिल्य की अर्थशास्त्र मे भी मिलता है।

ऐसा नहीं है कि इसे रोकने के उपाय नहीं हो रहे है। यदि हम भारत की बात करें तो 1947 से ही भ्रष्टाचार निरोधी समिति बना दी गई थी। उसके बाद तो लगातार प्रयास किए जाते रहे है। जैसेः–

- ➢ के. संथानम् समिति
- ➢ लोकसेवा आचरण नियम 1954
- ➢ केन्द्रीय सर्तकता आयोग अधिनियम 2003
- ➢ प्रशासनिक सुधार आयोग प्रथम
- ➢ प्रशासनिक सुधार आयोग द्वितीय
- ➢ प्रशासन में पारदर्शिता व जवाबदेहिता
- ➢ सूचना का अधिकार अधिनियम 2005
- ➢ लोकसेवा आचरण नियम 1955
- ➢ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988

चूंकि भारत प्रजातंत्रात्मक शासन व्यवस्था है अतः संविधान यह सुनिश्चित करता है कि नागरिकों के हित सरकार के हित व उन दोनों के बीच सामंजस्य बना रहे।

जैसे–जैसे तकनीकी ज्ञान में वृद्धि हो रही है वैसे–वैसे भारतीय प्रशासन का स्वरूप भी बदल रहा है और जनता भी अधिक से अधिक जागरूक हो रही हैं अपने अधिकारों के प्रति। आम जन की इसी जागरूकता को कानूनी रूप मिला सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 द्वारा। हां ये बात अलग है कि इसके रास्ते में भी अभी कई सारी रूकावटें हैं जैसे आर.टी.आई. कार्यकर्ताओं का उत्पीड़न। इसी सन्दर्भ में जो नई अवधारणा सामने आई है – व्हिसल ब्लोअर्स।

वर्तमान में जो सबसे ज्यादा चर्चित मुद्दा है वह है व्हिसल ब्लोअर्स के सुरक्षा प्रावधान। देश में लगातार हो रही घटनाओं नें हमें इस ओर ध्यान देनें पर मजबूर किया हैं कि हम इनके सुरक्षा के प्रावधान करें। और यह आवश्यक भी है क्योंकि भारतीय संविधान ने समानता, स्वतंत्रता व न्याय की स्थापना की है।

लोकसेवा और प्रशासन व सरकार का दायित्व होता है आमजन के हित में विधि की मान्यता अनुसार कार्य करना किन्तु जब ये संस्थाएं ही अपने हित को सर्वोपरि मानकर आमजन के साथ खिलवाड़ करती है और जो इनका पर्दाफाश करता हैं उनके दुश्मन बन जाते हैं तब यह सोचना पड़ता है कि क्या हुआ उन नियमों का, क्या हुआ सूचना के अधिकारों का जो जनता को एक शस्त्र के रूप में मिला था और कहां है वह अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता और जीनें का अधिकार। ये सभी बहुत बड़े प्रश्न चिन्ह है हमारे लोकतांत्रिक संवैधानिक देश पर।

व्हिसल ब्लोअर की अवधारणा - व्हिसल ब्लोअर शब्द 'व्हिसल' से आया है जिस प्रकार खेल के मैदान में निर्णायक या मध्यस्थ (रैफरी) अवैध व नियम विरूद्ध खेल की ओर इंगित करता है इसी प्रकार एक ऐसा व्यक्ति जो आम जन के हित में किसी ऐसे तथ्य को प्रकाशित या उद्घाटित करता है जो भ्रष्टाचार की श्रेणी में या नियम विरूद्ध आचरण हो।

सामान्य शब्दों में व्हिसल ब्लोअर का अर्थ है – सूचना प्राप्तकर्ता या मुखबिर।

यू. एस. के एक नागरिक कार्यकर्त्ता राल्फनडार ने 1970 में इस वाक्यांश को गढ़ा।

वह व्यक्ति जो ऐसे किसी भी कृत्य या कार्यवाही को सामने लाता हैं जो अविधिक, बेईमानीपूर्ण व ऐसे किसी भी संगठन की कार्य प्रणाली के विपरीत हैं चाहे वह सरकारी हो या निजी।

जिस प्रकार भ्रष्टाचार में अनेक बातों का समावेश है उसी प्रकार किसी भी कथित या आरोपित अनैतिक कृत्य को अनेक रूपों में विभक्त किया जा सकता हैं जैसे कम्पनी की नीतियों व नियमों का उल्लंघन, जनहित का उल्लंघन, राष्ट्रीय सुरक्षा के विरूद्ध कोई कृत्य और साथ ही धोखा व भ्रष्टाचार भी इसमें शामिल है।

अन्य शब्दों में ऐसी सूचना जो जनकल्याण से संबंधित हो, और जनता के लिए जिसे जानना अनिवार्य ही नहीं वरन उसका अधिकार हैं, जिसे जान बूझकर, उच्चाधिकारियों, प्रशासकों व नेताओं ने अपनी मिलीभगत से जनता से छुपाकर रखा हैं उस जानकारी को अपने निजीहित को महत्व न देते हुए जो व्यक्ति आम जन के सम्मुख लाने का प्रयास करता हैं वह ''व्हिसल ब्लोअर'' है।

व्हिसल ब्लोअर कोई भी व्यक्ति हो सकता है चाहे वह उस कथित आरोपित संगठन का सदस्य हो या कोई आम आदमी।

इसी आधार पर व्हिसल ब्लोअर्स को दो श्रेणी में बांटा जा सकता है।

➢ आन्तरिक

➢ बाह्य

साथ ही इन्हे निजी व लोक क्षैत्रीय व्हिसल ब्लोइंग के रूप में भी देखा जा सकता है।

आन्तरिक व्हिसल ब्लोइंग - जब कोई व्यक्ति उसी उद्योग या संस्था का हिस्सा होता है जिसके बारे में वह सूचना देता है तो वह आन्तरिक व्हिसल ब्लोइंग है।

अधिकांश व्हिसल ब्लोअर्स आन्तरिक व्हिसल ब्लोअर होते हैं। जो कि अपने अधीनस्थों या उच्चस्थों के कुप्रबंध पर रिपोर्ट देता है। यहां यह प्रश्न उल्लेखनीय है कि क्यों और ऐसी कौन सी परिस्थितियां होती है जिनमें व्यक्ति अस्वीकार्य व अवैध कार्य के विरूद्ध शिकायत करते हैं।

यहां कुछ कारण सामनें आते हैं जिनमें व्यक्ति अपनी ही संगठन के कार्यकर्ताओं द्वारा किए जाने वाले कुप्रबंध व असहनीय कृत्यों के विरूद्ध शिकायत करते हैं। जो न केवल संगठन में शिकायत मशीनरी का विकल्प उपलब्ध कराते हैं बल्कि योजना व नियंत्रण विभाग द्वारा गोपनीयता का विकल्प भी उपलब्ध कराते है।

बाह्य व्हिसल ब्लोइंग - बाह्य व्हिसल ब्लोअर्स किसी भी बाहरी व्यक्ति या संस्था को कुप्रबंध की शिकायत करते है। इन मामलों में सूचना की कठिनाई व प्रकृति पर बहुत निर्भर करता है कि व्हिसल ब्लोअर्स अपनी शिकायत अधिवक्ताओं, मीडिया, कानूनी

पुर्नबलनीकरण संस्था या रक्षक अभिकरणों को करते हैं। या किसी अन्य स्थानीय राज्य या संघीय अभिकरण में करते हैं। कुछ मामलों में बाह्य व्हिसल ब्लोइंग मौद्रिक पारितोषिक द्वारा भी प्रोत्साहित किए जाते हैं।

इनके साथ ही आजकल एक तृतीय पक्ष व्हिसल ब्लोइंग भी चलन में है। अन्तराष्ट्रीय स्तर पर व्हिसल ब्लोअर्स के साथ हो रहे पक्षपात पूर्ण व्यवहार के चलते यह नवीन अवधारणा सामने आई है। जिसमें बिना व्हिसल ब्लोअर की पहचान बताए उच्च स्तरीय कुप्रबंध की शिकायत की है।

प्राईवेट सेक्टर व्हिसल ब्लोइंग - यद्यपि लोक क्षेत्र व्हिसल ब्लोइंग उतनी ऊंचे दर्जे को प्राप्त नहीं कर पाई है। फिर भी निजी क्षेत्रीय व्हिसल ब्लोइंग विवादास्पद रूप से आज के समाज में अधिक प्रचलित और दबाव युक्त है। क्योंकि सामान्यतया निजी संस्थाओं में सख्त नियमावली होती है जो कि संभावित व्हिसल ब्लोइंग को दबाती है।

प्राईवेट सेक्टर में व्हिसल ब्लोइंग का उदाहरण है जब कोई कर्मचारी अपने उच्चस्थ व्यक्ति जैसे मैनेजर या किसी तीसरे व्यक्ति जो कि निजी व व्यक्तिगत मामलों से अलग है, से शिकायत करता है। निजी क्षेत्रों में औद्योगिक समूह अपने अलग-अलग शाखाओं के माध्यम से कुप्रबन्ध को आसानी से छुपा लेते हैं। इस प्रकार जब उच्च अधिकारी शोषण करते हैं तो आम जन को पता ही नहीं चल पाता एडवर्ड स्त्रोडन के मामले में यही हुआ।

कम्पनियों के इच्छित कानूनों और नीतियों के कारण ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न होती है जब कोई व्यक्ति आवाज उठाता है। कम्पनियों द्वारा यौन उत्पीड़न व चोरी जैसे उदाहरणों को मनी लांडरिंग व घोटाले से कम करके आंका जाता है।

निजी क्षेत्रों में व्हिसल ब्लोइंग विशेष रूप से इतनी प्रचलन में या खुले तौर पर बहस का विषय नहीं होती। हां कुछ अवसरों मौकों पर किसी तृतीय पक्ष द्वारा अवश्य ही कम्पनियों में कार्यरत कर्मचारियों के साथ हुए मानव अधिकारों के उल्लंघन व उत्पीड़न का खुलासा किया जाता है।

लगातार बढ़ रही यौन उत्पीड़न व हमलों की घटनाओं और साथ ही भ्रष्टाचार व पक्षपात पूर्ण कार्यप्रणालियों ने अपने एक भाग के रूप में निजी क्षेत्रों की व्हिसल ब्लोइंग को ख्याति नहीं-कुख्याति दिलाई है। यद्यपि व्हिसल ब्लोअर्स की सुरक्षा के कानून विद्यमान है पर फिर भी कई कर्मचारी उन लोगों से डरते हैं जो इन मामलों में किसी न किसी तरह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नियोक्ताओं के साथ शामिल होते है कि कहीं उन्हें नौकरी से न निकाल दिया जाए।

यही कारण है कि कई संभावित व्हिसल ब्लोअर या तो इंतजार करते है कि अपने उच्चस्थ अधिकारी से शिकायत करने में या फिर शिकायत का विचार ही त्याग देते है।

जब भी कोई कर्मचारी शिकायत का सोचता है तो उसे अनिवार्य रूप से अपने लिए उपलब्ध सभी विकल्पों के बारे में सोचना पड़ता है। कम्पनी के अनैतिक आचरण को प्रकट करके नैतिकता को स्थापित करे या कम्पनी को प्रकट करके अपनी नौकरी खो दे साथ ही उसे इस बात को भी सोचना पडता है कि जब वह अपनी पद, प्रतिष्ठा, नौकरी सब खो देगा तो क्या वह इस काबिल है कि वापस यह सब प्राप्त कर सकता है। यही डर निजी क्षेत्रों में व्हिसल ब्लोइंग को अत्यधिक कठिन बना देती है।

पब्लिक सेक्टर व्हिसल ब्लोइंग - पिछले 50 वर्षो में व्हिसल ब्लोइंग के जन महत्व में वृद्धि हुई है। अमेरिकी राज्यों में इनका अधिक प्रचलन है। वहां सेवाओं ने व्हिसल ब्लोअर्स की सुरक्षा के प्रावधानों को अपनी नियमावली में जगह दी है क्योंकि वहां पहले व्हिसल ब्लोअर्स को जो कि संविदा के आधार पर नियुक्त कर्मचारी के रूप में कार्य करते थे उन्हें नियोक्ता बिना किसी उचित कारण के निकाल देते थे।

फिर वहां सरकारी नियमावली बनाई गई जो आम जन के हित में भ्रष्टाचार अवैध प्राधिकार, कुप्रबंध व अनैतिक आचरण के विरूद्ध शिकायत करने में व्हिसल ब्लोअर्स की मदद करते थे।

इस नियमावली से यह भी प्रबंध किया गया कि यदि किसी व्हिसल ब्लोअर्स ने आम जन के हित में कोई कदम उठाया है और शिकायत या तो चल रही है या उस पर कार्यवाही हो रही है। किसी भी स्थिति में नियोक्ता बदले की भावना से कर्मचारी को नौकरी से नहीं निकाल सकता। संघीय व्हिसल ब्लोअर कानून ने सभी स्तर के कर्मचारियों को सुरक्षा प्रावधानों में शामिल किया। निजी क्षेत्रों की तुलना में लोक क्षेत्रों की व्हिसल ब्लोइंग अन्य देशों में अधिक सुरक्षित है।

व्हिसल ब्लोइंग एक नैतिक निर्णय है। किसी अनैतिक कृत्य को देखकर आंखे तरेरना समस्या का समाधान नहीं है और अगर आपने मुंह फेर लिया है तो इसका सीधा सा अर्थ है आप स्वयं भी सहपराधी है और आप स्वयं भी उस समस्या का हिस्सा है।

व्हिसल ब्लोअर्स न केवल अपनी आजीविका को मुसीबत में डालते है वरन् वे अपने सामाजिक

अर्न्तसंबंधों यहां तक कि संभावना है कि वे अपने जीवन को भी मुसीबत में डाल देते हैं। जबकि जानना और सूचना पाना गलत के खिलाफ आवाज उठाना उसका हक है।

किसी भी लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था से यह अपेक्षा की जाती है कि प्रशासन द्वारा जो भी कृत्य सम्पादित किए जाते है उनसे आम जन को अवगत कराया जाए। वस्तुतः अन्तिम रूप से सम्पूर्ण सत्ता और राजनैतिक कार्यपालिका जनता के प्रति ही उत्तरदायी है। साथ ही पारदर्शिता जवाबदेहिता प्रशासन के प्रमुख लक्षण होने चाहिए और इस आवश्यक शर्त को मजबूती प्रदान की सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 ने।

जब भी किसी नीति का निर्माण किया जाता है तो उसके क्रियान्वयन हेतु धन आवंटन किया जाता है। ताकि कार्यो को सुचारू रूप से क्रियान्वयन किया जा सके। किन्तु हमारे देश में भ्रष्टाचार इस कदर समाया है कि उपर से लेकर नीचे तक सभी लोग इस धन का जो कि आम जन के हित में लगना था का दुरूपयोग करते है गरीब और अमीर की खाई घटने का नाम ही नहीं लेती।

भारतीय सरकार प्रतिवर्ष अरबों रूपये देश में विकास योजनाओं के नाम पर आवंटित करती है और विश्व बैंक अन्य अर्न्तराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा भी कई योजनाएं चलाई जाती है। पर क्या वास्तव में आज हम वहां पंहुच पाऐ है जो स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय हमने स्वप्न देखा था। सूचना के अधिकार की प्राप्ति से पहले तो आजमन द्वारा प्रश्न पूछना भी इन्हें नागवार था किन्तु अनेक प्रशासनिक सुधारों व सूचना के अधिकार ने पूर्ण नही तो कुछ हद तक तो जनता को अपना हक दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस कानून में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस कानून ने प्रशासन में कुशलता, पारदर्शिता व जवाबदेहिता लाने में अपना अमूल्य योगदान दिया है।

परन्तु समस्या अभी समाप्त नहीं हुई इसके साथ और भी समस्याऐं मुंह बाए खड़ी हो गई है। क्योंकि जब भी परिवर्तन होता है तो वह सभी द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता है।

आरटीआई के सन्दर्भ में भी यहीं हुआ। अब जो भी आज जन सूचना के अधिकार को प्रयोग करता जिससे कि किसी संस्था उपक्रम या विभाग का अनैतिक कार्य आम जन के हित में सामने आ सके उसको किसी न किसी प्रकार से हानि पंहुचाने के प्रयास किए जाने लगे। कुछ लोग ही होते है जो अपनी परवाह किए बिना आम जन के हित को सर्वोपरि मानकर किसी के खिलाफ आवाज उठाते हैं यही है व्हिसल ब्लोअर्स।

इन्हें तो अधिकार होना चाहिए सम्मानित व सुरक्षित जीवन का किन्तु ऐसा कोई प्रावधान इसे सुनिश्चित करने हेतु नहीं था। कथित तौर पर व्हिसल ब्लोअर्स को सुरक्षा प्रदान करने की बातें की जाती है किन्तु बहुत सारी शर्तें छुपी होती है उन सुरक्षा उपायों के पीछे और ये शर्तें घने बादलों की भांति उन सभी उपायों को आवृत कर लेती है। जो कि व्हिसल ब्लोअर्स को बदले व उत्पीड़न से बचा सकते है।

व्हिसल ब्लोअर्स के सुरक्षा प्रावधान -

- भारत के साथ ही सम्पूर्ण विश्व में व्हिसल ब्लोअर्स के साथ हो रही अमानवीय घटनाओं के कारण ही हमारा ध्यान इनके सुरक्षा प्रावधानों की ओर गया है।
- कानूनी सुरक्षा के संबंध में यह बात उल्लेखनीय है कि विश्व के अलग–अलग देशों में व्हिसल ब्लोअर्स के लिए अलग–अलग सुरक्षा प्रावधान है।
- दर्जनों देशों ने व्हिसल ब्लोअर्स के सुरक्षा कानूनों को व्यापक तौर पर अपनाया हैं जो कि एक ऐसी मशीनरी का निर्माण करते है जो कि अनैतिक कार्यो की सूचना व उस सूचना को देने वाले को कानूनी सुरक्षा प्रदान करते है तथा 50 से ज्यादा देशों ने इन प्रावधानों को अपने भ्रष्टाचार निरोधक कानूनों सूचना का अधिकार व रोजगार नियमों में एक भाग के रूप में अपनाया है।
- भारत में भी व्हिसल ब्लोअर्स के सुरक्षा प्रावधान किए जा रहे है। क्योंकि अब तक कई आर.टी.आई. कार्यकर्ता व व्हिसल ब्लोअर्स अपनी जान गंवा चुके हैं।
- श्रीमती अरूणा रॉय का कहना है कि सरकार बार–बार व्हिसल ब्लोअर्स प्रोटेक्शन बिल को टाल रही है क्योंकि इसमें उसके हित निहित है।
- भारत सरकार कई वर्षो से व्हिसल ब्लोअर्स प्रोटक्शन एक्ट अपनाने का प्रयास कर रही है। आज जो कानून बना है उसके अस्तित्व के लिए प्रयास बहुत पहले आरम्भ हो गये थे।
- व्हिसल ब्लोअर्स की सुरक्षा के लिए प्रथम बिल 1993 में तत्कालीन मुख्य सतर्कता आयुक्त एन विट्ठल द्वारा रखा गया।

दिसम्बर 2001 में विधि आयोग समिति ने अनुसंशा की कि भ्रष्टाचार निवारण के लिए एक कानून होना चाहिए जो व्हिसल ब्लोअर्स को सुरक्षा प्रदान करे तथा इसने तत्कालीन कानून न्याय और लोक मुद्दों के मंत्री अरूण जेटली के सम्मुख लोकहित

प्रकटीकरण बिल पर रिपोर्ट प्रस्तुत की और साथ ही ड्राफ्ट बिल भी प्रस्तुत किया।

एन.एच.ए.आई. ने भ्रष्टाचार को उजागर करने के कारण 2003 में सत्येन्द्र दुबे की हत्या के बाद जनता और मीडिया के द्वारा नाराजगी जताई गई और व्हिसल ब्लोअर्स बिल को अधिनियम बनाने की पुरजोर मांग की गई। इसी के संबंध में 2004 में सुप्रीम कोर्ट ने उस समय तक के लिए अपने आदेश में एक ऐसी मशीनरी बनाने के निर्देश दिए जो कि सूचना प्रपाता को शिकायतों पर आवश्यक कार्यवाही करेगी जब तक कि यह बिल कानून नहीं बन जाता और भारत सरकार ने केन्द्रीय प्राधिकरणों से संबंधित भ्रष्टाचार की शिकायतों को प्राप्त करने और उचित कार्यवाही के लिए केन्द्रीय सतर्कता आयोग को अधिकृत कर दिया (मई 2004) इसी बीच अक्टूबर 2005 में सूचना का अधिकार अधिनियम पारित हो गया।

इसके बाद 2007 में द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट में भी यह अनुशंसा की गई कि ऐसे विशेष कानून को भी लागू किया जाए जो सूचना प्रपाताओं को सुरक्षा प्रदान करें।

भारत ने भी सयुंक्त राष्ट्रसंघ के भ्रष्टाचार के विरूद्ध अभिसमय 2005 जिसमें कि राज्यों को लोग अधिकारियों के भ्रष्टाचार की रिपोर्ट करने व गवाहों व विशेषज्ञों का प्रतिकार करने वालों के विरूद्ध सुरक्षा मुहैया कराने का प्रावधान था के प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करके अपना समर्थन दिया।

26 अगस्त 2010 को कार्मिक, लोक शिकायत व पेंशन मंत्रालय के केन्द्रीय राज्य मंत्री पृथ्वीराज चव्हाण ने (सूचना प्रपाता बिल) लोकहित प्रकटीकरण व प्रकटनकर्ताओं की सुरक्षा बिल 2010 में प्रस्तावित किया। कुछ प्रस्तावित संशोधनों के बाद 27 दिसम्बर 2011 को यह बिल लोकसभा में पारित कर दिया गया।

उसके बाद 26 फरवरी 2012 को मुंबई के विरार इलाके में प्रेमनाथ झा की गोली मारकर हत्या कर दी गई उनको वसई विरार इलाके के निर्माण परियोजना के संबंध में सूचनाएं उजागर करने की कीमत अपनी जान देकर चुकानी पड़ी। आर.टी.आई कार्यकर्ताओं के उत्पीड़न व हत्याओं की एक बहुत लम्बी सूची ने ही इस बिल को कानून बनाने की ओर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

कार्मिक लोक शिकायत कानून व न्याय समिति की सिफारिश पर लोक हित प्रकटीकरण व प्रकटीकरण करने वाले व्यक्ति की सुरक्षा बिल 2010 को नया नाम दे दिया गया whistle blower's protection Act 2011 जिसे 28 दिसम्बर 2011 में लोकसभा द्वारा पारित कर दिया गया तथा 21 फरवरी, 2014 को राज्यसभा द्वारा पारित कर दिया गया। इसी के साथ ही 9 मई, 2014 को इसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा गया। तथा भारत सरकार के कानून व न्याय मंत्रालय द्वारा 9 मई, 2014 को ही इसे भारत सरकार के राजपत्र में प्रकाशित कर दिया गया।

यह संसद का वह अधिनियम है जो अनुसंधान की एक ऐसी मशीनरी उपलब्ध करवाएगा जिसमें किसी लोक सेवक के विरूद्ध भ्रष्टाचार के किसी अभिकथन पर या जान के जान बूझकर दुरुपयोग के प्रकटन से संबंधित शिकायत को स्वीकार करने के लिए कोई तंत्र स्थापित करने और ऐसे प्रकटन की जांच करने या जांच कारित कराने तथा ऐसी शिकायत करने वाले व्यक्ति के उत्पीड़न से पर्याप्त सुरक्षा का तथा उनसे संबंधित या आनुषंगिक विषयों के लिए उपलब्ध कराने के लिए अधिनियम।

भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में whistle blower's protection Act व्यापक तौर पर अपनाएं जा रहे है।

सुझाव : रोज किसी न किसी व्हिसल ब्लोअर के उत्पीड़न की खबर आने के बाद भी क्या रूक जाते हैं जनहित में कार्य करने वाले नहीं तो क्यों न इनके समर्थन के लिए और इन्हें प्रोत्साहन देने हेतु प्रत्येक स्तर, प्रत्येक लोक व निजी संस्थानों में ऐसी व्यवस्थाएं की जाए कि हमने जिस कल्याणकारी, सर्वांगीण विकास करने वाली जनतंत्रात्मक व्यवस्था व सभी नागरिकों को न्याय समानता व स्वतंत्रता का प्रावधान संविधान ने किया है वह सही मायनों में साकार हो पाएगा।

साथ ही व्हिसल ब्लोअर की सुरक्षा के लिए नवीन तकनीकों का भी प्रयोग करना चाहिए। व्हिसल ब्लोअर को अपनी पहचान छुपाने के लिए और जिनके बारे में वो रहस्योंद्घाटन करने वाला है से बचने के लिए कूट लेखन का प्रयोग करना चाहिए तथा यूजर फ्रेंडली इंटरनेट ब्राउजर द्वारा सम्पूर्ण विश्व में जुड़ा रह सकता है।

साथ ही प्रत्येक संस्था में पारदर्शिता को बनाए रखने के लिए प्रत्येक कर्मचारी को प्रशिक्षित भी किया जा सकता हैं ताकि वह अनैतिक कार्यो के प्रति सावधान रह सकें और आवाज उठा सकें। साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि इस कानून का लोग अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए लाभ न उठा सके।

व्हिसल ब्लोअर को वे सभी लोग नुकसान पंहुचाने की कोशिश में लगे रहते है जो कि भ्रष्टाचार के मामलों से

जुड़े हो किन्तु फिर भी वे डटे रहते हैं अपनी जान की परवाह किए बगैर। यहां विमला भण्डारी की कविता की पंक्तियों का उल्लेख प्रासंगिक हैः–

सत्य अडिग हैं
अविचल हैं
खड़ा रहता हैं
सौ झूठ के बीच
भी तनकर
मंद मंद चंहु और
फैलता तो जाता
बुलंद
निर्मल खड़ा, सत्य

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *बसु डी.डी. भारत का संविधान : लेक्सिस नेम्सिस प्रकाशन हरियाणा 10 वां संस्करण 2013*
2. *सूचना प्रपाता संरक्षण अधिनियम 2011, कानून प्रकाशन जोधपुर।*
3. *ध्यानाकर्षक संरक्षण अधिनियम 2011, राष्ट्रपति की मंजूरी, जागरण जोश, 17 मई 2014*
4. *सिटाय पी. के. एन्टी करप्शन एजेन्सीज ऑफ द गर्वन्मेट ऑफ इन्डियाः देयर मेण्डेट एण्ड चार्टर ऑफ ड्यूटीप्प – आर्कचर्स पब्लिशिंग हाउस 2001*
5. *शिवाच राजकुमार – सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 और पारदर्शी शासन तंत्र*

बौद्ध धर्म और धर्म निरपेक्षता : एक अध्ययन

डॉ. किरण शेखावत
पोस्ट डॉक्टोरल फैलो,इण्डियन कौंसिल ऑफ सोशल साइंस एण्ड रिसर्च, नई दिल्ली

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

बुद्धकालीन समाज ब्राहम्ण, क्षत्रिय, वेश्य और शूद्र में विभाजित था। इसके उपरांत भी ये 4 वर्ण अपने व्यवसाय और सामाजिक स्तर के कारण जातियों और उप जातियों में बंट गये थे। इस युग में नारी समाज की स्थिति भी दयनीय, शोचनीय, नारकीय एवं पाश्विक थी। शूद्रों, दासों, निम्न जातियों अस्पृश्य और स्त्रियों के प्रति अत्याचार, उत्पीड़न, शोषण और अन्याय के कारण समाज में सामाजिक न्याय का नितान्त अभाव था। बुद्ध ने इन सामाजिक कुरूतियों का अवलोकन किया। बुद्ध इस समय तथ्य को भलीभाँती जानते थे, कि इन सब का कारण वर्ण व्यवस्था और विभिन्न प्रकार की जातियां थी। बुद्ध स्वतंत्रता और समानता के पोषक थे। इसलिए बुद्ध ने कर्म और क्रियाशीलता का प्रतिपादन किया तथा प्रत्यके व्यक्ति को उन्होंने ने अपने-अपने कर्म, रूची और इच्छा के अनुसार करने के लिए कहां। वह जीवन को दुर्बलताओं और त्रुटियों से उपर उठकर देखते थे। बुद्ध ने यज्ञों और उनमें दी जाने वाली पशुओं की बलियों का डटकर मुकाबला किया। बुद्ध के धर्म का आधार पंचशील व अष्टांगिक मार्ग था। बुद्ध ने समानता के मूल्यों की स्थापना में क्रांतिकारी कार्य किया। बुद्ध सार्वभौमिक उत्थान में विश्वास रखते थे। बुद्ध कहते थे, कि मनुष्य को अच्छे बुरे की पहचान, कार्यशीलता तथा नीर-छीर विवेक का होना मानव जीवन का सबसे बड़ा धर्म हैं। जिस कर्म द्वारा सबका कल्याण हो, वो ही वास्तविक धर्म हैं।

संकेताक्षर : *बौद्ध धर्म, धर्म निरपेक्षता, वर्ण व्यवस्था, जातियाँ, समानता।*

बुद्धकालीन समाज ब्राह्मण, श्रत्रिय, वैश्य और शूद्रों में विभाजित था। इसके उपरान्त भी ये चार वर्ण अपने व्यवसाय और सामाजिक स्तर के कारण अनेक जातियों और उपजातियों में बंट गये थे। अनुलोम और प्रतिलोम विवाहो के कारण अनेक वर्ण सकंर जातियाँ अस्तित्व में आ चुकी थी जिन्हें रक्त मिश्रण के कारण अत्यन्त निम्न (नीच) जातियों में रखा गया था। इस प्रकार की की सभी जातियां अस्पृश्य थी। इन जातियों को निम्नकोटि का माना जाता था। यथार्थ में ये जातियों पशुओं से भी हीन समझी जाती थी। समाज में ऋग्वेद काल से दास वर्ग भी चला आ रहा था, जिसके अधिकार शून्य और जीवन भर कर्तव्य ही कर्तव्य थे। दासों की सामाजिक स्थिति का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उन्हें अन्य पशुओं की तरह बेचा जाता था, इसके लिए मेले और हाट लगा करते थे।[1]

चिन्तन की दृष्टि से यह युग अधंकार का युग था। अंधविश्वास पाखण्ड और कर्मकाण्ड के कारण इस युग में माननीय मूल्यों का न तो प्रादुर्भाव ही हो पाया था और यथार्थ और कटु सत्य यह है कि यह युग शराबियों और कबाबियों, व्याभिचारियों, हत्यारों, पिशाचों और जुआरियों का युग था। वर्ण व्यवस्था और भेदभाव के कारण समाज में समानता, स्वतन्त्रता बन्धुत्व और सामाजिक न्याय का नितान्त अभाव था। धर्म केवल यज्ञों और उनको दी जाने वाली बलियों और काल्पनिक देवताओं को प्रसन्न करने तक ही सीमित था।[2]

इस युग में नारी समाज की स्थिति भी अत्यन्त दयनीय, शौचनीय, नारकीय एवं पाशविक थी। इस युग में शुद्रों, दासों, निम्न जातियों अस्पृश्यों और स्त्रियों के प्रति अत्याचार, उत्पीड़न, शोषण और अन्याय के कारण वैदिक समाज परम्पराएँ ही नहीं थी, बल्कि उन पाश्विक और मान्यताओं को विधि सम्मत कह कर ईश्वर कृत बताया जाता था जिससे कि कोई व्यक्ति इनके प्रति आवाज न उठा सके। इसलिए इस युग के बारे में आधुनिक विचारक एस.एस. राधवाचार्य का कथन है भगवान बुद्ध के आविर्भाव से ठीक पहले का समय भारतीय इतिहास का सर्वाधिक

अंधकारमय युग था। ''चिन्तन की दृष्टि से यह पिछड़ा हुआ युग था उस समय विचार धर्म ग्रन्थों के प्रति अंधविश्वास से जकड़ा हुआ था" नैतिकता की दृष्टि से अधंकार का युग था। आत्मत्याग या चित्त की पवित्रता आदि जैसे यथार्थ नैतिक विचारों को उस समय के नैतिक चिंतन में कोई भी उपयुक्त स्थान प्राप्त न थे।[3]

इस प्रकार बुद्ध के युग पर विहगंम दृष्टिपात करने के उपरान्त यह निष्कर्ष प्राप्त किया जा सकता है कि उस युग में सामाजिक न्याय के लिए किंचित मात्र भी स्थान नहीं था। बुद्ध ने इस बातों को बड़े ध्यान से अवलोकन किया। बुद्ध इस तथ्य को भली भांति जानते थे कि इन सबका कारण वर्ण व्यवस्था और विभिन्न प्रकार की जातियाँ है। वर्ण व्यवस्था को ईश्वरकृत बताना मूर्खता अज्ञान और अविद्या थी। इसी के कारण समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग जिसमें शूद्र, दास, निम्न जातियाँ, स्त्रियाँ और अस्पृश्य आदि आते थे, शिक्षा से अछूता रह गया।[4] इस अशिक्षा के कारण इन वर्गो के अतिरिक्त स्वतन्त्रता, समानता और भातृत्व भाव के मूल्यों के प्रति भावना जागृत नहीं हो सकी और जीवन भर तक इन के प्रति अन्याय और शोषण ही नहीं होता रहा, बल्कि वैदिक समाजदर्शन न इन्हें पशु तुल्य बनाकर इनका जीवन नारकीय कर दिया था। यह समाज किसी भी दृष्टि से स्वस्थ समाज नही कहा जा सकता। इस समाज में वर्ण व्यवस्था और जातिवाद के कारण अनेक दोष व विकृतियां भरी पड़ी थी। भूख, गरीबी, निरक्षरता, भेदभाव, ऊंच नीच, छुआछुत, असमानता, शोषण, बलात्कार, हिंसा यहां के चलन बन चुके थे बुद्ध ने इन्हें समाप्त करने के लिए वर्ण व्यवस्था पर जबर्दस्त प्रहार किया। उसका कारण यह है कि इन सभी बुराईयों की जड़ जातिवाद था।[5]

बुद्ध के युग में वर्ण व्यवस्था और जातियों के कारण ऊंच नीच, भेद-भाव असमानता के कारण मनुष्यों का जीवन इतना शोचनीय एवं नारकीय और दास प्रथा के फलस्वरूप पाशविक हो गया था कि उस वातावरण में मानवीय मूल्यों की बात करना या सोचना स्वप्न के बराबर था। उस युग में बुद्ध ने समानता की बात करके विलक्षण बात की थी।[6] बुद्ध का यह कार्य धार्मिक, दार्शनिक एवं सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। एक तरफ बुद्ध जहां जाति-पात के विरोधी थे वही कर्म के आधार पर ही वे मनुष्य को छोटा या बड़ा मानते थे। दासता से उन्हें घृणा थी। बुद्ध स्वतन्त्रता और समता के पोषक थे। इसलिए बुद्ध ने कर्म और क्रियाशीलता का प्रतिपादन किया था तथा प्रत्येक व्यक्ति को उन्होंने अपना-अपना कर्म अपनी अपनी रुचि, अभिरूचि और ईच्छा के अनुसार करने के लिए कहा था। यर्थाथ में बुद्ध ने मनुष्य के जीवन को दुर्बलताओं और त्रुटियों से ऊपर उठकर देखा था।[7]

बुद्ध ने यज्ञों और उनमें दी जाने वाली पशुओं व मनुष्यों की बलियों का डटकर मुकाबला किया। उन्होंने अंधविश्वास, पाखण्ड और अविद्या के स्थान पर प्रज्ञा, शील, मैत्री और करुणा जैसे मानवीय एवं नैतिक मूल्यों को अपने धर्म की आधारशिला बनाया। उन्होने अपने संघ में शूद्र ओर चाण्डाल आदि को दीक्षित करके समानता का सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।[8]

वास्तव में भगवान बुद्ध अपने युग के महानतम जाति विध्वसंक थे। उन्हें ब्राह्मणों द्वारा अविषयकृत जाति व्यवस्था के अस्तित्व में न तो कोई सार दिखाई दिया और न ही कोई कल्याणकारी तत्व। बुद्ध का कहना था कि जो सत्य सभी प्राणियों के लिए कल्याणकारी है। वही वास्तव में असली सत्य है, किन्तु जाति तो ऐसा सत्य है नहीं। जाति तो कुछ विशेष वर्गों के सुख सुविधा के साधन उपलब्ध कराने का माध्यम मात्र था।

जातिवाद के अनर्थकारी अभिमान के विरोध में जाति विध्वसंक उपदेश देने वाले मात्र भगवान बुद्ध ही दिखाई देते है। यह उन्हीं की कल्याणकारी शिक्षाओं का प्रभाव था, जो राजा हो रंक, रानी हो या महारानी, संत हो या डाकू अथवा नर हो या नारी ये सभी लोग समान रूप से बुद्ध शासन में सम्मलित हुए।[9] उनके धर्म के दरवाजे सभी के लिए समान रूप से खुले हुए थे। यह बुद्ध धर्म की पावन सरिता ही थी, जिसके घाट पर शेर और बकरी साथ साथ खड़े होकर पानी पीते नजर आते थे। यहॉ न तो शेर को भेड़ का फाड़ खाने की लालसा प्रतीत होती और न ही भेड़ को शेर की संगत में रहते हुए अपने प्राणों पर कोई संकट नजर आता था। बुद्ध ने भिक्षु भिक्षुणियों और उपासको के लिए भिन्न-भिन्न नियमों व शीलों का प्रावधान किया था। इतना ही नही बौद्ध धर्म समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्व और न्याय के सिद्धान्त पर निर्भर था।[10]

बौद्ध धर्म में वर्ण व्यवस्था जातिवाद और आश्रम धर्म के लिए किंचित मात्र भी स्थान नही था। बुद्ध ने वर्ण व्यवस्था को न तो कर्म के आधार पर ही माना न ही जन्म के आधार पर। बुद्ध के अनुसार सभी मनुष्य एक समान है। स्त्री पुरुष में मानवीय मूल्यों के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव नही किया जा सकता है। सभी को निर्वाण प्राप्त करने का अधिकार है। बौद्ध धर्म में बुद्ध ने समाज से सभी प्रकार के शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार और अन्यायों को समाप्त कर समानता, स्वतन्त्रता, बधुत्व और न्याय की बात की।[11]

उस युग बुद्ध के उपदेश अत्यन्त क्रांतिकारी थे। उस

समय में जो व्याप्त एवं पहली से चली आ रही सामाजिक मान्यताएँ, आस्थाऐं एवं दार्शनिक सिद्धान्त थे, बुद्ध ने अपने धर्म और दर्शन के माध्यम से उनके सम्मुख एक बड़ी चुनौती प्रस्तुत कर दी थी। बुद्ध ने उस समय के सामाजिक मूल्यों को परिवर्तित कर दिया था। बौद्ध धर्म का मुख्य उद्देश्य बहुजन का हित, बहुजन का सुख लोक पर अनुकम्पा और मनुष्यों का हित और सुख है। मनुष्य का कल्याण और सुख ही बुद्ध के समाजदर्शन का केन्द्र बिन्दु व दार्शनिक धुरी था। मानव जीवन के समस्त प्रकार के दुखों का अन्त करना ही बुद्ध की मुख्य समस्या थी। इसलिए बुद्ध ने उन सभी वैदिक मान्यताओं जैसे यज्ञ और उसमें दी जाने वाली निरीह पशुओं की बलियों वर्ण व्यवस्था एवं जाति और उसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले शोषण एवं दुखों को बुद्ध ने अस्वीकार कर दिया। उन्होंने इस प्रकार के समाजदर्शन को जन्म दिया जो समाज में समस्त प्रकार के शोषण और अन्याय को समाप्त करके स्वतन्त्रता, समानता, बंधुत्व और न्याय की स्थापना कर सके।[12]

बुद्ध मानव मात्र के लिए समानता का प्रचार करते थे। वर्ण भेद और वर्ण व्यवस्था का विरोध बुद्ध के उपदेशों में जगह जगह मिलता है। बुद्ध ने आचार और ज्ञान को आदमी की श्रेष्ठता के लिए मुख्य कसौटी रखा। सदाचारी और ज्ञानी पुरुष चाहे किसी जाति अथवा किसी वर्ण का या किसी रंग का हो उसे वह श्रेष्ठ मानते थे।

बुद्ध को समस्त जाति भेद निरूपयोगी और अरूचिकर लगा, क्योंकि जातिभेद से समाज में असमानता का जन्म होता है और यह बहुजन हिताय बहुजन सुखाय के मार्ग में बाधक है। इसलिए बुद्ध न जाति भेद को ब्राह्मण और अब्राह्मण सम्मान थे।[13]

बुद्ध के धर्म की समानता इस बात से प्रकट होती है कि उन्होने अपने धर्म में सभी वर्णो, जातियों, सम्पन्न और निर्धनों स्त्री व पुरुषों साधु व डाकुओं एवं रानी व महेतरानी (चाण्डालिका) आदि लोगों की दीक्षा अथवा प्रवज्या देकर समानता का कीर्तिस्तम्भ खड़ा कर दिया। इस बात को सिद्ध करने के लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे है।

बुद्ध ने इस इस श्रृंखला में वाराणसी के सम्पन्न कुल के अनेक पत्नियों के पति नाच गाने और भोग विलास में लिप्त रहने वाले यश उनके चार मित्रों के साथ धर्म में दीक्षित किया। राजाओं की श्रृंखला में बुद्ध ने मगध नरेश बिम्बसार कोसल नरेश प्रसेन्नजित को धर्म में दीक्षा प्रदान की। श्रावस्ती का प्रसिद्ध श्रेष्ठी अनाथपिण्डिक था उसने भी बौद्ध धर्म में दीक्षा प्राप्त की। राजगृह का प्रसिद्ध राजवैध को भी दीक्षा प्रदान की। बुद्ध ने कविल वस्तु के अनेक शाक्य राजकुमारो को भी दीक्षित किया।

बुद्ध की समानता इस बात से और भी अधिक प्रदर्शित होती है कि उन्होंने राजा, श्रेष्ठी और विद्वान ब्राह्मणों को ही दीक्षित नहीं किया बल्कि राजगृह में गवांर समझे जाने वाले सत्तर ब्राहम्ण परिवारो, श्रावस्ती के उत्तरवति गांव में रहने वाले पॉच सौ ब्राहम्णों को दीक्षा प्रदान की। बुद्ध ने शूद्र, दास और उनसे भी निम्न स्तर की जातियों के लोगो को बौद्ध धर्म में दिक्षित किया। कपिलवस्तु के नाई उपालि को पहले प्रवज्या दी, उसके बाद शाक्यकुल पुत्रों को जिससे की शाक्य कुल पुत्र उपालि को पहले प्रणाम कर और उसके जाति अहंकार की मानसिकता समाप्त हो सके।[14]

इनके साथ ही बुद्ध ने राजगृह में सड़कों का कूड़ा करकट साफ करने वाले सुणीत नामक भंगी को प्रवजित करके समानता का महान उदाहरण प्रस्तुत किया। श्रीवस्ती के सोपाक और सुप्पिय जैसे अछूतों को धर्म में दीक्षित किया। श्रावस्ती के सुमंगल नामक किसान, कपिल वस्तु के शुद्धोधन के दास छनन, राजगृह के धनिय नामक कुम्हार, श्रावस्ती के कप्पत कुट नाम भिखारी और राजगृह के वेणुवन में रहने वाले कुष्ठ रोगी सुप्रबुद्ध को भी धम्म दीक्षा दी।

बुद्ध के समय तक स्त्रियों की स्थिति बहुत दयनीय थी। लेकिन बुद्ध ऐसे प्रथम नारी उद्धारक हुए जिन्होंने स्त्रियों को संघ में प्रवेश देकर भारत के इतिहास का प्रवाह ही परिवर्तित कर दिया था। महाप्रजापति गौतमी, यशोधरा आदि अन्य राजघराने की स्त्रियों को प्रवज्या उपसपंदा देकर महिलाओं के लिए अलग संघ की स्थापना की। इस संघ में लगभग पॉच सौ स्त्रियां थी। श्रावास्ती की प्रकृति नामक चाण्डाल कन्या को भिक्षुणी संघ में प्रवज्जा दी। बुद्ध के द्वारा महारानी और मेहतरानी (चाण्डलिका) को एक ही संघ में प्रवज्जित करना समानता का बेजोड़ अतुलनीय व दुर्लभ उदाहरण था।[15]

इस युग में राजगृह में अनेक असंगत पतित और अपराधी रहते थे। उन्हें भी बुद्ध ने धर्म में दीक्षित करके शील, करूणा और मैत्री आदि के मार्ग पर चलकर उनका कल्याण करने के लिए प्रवज्या दी जिससे वह मानव कल्याण की और उन्मुख हो सकें। राजगृह से दक्षिण की ओर जाने वाले मार्ग में पाँच सौ डाकु रहते थे उन डाकुओं को भी बुद्ध ने दीक्षित किया।

जीवन भर बुद्ध समाज में भेदभाव जातिभेद समाप्त करके समानता की स्थापना का प्रयास करते रहे। जिस प्रयास में बुद्ध का बहुत सफलता भी प्राप्त हुई थी।

अपने युग में समाज में व्याप्त भेदभाव, ऊँच नीच, आदि को बुद्ध ने झकझोर के रख दिया। इस प्रकार निरपेक्ष रूप से कहा जा सकता है कि बुद्ध ने समाज का आधार सदैव समता को ही रखा।

बुद्ध जैसे महामानव के लिए यह लाजमी था कि वह वर्ण व्यवस्था का खण्डन करके समानता का प्रचार करे उस युग में बुद्ध का समाजदर्शन अत्यन्त क्रांतिकारी था। उस समय में जो व्याप्त एवं पहली से चली आ रही सामाजिक मान्यताऐं, आस्थाएं एवं दार्शनिक सिद्धान्त थे, बुद्ध ने अपने धर्म व दर्शन के माध्यम से उनके सम्मुख एक बड़ी चुनौती प्रस्तुत कर दी थी। बुद्ध ने उस समय के सामाजिक मूल्यों को परिवर्तित कर दिया था।[16]

बौद्ध धर्म में जाति पांति और ऊंच नीच का अभाव था। इसमें न कोई जाति भेद था, न कोई वर्ग- भेद। सभी मनुष्य बराबर थे। सभी जातियों के लोग इस धर्म को ग्रहण कर सकते थे। ''दलित और निम्न जाति के लोगों के लिए तो यह स्वर्णिम अवसर था, यहां बिना किसी भेदभाव के लोग इस धर्म में दीक्षित और अनुगृहित किये जा सकते थे। इस धर्म में नैतिकता और आचरण पर अधिक बल दिया जाता था। जिस किसी का भी चरित्र और आचरण शुद्ध होता था, वह निम्न होकर भी अपनी ईच्छा अनुसार इस धर्म का अनुयायी बन सकता था। क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों ने इस धर्म को निर्द्वन्द्व होकर स्वीकार किया।

हिन्दु धर्म की क्रियाऐं और कर्मकांडीय व्यवस्थाएं अत्यन्त व्यय साध्य थी तथा छोटे छोटे धार्मिक कृत्यों में धन व्यय होता था। निर्धन और निम्न जाति के लोग अधिक धन नही खर्च कर सकते थे। अतः उन जातियों ने बौद्ध धर्म में व्यक्ति की नैतिकता और सच्चरित्रता पर बल दिया जाता था, जिसके अनुसरण से दुखों का निषेध सम्भव हो सकता था। अतः विद्रोही और क्रांतिकारी प्रवृति के लोगों ने बौद्ध धर्म का अनुसरण किया और इसका प्रसार भी किया।[17]

बुद्ध के द्वारा वर्ण व्यवस्था और जाति पर जो विचार प्रस्तुत किये थे, वे इतने सरल और सुबोध थे कि लोगों उनके प्रति स्वतः ही आकर्षित हो जाते थे। समाजदर्शन से सम्बन्धित उनकी अभिव्यक्तियों और निर्देश अत्यन्त बोधगम्य और सहज थे। इनको समझने के लिए किसी पांडित्य की आवश्यकता नहीं थी और इतना ही नहीं बल्कि इसका अनुशीलन भी बहुत ही सरल पद्धति से किया जा सकता था। ''इसके विधि विधान तथा दार्शनिक तत्व ऐसे नही थे जिन्हें साधारण जनता समझ न सके। वर्ण व्यवस्था और जाति पस्त हो चुकी थी उन्हें सरल और आडम्बरहीन धर्म की अपेक्षा थी और बौद्धधर्म ने उस सभी को पूरा कर दिया।

बुद्ध वर्ण व्यवस्था और यज्ञ बलि के विरोधी थे, तो भी कुटदन्त, सोणदण्ड जैसे राज-मान्य ब्राह्मण उनके चरणो में झुकते थे। बुद्ध अपने भिक्षु संघ द्वारा एक दूसरे ही समाज के निर्माण का स्वप्न देख रहे थे, जिसमें आर्थिक समानता तथा जनंतात्रिक विधान को सर्वमान्य माना जाए। सबसे उत्पीड़ित जातियों जिन्हें आज हम हरिजन कहते है कि उद्धार में तो वह मुख से नही बल्कि काम से उदाहरण पेश करते थे। उनके भिक्षु संघ में चाण्डाल व ब्राह्मण एक समान थे। दोनों में परस्पर अभिवादन करने के लिए सिर्फ इतना ध्यान दिया जाता था कि कौन पहले भिक्षु संघ में प्रविष्ट हुआ। इस प्रकार बुद्ध के धर्म में ब्राह्मण और अब्राह्मण समान थे।

बुद्ध का मानना था कि सभी मनुष्य समान है तो सब व्यक्तियों को आपस में मिलजुल कर भाई-भाई की तरह रहना चाहिये। आपस में समानता, बधुत्व और न्याय का व्यवहार करना चाहिये। मनुष्य को कभी एक दूसरे का शोषण नही करना चाहिये और न ही किसी पर अत्याचार। सद्धर्म का पालन और अधर्म का त्याग आवश्यक है। सद्धर्म के पालन और अधर्म के त्याग के लिए प्रज्ञावान होकर बुद्धि का प्रयोग करना चाहिये।

बौद्ध धर्म के समस्त समाजदर्शन का आधार प्रज्ञा, शील, करूणा और मैत्री था। वैसे तो बौद्ध धर्म का तात्पर्य जीवन का मार्ग है, लेकिन इस जीवन के मार्ग पर चलकर तभी बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय लोकानुकम्पाय की प्राप्ति की जा सकती है जब व्यक्ति प्रज्ञा, शील, मैत्री ओर करुणा का अनुशीलन करे। इसके अभाव में बौद्ध धर्म के साध्यों की प्राप्ति असंभव है।

बुद्ध ने कहा कि मनुष्य अपना स्वामी आप है, अपने आप ही अपनी गति है, इसलिए अपने को संयमी बनाए।

बुद्ध के धर्म का आधार पंचशील व आष्टागिक मार्ग है। आंष्टागिक मार्ग से मनुष्य अपने दुखों का अन्त कर सकता है। वही पंचशील बौद्ध धर्म का मूलाधार है जिसके प्रथम शील में प्राणी हिंसा से विश्व, द्वितीय शील में चोरी से विरत तृतीय शील में व्याभिचार से विरत, चतुर्थ शील में झूठ बोलने से विरत और पांचवे शील में मादक द्रव्यों से विरत रहने की बात कहीं गयी है।

बुद्ध की दृष्टि में सभी समान थे। वह किसी भी व्यक्ति में भेद नहीं करना चाहते थे। इसलिए बुद्ध ने धर्मशासन में अपने लिए कोई विशेष स्थान सुरक्षित नहीं रखा था। इसलिए दो तीन बार बुद्ध के अनुयायियों ने उनसे

प्रार्थना की वे किसी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दे। बुद्ध ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए कहा, धर्म ही धर्म का उत्तराधिकारी हैं धर्म को अपने तेज से जीवित रहना चाहिये किसी मानवीय अधिकार के बल पर नहीं यदि धर्म को मानवीय अधिकार पर निर्भर रहने की आवश्यकता है वह धर्म नहीं है। यदि धर्म की प्रतिष्ठा के लिए हर बार सस्थापक का नाम रटते रहने की आवश्यकता है, तो वह धर्म नहीं है।

यथार्थ में बुद्ध ने समानता के मूल्य की स्थापना में क्रान्तिकारी कार्य किया। जिसके फलस्वरूप उनके संघ में समस्त वर्णो और जातियों के लोग एवं कर्म की दृष्टि से हेय, नीच और असमाजिक समझे जाने वाले अवरोधी भी प्रवजित हुए और उन्हें अत्यन्त सम्मानीय एवं आदरणीय स्थान प्राप्त हुआ। बुद्ध अपने धर्म की महासमुन्द्र के साथ तुलना करते हुए कहते है, ''भिक्षुओ ! जैसे जितनी बड़ी–बड़ी नदियां, महासमुन्द्र में आकर गिरती है, वैसे ही क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शुद्र चारों वर्ण के लोग इस धर्म विनय में घर से बेघर होकर प्रव्रजित होते है और वे अपने पहले नाम और गोत्र को छोड़ सभी 'बौद्ध भिक्षु' इसी नाम से जाने जाते है।[19]

बुद्ध ने भ्रातृत्वभाव की स्थापना ओर उसे सशक्त बनाने के लिए कहा तुम बुद्ध धर्म और संघ का आश्रय लेकर अपने परिश्रम से अपने तथा औरों के दुःख का नाश करो, दुनिया का दुखः दूर करो, जैसा की बुद्ध ने बताया है धर्म का अनुशीलन, भ्रातृत्व भाव को सशक्त बनाता है। इसके लिए ईर्ष्या द्वेष, मोह, लोभ, क्रोध आदि मानसिक वासनाओं को त्यागना अनिवार्य है उसी अवस्था में भ्रातृत्व की स्थापना हो सकती है। यह कार्य दुखों को कम करने के लिए एक प्रभावकारी प्रयास होगा। इस प्रकार बुद्ध के समाजदर्शन का आधार भातृत्व भाव भी था।

बुद्ध सार्वभौमिक उत्थान में विश्वास रखते थे, इसलिए समस्त मानव जाति को बुद्ध सत्य के निकट ले जाना चाहते थे। उनका समाजदर्शन शील और आचार का समर्थन करता है। इसके बिना मनुष्य और समाज का कल्याण सम्भव नहीं है। बुद्ध के समाज दर्शन में त्याग और संयम अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है। यह निवृति और सामाजिक मूल्यों की प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य के अनुपालन की देशना देता है।[20]

बुद्ध कहते थे कि मनुष्य को अच्छे बुरे की पहचान, कार्यशीलता तथा नीर–क्षीर विवेक का होना मानव जीवन का सबसे बड़ा धर्म मानते थे जिस कर्म से सब सुखी हो, वह कर्म ठीक है जिस कर्म से दूसरों को आघात और दुख पहुंचता है, वह कर्म ठीक नहीं है। इसके लिए मनुष्य में मनोनिरीक्षण अथवा स्वंय को देखने की प्रवृति चाहिये। मनुष्य में काम, लोभ, द्वेष, हिंसा, चचलंता, उच्छखंलता, अकर्मण्यता, आलस्य आदि प्रवृतियों का उपशमन अपेक्षित है। जो प्रज्ञा अथवा विपश्यना शील (सदाचार) समाधि (मन का सतुलन) वीर्य (अशुभ के विनाश और शुभ की प्राप्ति के लिए किया जाने वाले कार्य) दृढ़ संकल्प से ही सम्भव है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निरपेक्ष रूप से कहा जा सकता है कि बुद्ध वर्ण व्यवस्था और जाति पर कतई विश्वास नही करते थे। स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए श्रद्धा, प्रेम, सेवा, प्रज्ञा, शील, मैत्री करूणा, वृद्ध और शीलवानों की सेवा को आवश्यक बताया है और बुद्ध ने कहा है कि ऐसा करने से ही सभी की आयु सुख एवं बल की वृद्धि होती है।[21]

वर्ण व्यवस्था ओर जातिभेद से हानि

यथार्थ में भारत वर्ष में वर्ण व्यवस्था और जाति ने समाज के स्वरूप को इतना विकृत कर दिया है, जिसके दुष्परिणाम आज तक भारतीय समाज को भुगतने पड़ रहे है। जिस मुद्दे पर मैं यहां जोर देना चाहता हूं वह यह है कि जाति का राष्ट्रीय जीवन में एक अभिशाप समझने वालो की संख्या कम है। हमारे राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन में जातियता का सिद्धांत इतना गहरा धंस गया है कि हर व्यक्ति विशेषकर नेता लोग यह सिद्धांत मान लेते है। इससे स्पष्ट है कि वर्ण व्यवस्था और जाति की समस्या प्राचीन काल से ही नही आधुनिक युग में भी रक्त बीज राक्षस की तरह बढ़ती हुई दृष्टिगोचर हो रही हैं।

भारत में वर्ण व्यवस्था और जातिभेद ने जितनी हानि की है, शायद इतनी हानि और किसी ने नहीं की होगी। अदि वर्ण व्यवस्था और जाति भेद का प्रज्ञा, विवके और वैज्ञानिक दृष्टि से मूल्यांकन किया जाये, तो यह साफ तौर पर कहा जा सकता है कि इसके लाभ शून्यवत है, तो हानियां ही हानियां अधिक है।

यथार्थ में भारत जैसे महान देश की जितनी हानि व दुर्दशा वर्ण व्यवस्था और जातिभेद ने की है, सम्भवतः उतनी हानि अब तक किसी अन्य संस्था के द्वारा नही की गई होगी।

इतिहास इस बात का गवाह है, कि वर्ण व्यवस्था और जातिभेद के कारण भारत को अनेक बार असम्मान एवं बेइज्जती का सामना करना पड़ा, उसको सूचीबद्ध करना अत्यन्त ही कठिन कार्य है, लेकिन सर्वसाधारण की जानकारी के लिये वर्ण व्यवस्था और जातिभेद से होने वालि हानियों का संक्षिप्त ब्यौरा नीचे दिया जा रहा

है।

राष्ट्रीय अहित

मध्य भारत में वर्ण व्यवस्था और जातिभेद देश को जर्जर और अत्यधिक कमजोर बना दिया था। विदेशियो के आक्रमण के समय वर्ण व्यवस्था और जातिभेद उनके लिये बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई। विदेशी राजाओं और बादशाहों का सर्वदा यह प्रयास रहा था कि यहा भेदभाव फूट और अनेकता बनी रही। इसलिए मुसलमानों और अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति को अपनाया और इस प्रकार उन्होने एक हजार वर्ष तक राज किया था।

आज स्थिति बिल्कुल भिन्न है। भारत स्वतंत्र है और यहां जनतांत्रिक शासन पद्धति लागू है। जनतांत्रिक व्यवस्था समानता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व, न्याय और धर्म निर्पेक्षता के मूल्यों पर निर्भर करता है। इस प्रकार की सामाजिक स्थिति एवं वातावरण में जनतांत्रिक मूल्यों की ओर अग्रसर होना कतई संभव नही है। भारत में जनतंत्र को सफल बनाना है, तो वर्ण व्यवस्था और जातिवाद को समाप्त कर उखाड़ फेंकना होगा।

राष्ट्र के लिए अभिशाप

वर्ण व्यवस्था और जातिभेद ने भारतीयों को मानसिक एवं भौतिक दृष्टि से खण्ड–खण्ड और टुकड़ो–टुकड़ों में बांट दिया है, जिससे भारत जर्जर होकर शक्तिहीन हो गया है। इस संदर्भ में रविन्द्र नाथ टैगोर, जवाहर लाल नेहरू, बाबा साहब डॉ. बी.आर. अम्बेडकर आदि अनेक विद्वानों और इतिहासकारों ने कहा है कि यदि भारत की सम्पूर्ण जनता तलवार पकड़ने की अधिकारी होती तो यह देश कभी गुलाम नहीं बन सकता था। उत्तर प्रदेश की 25 प्रतिशत असंगठित क्षत्रिय जतिया और उपजातियां आक्रमणकारियों का सामना नहीं कर सकी और देश दासता की जंजीरों में जकड़ गया। असका केवल एक मात्र श्रेय वर्ण व्यवस्था एवं जातिभेद को जाता है।

कलंक का टीका

आधुनिक भारतीय समाज अंधविश्वास, अस्पृश्यता, निर्धनता, भूखमरी, निरक्षरता, बालविवाह, बन्धुआ मजदूरी, बालश्रम, मूर्ति पुजा और आर्थिक असमानताओं जैसी अनेक बुराइयों से लिप्त है। इसके फलस्वरूप समाज में शोषण, उत्पीड़न, अन्याय, अत्याचार, बलात्कार, भ्रष्टाचार, हत्याएं, चोरी, डकैती, अपहरण, जुआ, नशाखोरी दिन दूने रात चौगुने बढ़ रहे है। जिससे राष्ट्र का पल पल पतन एवं ह्रास हो रहा है। यथार्थ में यह स्थिति राष्ट्र के लिए कलंक का टीका है। जाति पाति का बंधन भारत के लिए कलंक का टीका है और इाने सारे देश को छिन्न–भिन्न कर रखा है।

धर्म- परिवर्तन

वर्ण व्यवस्था और जातिवाद के खूनी पंजों से बचने और स्व–सम्मान के लिए हिन्दुओं की एक बहुत बड़ी संख्या ने इस्लाम और ईसाई धर्मो को ग्रहण कर लिया। लेकिन कितने लोग अपनी इच्छा के विरूद्ध विधर्मी हो गये। इस संदर्भ में सत्य देव कहते है :– जाति पाति की दीवार गिरा दो, फूट के कारण को मिटा दो, तभी वास्तविक संगठन हो सकेगा।

दलित और शोषितों का नारकीय जीवन

यह बात निरपेक्ष रूप से सत्य है कि वर्ण व्यवस्था और जातिभेद के कारण भारत का लगभग 25 करोड़ अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के

लोग दलित, पददलित, शोषित और अस्पृश्य गना दिया है, लोग कुत्तों और सुअरों जैसा नारकीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। जिनके रहने के लिए घर, पहनने के लिए कपड़ा और पेट भरने के लिए रूखी सुखी रोटी का टुकड़ा तक नहीं मिलता, इन लोगों को इस स्थिति तक पहुँचाने का सम्पूर्ण उत्तदायित्व वर्ण व्यवस्था और जातिभेद को जाता है। दक्षिण भारत की दलित एवं शोषित समाज में व्याप्त देवदासी प्रथा किसी भी दृष्टि से औचित्यपूर्ण नहीं कही जा सकती। बंगला और उड़ीसा के कुछ क्षेत्रों में स्त्रियों के विधवा हो जाने पर उनका सिर मुडवाकर उन्हें मथुरा, वृन्दावन, काशी आदि तीर्थ स्थलों पर छोड़कर चले जाना कहाँ का औचित्यपूर्ण है।

ऊंच-नीच की भावना

आज भारत का व्यक्ति ऊंच–नीच की भावना एवं कुंठा से ग्रसित है, चाहे वह शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, गरीब हो अथवा अमीर, मजदूर हो अथवा मालिक, छोटा या बड़ा, चपरासी अथवा अफसर, राज्यपाल हो अथवा उप राज्यपाल, सन्तरी हो अथवा मंत्री सभी के दिन और दिमागों में जातिवाद भरा पडा है। सरकारी दफ्तरों में प्रत्येक अधिकारी जातिवाद का चश्मा लगाकर फैसले करता है। इस उँच नीच की भावना का जन्म वर्ण व्यवस्था और जातिवाद के कारण होता है।

अस्पृश्यता की भावना

यद्यपि भारतीय संविधान में अस्पृश्यता को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया है। लेकिन राजनीतिक क्षेत्र में अस्पृश्यता का बोल बाला है। अस्पृश्यता की उत्पति का श्रेय केवल वर्ण व्यवस्था और जाति वाद को जाता है।

आर्थिक असन्तुलन

आज भारत में कुछ लोग इतने धनवान है कि उन्हें पता ही नहीं है कि उनके पास कितना धन है। इसके विपरीत

भारत की आधी से अधिक जनसंख्या ऐसी है जिसके पास एक समय सूखी रोटी भी पेट भरने को नहीं मिलती। इस प्रकार का असंतुलित धन का वितरण वर्ण व्यवस्था और जाति भेद के कारण उत्पन्न होता है।

निरक्षरता

वैदिक वाड्मय में शूद्रों को पढ़ाने का अधिकार नहीं दिया गया है। स्त्री को भी पढ़ने के अधिकार से वंचित रखा गया था। इस कारण भारत लगभग 70 प्रतिशत भाग अशिक्षित एवं निरक्षर रह गया। अशिक्षा और निरक्षरता की बुराई का कारण भी वर्ण व्यवस्था और जाति भेद है।

आपसी प्रेम और सद्‌भावना का अभावा

आज भारत में प्रत्येक वर्ण और जाति अपने–अपने जाति स्वार्थो के कारण एक दूसरे को अपना शत्रु समझती है। वर्ण व्यवस्था और जातियों के कारण ही विविध जातियों के बीच प्रेम, स्नेह, सहानुभूति और सद्भावानाओं का नितान्त अभाव पाया जाता है। इस व्यवस्था के रहते सहस्त्रों जातियों और उप जातियों को एकता के सुत्र में बांधना अत्यन्त ही कठिन कार्य है।

सामाजिक विषमताऐं

वर्ण व्यवस्था और जातिवाद के कारण भारत में सामाजिक विषमताऐं जंगल में आग की भांति फैल रही है, इतना ही नहीं बल्कि इन विषमताओं के परिणाम बडे भयंकर प्राप्त हो रहे है। आज प्रत्येक जाति और उप जाति अपने में एक समाज और छोटा मोटा राष्ट्र बना हुआ है। कहीं जाट लैण्ड का बोल बाला है तो कहीं ठाकुर लैण्ड का।

सामाजिक बुराईयॉ

आधुनिक भारतीय समाज में बुराईयों का अत्यधिक बोलबाला है। निरक्षरता, बढ़ती हुई जनसंख्या, दहेज प्रथा, बाल विवाह, अस्पृश्यता, मृत्यु भोज, नशाखौरी जैसी सामाजिक बुराईयाँ वर्ण व्यवस्था और जातिवाद के कारण विकसित एवं पल्लवित हो होती रही हैं । यर्थात में सामाजिक बुराईयाँ विष बेल की भांति है। जो भारत के विकास में रोडा बनी हुई है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक बुराईयॉ वर्ण व्यवस्था और जातिवाद के कारण पैदा होती है।

राष्ट्र एकता एक समस्या

आज सरकार के लिए राष्ट्रीय एकता की समस्या एक चुनौति पूर्ण समस्या बनी हुई है। वर्ण और जाति भेद से धार्मिक कट्टरता और आतंकवाद का जन्म हुआ है। ये दोनों भाषावाद और प्रांतवाद के भी जनक मानें जा सकते है। भारत के इतिहास की शर्मनाक और भयंकर घटना द्वि–राष्ट्र सिद्धान्त के कारण हुई, जिसमें भारत का विभाजन हुआ। पाकिस्तान का निर्माण होना प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से वर्ण व्यवस्था व जाति भेद का ही परिणाम है।

कलाओं की उन्नति में बाधक

वर्ण व्यवस्था और जातिवाद के कारण भारत कलाओं के क्षेत्र में विकास नहीं कर पाया। यहॉ शिल्प कला स्थापत्य कला, मूर्तिकला आदि वंशानुगत पैतृक व्यवसाय के रूप में चली आ रही है। अन्य जातियों के सदस्यों में इन कलाओं के प्रति रूचि और अभिरूचियाँ होने पर भी सामाजिक प्रतिष्ठा आदि के भय से लोग उन कलाओं के नहीं अपना पा रहे है, जिससे विभिन्न कलाओं का विकास अवरुद्ध हो गया है।

अंध विश्वासों का जन्म

वर्ण व्यवस्था और जातिवाद का कोई विवेकपूर्ण आधार नहीं है। इसका अस्तित्व केवल अंधविश्वास पूर्ण मान्यताओं और मानसिंक कुंठाओं पर निर्भर करता है। इस कारण वर्गों और जातियों में अनेक अंध विश्वास पूर्ण मान्यताऐं, आस्थाऐं एवं मानसिक रोगियों जैसे क्रिया कलाप पाये जाते है जो समाज में घुन की तरह लग रहे है।

शिक्षा के क्षेत्र में हानि

वेद, स्मृतियों आदि वैदिक–वाङ्मय और रूढ़िवादी हिन्दु मान्यताओं के अनुसार शूद्रो को पढ़ने का अधिकार नहीं था। जिस प्रकार से शूद्र शिक्षा के अधिकार से वंचित थे, उसी प्रकार सभी वर्णो की स्त्रियां भी शिक्षा के अधिकार से वंचित थी, जिसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दु धर्म की अमानवीय, अंधविश्वासी एवं पांखडपूर्ण मान्यताओं के कारण भारत की 62.50 प्रतिशत जनसंख्या कानूनी रूप से निरक्षर एवं अशिक्षित एवं अशिक्षित रह गई, जो भारत के पतन का सबसे बड़ा कारण सिद्ध हुई।

राजनीतिक क्षेत्र में हानि

आज जितने भी आम चुनाव होते है, उनका मूलाधार जातिवाद है। जाति के आधार पर आम चुनाव में टिकटे वितरित की जती है। जाति के आधर पर चुनाव होते है और जाति के आधार पर मंत्री पद दिए जाते है।

वर्ण व्यवस्था और जातिवाद को समाप्त करने के उपाय

(क) सरकार की ओर से प्रयास
(ख) सिनेमा, दूरदर्शन और इलैक्ट्रोनिक मीडिया का प्रयास
(ग) स्वंयसेवी संस्थाओं की ओर से प्रयास
(घ) समाज सुधारकों की ओर से प्रयास
(ड़) साधु–सन्यासियों के संगठनों की ओर से प्रयास
(च) समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं के द्वारा

(छ) विचार गोष्ठियों एवं समूह चर्चाओं के द्वारा

(ज) दलितों और शोषितों की ओर से प्रयास

(झ) सशक्त कानून, शीघ्र न्याय एवं कठोर दण्ड की व्यवस्था द्वारा

1– जातिसूचक उपनामों पर प्रतिबन्ध

2– जाति के नाम पर सेना के रैजीमेंट समाप्त करने चाहिए

3– अन्तरजातीय विवाहों को बढ़ावा

4– जाति के नाम पर आरक्षण समाप्त

5– जातिवादी पुस्तकों एवं साहित्य आदि के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध

6– बुद्ध के सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *भगवान बुद्ध और उनका धर्म, बी.आर.अम्बेडकर, अनु. भदन्त आनन्द कौसल्यायन, सिद्धार्थ प्रकाशन बम्बई (1991) पृ. 64*
2. *भगवान बुद्ध, धर्मानन्द कोसाम्बी, अनु श्री पाद जोशी लोकभारती, प्रकाशन, इलाहाबाद (1982) पृ. 91*
3. *कास्ट्स एण्ड रेस इन इण्डिया (1969) धुरिये पृ. 53*
4. *भगवान बुद्ध इतिहास एवं धर्म दर्शन, भदन्त धर्मकीर्ति, भिक्षु महासंघ नागपुर (1986), पृ. 24*
5. *हिन्दु कास्ट्स एण्ड सैक्ट्स, जे.एन. भट्टाचार्य (1973), पृ. 81*
6. *धम्मपद, दलित साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली (1987) पृ. 60*
7. *दीर्घ निकाय, अनु. राहुल सांकृत्यायन महाबोधी, सारनाथ (1996)*
8. *सुन्तनिपात, अनु भिवस्तु धर्म–रक्षित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली (1988)*
9. *मिलिन्द प्रश्न, अनु. भिक्षु जगदीश काश्यप, महाबोधि, सारनाथ (1937)*
10. *भगवान बुद्ध, धर्मानन्द कोसाम्बी, अनु श्री पाद जोशी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (1982) पृ. 53–57*
11. *अछूत कौन और कैसे ?बी.आर. अम्बेडकर, गौतम बुद्ध डिपा, दिल्ली 1949, पृ. 81*
12. *कास्ट्स इन इण्डिया एण्ड एनहिलेशन ऑफ कास्ट्स, बी.आर. अम्बेडकर, शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार (1979)*
13. *सुतपिटक, सं. भिक्षु जगदीश काश्यप, अनु. भदन्त आनन्द कौसल्यायन (1958) पृ. 46*
14. *पालि शब्द कोष, भदंत आ कौसल्यायन, सुगत प्रकाशन, नागपुर (1989) पृ. 36*
15. *हिन्दू धर्म की रिडल्स ब्राह्मणशाही की ऊहापोह, बी.आर. अम्बेडकर, अनु भदन्त आनन्द कौसल्यायन रिडल प्रकाशन नागपुर (1998) पृ. 51*
16. *जाति विध्वसंक भगवान बुद्ध डॉ. धर्मकीर्ति, सम्यक प्रकाशन, 2005 पृ. 8, 9, 24–32*
17. *दीर्घ निकाय, अनु. राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि, सारनाथ (1936)*
18. *अभिधम्मकोश, आचार्य व सुबन्धु (सं.) आचार्य नरेन्द्र देव, हिन्दुस्तान, एकेडेमी इलाहाबाद, 1958, पृ. 38*
19. *द सेण्ट्रल कन्सेपसन ऑफ बुद्धिज्म शेरे बातश्की, श्री सतगुरू पब्लि., दिल्ली,1991,पृ.11*
20. *द साईक्लोजी एण्ड फिलॉसफी ऑफ बुद्धिज्म, डॉ. डब्ल्यू, एफ. जयसूर्या, बी.एम.एस. पब्लिकेशन, क्वालालम्पुर, 1976, पृ. 11*
21. *मज्झिम निकाय, अनु राहुल साकृत्यांयन, महाबोधि, सारनाथ (1933)*
22. *जाति विध्वसंक भगवान बुद्ध डॉ. धर्मकीर्ति, सम्यक प्रकाशन 2005, पृ. 162–193*

भारतीय आदिवासी साहित्य का परिदृश्य, बाधाएँ और संभावनाएँ

कुमारी मनीषा
शोधार्थी, राँची विश्वविद्यालय, राँची (झारखण्ड)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

इस धरा का मूल निवासी आदिवासी होने के बावजूद सभ्य समाज की बर्वरता से यह समुदाय जंगलों, कंदराओं की ओट में रहने के लिए विवश रहा है। जो साहित्य है वह आदिम वेतना, जंगलों में रहने वाले वंचित तथा क्रांति का साहित्य है। प्रकृति और संस्कृतिक और ऐतिहासिकता, बोली, भाषा इनकी साहित्य की प्रेरणा है। आदिवासी साहित्य सृजन की परम्परा मौखिक ही रही है और इसके केन्द्र में एक साथ रहने वाले समुदायों के सामूहिक जीवन अनुभव है। आदिवासी विविधताओं से भरा हुआ है। पर आज वह अनेक बाधाओं से जूझ रहा है और आदिवासी समस्या सुलझाने के बजाय और उलझता जा रहा है। आदिवासियों की समस्याओं को उभारने में आदिवासी साहित्य एक सशक्त माध्यम है। आज विभिन्न बाधाओं के बावजूद आदिवासी साहित्य में जितनी तरह के विविधतापूर्ण मानवीय समस्याओं एवं मुद्दों को अधिक से अधिक कमल बद्ध किया जा रहा है उतना कहीं नहीं किया जा रहा है और यह संभावना किया जा सकता है कि आदिवासी साहित्य हाशिए के समाज को मुख्य प्रवाह में लाने में सहायक सिद्ध होगा।

संकेताक्षर : *आदिवासी, साहित्य, परिदृश्य, संभावनाएँ, बाधाऐं।*

आदिवासी साहित्य वन संस्कृति से संबंधित साहित्य है। आदिवासी साहित्य उन वन जंगलों में रहने वाले वंचितों का साहित्य है जिनके प्रश्नों को अतीत में कभी उत्तर नहीं दिया गया। यह ऐसे दुःखितों का साहित्य है, जिनके आक्रोश की ओर यहाँ की समाज व्यवस्था ने कभी कान ही नहीं दिया। यह गिरि कन्दराओं में रहने वाले अन्याय ग्रस्तों का क्रांति–साहित्य है। यहाँ की क्रूर और कठोर न्याय–व्यवस्था ने जिनकी सैकड़ों पीढ़ियों को आजीवन वनवास दिया, उस आदिम समूह की मुक्ति साहित्य है यह। वनवासियों का क्षत–विक्षत जीवन जिस संस्कृति की गोद में छुपा रहा, उसी संस्कृति के प्राचीन इतिहास की शुरुआत करने वाला है यह साहित्य। या यूँ कहें आदिवासी साहित्य आदिम–वेदना तथा अनुभव का शब्द रूप है।

आदिवासियों का कोई लिखित इतिहास नहीं रहा है। उनका अपना सारा साहित्य हमेशा नकी बोलियों में उनके कहानी–किस्मों में, उनके नृत्य, संगीत में पीढ़ी हस्तांतरित होता रहा है। इनकी एक अलग परम्परा रहा है। इनकी लड़ाई हमेशा जल, जंगल और जमीन की लड़ाई रही है। इसी कारण आदिवासी साहित्य में तिरस्कार, शोषण, भेदभाव के विरोध एवं गुस्से का ही स्वर उभर रहा है। क्योंकि उनके साथ सदा से ही भेदभाव किया जाता रहा है।

इस धरा का मूल निवासी आदिवासी होने के बावजूद सभ्य समाज की बर्बरता से यह समुदाय जंगलों, कंदराओं की ओट में रहने के लिए विवश रहा है। प्रकृति के किसी कोने में दुबका रहा है। विकास और सुविधाओं से भी यह हमेशा दूर रहा है। आदिवासी परम्परागत साहित्य की सृजन–प्रक्रिया का जहाँ तक प्रश्न है तो वह मौखिक ही रहा है। जिनके केन्द्र में एक साथ रहने वाले समुदायों के सामूहिक जीवन अनुभव है। सामुदायिकता के वहन की इसी विलक्षण क्षमता को ही आदिवासी साहित्य के काव्य सृजन की रीढ़ कहा जा सकता है।

आदिवासी साहित्य दो रूपों में पाया जाता है – मौखिक और लिखित। इनके प्राचीन साहित्य का रूप मौखिक ही है। जिसके अंतर्गत आदिवासियों की अनगिनत लोककथाएँ, कहानियाँ, पहेलियाँ, लोकगीत, लोक गीत, विनती मंत्र,

आराधना, वंदना आदि व्यापक और विस्तृत रूप में लोक–स्तर पर प्रचलित है। जो उनके पर्वों, त्योहारों, शादी–ब्याह तथा सांस्कृतिक रीति–रिवाजों के अवसर पर क्रमशः सुनाऐ गऐ, पढ़े और संपन्न किये जाते हैं। इस रूप में आदिवासी साहित्य एक विशेष प्रकार के लोक साहित्य है जिसमें उनके लोक संस्कृति की सामूहिक चेतना प्रतिबिंबित होती है। लिखित साहित्य के अंतर्गत जो वर्तमान में उपलब्ध साहित्य है। जो अभी लिखा जा रहा है, उसे ही रखा जाता है।

प्रकृति, संस्कृति और ऐतिहासिकता बोली, भाषा इनकी साहित्य की प्रेरणा है। आदिवासी लोक साहित्य तो लोगों के रग–रग में समाया हुआ है। लाभ–लोभ से दूर रहकर ये पूरे आत्म विश्वास से अपनी भाषा, साहित्य और जीवनशैली को जिंदा रखे हैं। लगातार शोषण और विस्थापन के शिकार रहने के कारण ही इस समुदाय में आक्रोश का भाव तीव्र होता रहा है। जैसे–जैसे आदिवासी वर्ग शिक्षा और नागरी परिवेश से परिचय हुआ, उसे अपने मूल्य और वजूद का एहसास होने लगा। आज आदिवासी साहित्य ९० भाषाओं में लिखा जा रहा है। आज आदिवासियों की चेतना जगी है। आदिवासी साहित्य विविधताओं से भरा हुआ है। आदिवासियों में शिक्षा के कारण उनमें चेतना विकसित हुई है और ९०वें के दशक के बाद हिन्दी और आदिवासी भाषाओं में लेखकों की उल्लेखनीय संख्या दिखाई देती है। जिनमें वंदना टेटे, निर्मला पुतुल, रोज केरकेट्टा, हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, रामदयाल मुण्डा आदि प्रमुख हैं इन रचनाकारों ने अपनी मातृभाषा के साथ हिन्दी में भी विविधतापूर्ण लेखन कार्य कर आदिवासी जीवन के संघर्ष व प्रतिरोध को स्वरूप प्रदान कर रहे हैं।

आदिवासी साहित्य संभवतः दुनियाँ का सबसे प्राचीन और जीवन्तता से भरा हुआ साहित्य है। पर वह आज अनेकों समस्याओं और चुनौतियों से जूझ रहा है। १९९० के बाद आर्थिक उदारीकरण की नीतियों से तेज हुई आदिवासी शोषण की प्रक्रिया के प्रतिरोध स्वरूप आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक ऊर्जा आदिवासी साहित्य है। इसमें आदिवासी तथा गैर आदिवासी भी बढ़चढ़ कर हिस्सा ले रहे हैं। आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज, विभिन्न प्रकारों के शोषण के विभिन्न रूपों के उद्घाटन और आदिवासी अस्तित्व के संकटों के खिलाफ है। यह अभी निर्माण प्रक्रिया में है। इसके मुद्दे अभी निर्माण हो रहा है। यह साहित्य बिरसा, सीदो–कानु और तमाम क्रांतिकारी आदिवासियों और उनके आन्दोलनों से विद्रोही चेतना का तेवर लेकर आगे बढ़ रहा है।

इन दिनों आदिवासी समाज और साहित्य पर काफी बातें हो रहा है। लेकिन वह अनगिनत चुनौतियों से जूझ रहा है। नई आर्थिक नीतियों से हमारी सरकारों और उद्योगपतियों को विकास के नाम पर आदिवासियों को लुटने की खुली छूट मिल गई है। इसका असर देश के किसी भी आदिवासी इलाके में देखी जा सकती है। देश भर के आदिवासियों ने इस खुली छूट को अलग–अलग तरीकों से चुनौती भी दी है। आज आदिवासियों की समस्याएँ सुलझने के बजाए और उलझती जा रही है। इसकी सबसे बड़ी वजह आदिवासी जीवन और समाज से बाहरी समाज और सरकारों का अपरिचय और उपेक्षापूर्ण रवैया है। आदिवासी समाज से संवाद में आदिवासी साहित्य एक सशक्त माध्यम बन सकता है।

भारत में आर्थिक उदारीकरण की नीति ने बाजारवाद का रास्ता खोला। मुक्त व्यापार और मुक्त बाजार के नाम पर मुनाफे और लुट का खेल आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन से भी आगे जाकर उनके जीवन को दाँव पर लगाकर खेला जा रहा है। पिछले एक दशक में अकेले झारखण्ड राज्य से १० लाख से अधिक आदिवासी विस्थापित हो चुके हैं जो महानगरों में घरेलू नौकर या दिहाड़ी पर काम करते हैं। विकास के नाम पर अपने पैतृक क्षेत्रों में बेदखल किए गए थे। लोग जाये तो कहाँ जाये? जबकि यह भारत के देशज लोग हैं और यहीं पर यह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक पक्षपात के शिकार हैं। इसलिए आदिवासी साहित्यकारों की भूमिका आज चुनौतिपूर्ण हो गई है। सदियों से पुराना आदिवासी साहित्य जो लोक कला एवं परम्परागत लोकगाथाओं के रूप में सदा विद्यमान रहा है। उसकी रक्षा का दायित्व आदिवासी साहित्यकारों को ही वहन करना है।

आदिवासी साहित्य में जितनी तरह के विविधतापूर्ण मानवीय समस्याओं एवं मुद्दों को अधिक से अधिक कलमबद्ध किया जा रहा है। उतने कहीं नहीं। इसलिए आशा की जानी चाहिए कि आदिवासी साहित्यकार इन प्रश्नों, समस्याओं एवं मुद्दों को अधिक से अधिक कलमबद्ध करें। यह साहित्य समाज में इतिहास में अपने अस्तित्व की रक्षा के अतिरिक्त यह प्रश्न करता है कि साहित्य में इसकी मुक्ति का संघर्ष कहाँ हैं? अपने जल, जंगल, जमीन से बेदखल महानगरों में शोषित–उपेक्षित आदिवासी किस आधार पर इसे अपना देश कहे। बाजार और सत्ता के गठजोड़ ने आदिवासियों के सामने अस्तित्व की चुनौती खड़ी कर दी है जो लोग आदिवासी इलाकों में बच गए, वे सरकार और उग्र वामपंथी की दोहरी हिंसा में फंसे हैं। अन्यत्र बसे

आदिवासियों की स्थिति भी बिना जड़ के पेड़ जैसी हो गई है। नदियों, पहाड़ों, जंगलों के बिना उनकी भाषा और संस्कृति तथा उससे निर्मित होने वाली पहचान ही कहीं खोती जा रही है। आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व का इतना गहरा संकट इससे पहलं नहीं पैदा हुआ। जब सवाल अस्तित्व का होता है तो उसका प्रतिरोध भी स्वाभाविक है। सामाजिक व राजनीतिक प्रतिरोध के अलावा कला और साहित्य द्वारा भी इसका प्रतिरोध किया गया और उसी से समकालीन आदिवासी साहित्य अस्तित्व में आया।

आदिवासियों के समझ विस्थापन उनके जीवन की मुख्य समस्य बन गई है। इस प्रक्रिया में एक ओर उनकी सांस्कृतिक पहचान उनसे छूट रही है, दूसरी ओर उनके अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न खड़ा हो गया है। अगर वे पहचान बचाते हैं तो अस्तित्व पर संकट खड़ा होता है और अगर अस्तित्व बचाते हैं तो सांस्कृतिक पहचान नष्ट होती है। इसलिए आज का आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है। इसकी भाषा और भूगोल की महत्वपूर्ण रहा है। आदिवासी रचनाकारों का मूल साहित्य उनकी भाषाओं में है। हिन्दी में मौजूद साहित्य देशज भाषाओं में उपस्थित साहित्य की इसी समृद्ध परम्पराओं से प्रभावित है। कुछ साहित्य का अनुवाद व रूपान्तरण भी हुआ है। भारत में आज तमाम आदिवासी भाषाओं में लिखा जा रहा साहित्य हिन्दी, बंगला, तमिल जैसी बड़ी भाषाओं में रूपान्तरित होकर एक राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर रहा है।

आदिवासी दर्शन पर आयोजित संगोष्ठी कई दृष्टियों से खास रही। दो दिनों तक चली राँची संगोष्ठी में आदिवासी लेखों, पत्रकारों, प्रोफेसरों, शोधार्थियों, सांस्कृतिक कार्यकर्ताओं, फिल्मकारों आदि की उपस्थिति ने आदिवासी दर्शन पर बहु आयामी विश्लेषण और सहमति का मार्ग प्रशस्त किया। आदिवासी जीवन और साहित्य के बारे में बात करते वक्त हमें आदिवासी समाज के अन्दर की विविधताओं को समझना और संबोधित करना होगा। आदिवासी समाज इन दिनों काफी बदलावों से गुजर रहा है। उन बदलावों को भी रेखांकित करना होगा। कुल मिलाकर आदिवासी जीवन और उसकी समस्याओं को संपूर्णता में समझना होगा और आदिवासी जीवन–दृष्टि को समझने में आदिवासी साहित्य से बेहतर पथ–प्रदर्शक कोई नहीं हो सकता। इसलिए हमारा ध्यान आदिवासियों की उस पूरी मौखिक और लिखित साहित्य परंपरा पर होना चाहिए। उसी से संवाद करके हम समझ पाएँगे कि आदिवासी साहित्य क्या है और विकास की अलग–अलग परिभाषाओं की अंधी दौड़ में फँसे विश्वास को यहीं दर्शन बचा सकता है।

समकालीन आदिवासी साहित्य की पृष्ठभूमि के रूप में आदिवासी समाज में हजारों साल पुरानी साहित्य की मौखिक परंपरा को रखा जा सकता है जिसे पुरखैती कहा जाता है। पुरखैती रूप में मौजूद आदिवासी साहित्य जहाँ प्रकृति और प्रेम के विविध रूपों के साथ रचाव और बचाव का साहित्य है, वहीं समकालीन आदिवासी लेखन अस्मिता की खोज, दिकुओं द्वारा किए गए और किए जा रहे शोषण के विविध रूपों के उद्घाटन तथा आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संकेतों और उनके खिलाफ हो रहे संघर्ष का साहित्य है। यह उन परिवर्तनकामी चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप है जो देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का पुरजोर विरोध करती है तथा उनके जल, जंगल, जमीन और जीवन को बचाने के हक में उनके आत्मनिर्णय के अधिकार के साथ खड़ी होती है। आदिवासियों की समृद्धि मौखिक साहित्य परम्परा का लाभ आदिवासी साहित्यकारों को मिला है।

आदिवासी साहित्य जीवनवादी, साहित्य है। इसमें लेकिन विद्रोह जीवन के बुनियादी हको महरूम करने वाली व्यवस्था के विरोध की अभिव्यक्ति है। आदिवासी समाज की मुक्ति के लिए संघर्षरत आदिवासी वीर पुरुषों का राजनीतिक, सामाजिक विद्रोह इसकी मूल प्रेरणा है। यह साहित्य केवल शतहबद्ध रचना नहीं है बल्कि मूद्दों पर आधारित, शोषित, उपेक्षित, बहिष्कृत वर्ग की आवाज उठाने वाला प्रतिबद्ध, परिवर्तनकामी और संकल्पबद्ध साहित्य है। प्रस्थापितों की यह साहित्य परिवर्तन कामी है, क्रांतिकारी है। इससे प्रतिरोध का भाव है, विरोध का मुद्दा है। अस्वीकार का साहस है। स्वीकार की दलीलें है, अनुभव की पूँजी है। आदिवासियों के बारे में इतिहासवेत्ता, समाज चिन्तकों, साहित्यकारों ने सैकड़ों वर्षों से जो कलुषित धारणाएँ बना रखी थी उसके प्रति तीव्र प्रतिरोध का भाव आदिवासी लेखन में प्रकट हो रहा है। लेखन की कविताओं, कहानियों में व्यवस्था विरोध और हिन्दु संस्कृति के प्रति जो विरोध का भाव है, उसका कारण यही है और यही वजह है कि आदिवासी लेखन में वे मिथक, बिम्ब, प्रतीक प्रायः नहीं मिलते जो कि तथाकथित सभ्य और सुसंस्कृत साहित्यिकों के लेखन के हिस्से हैं इसके लेखन में जंगल है, केंचुआ है, मिट्टी है, पक्षी है, पेड़ पौधे हैं, सूर्य, चन्द्रमा है, पानी, बिजली, झरने, पोखर है। आदिवासी विमर्शकार राज राम भादू ने भी कहा है, आदिवासी साहित्य के उद्भव और परिप्रेक्ष्य निर्माण में मराठी के दलित साहित्य के संबंध को जोड़कर रखा गया है जो सही भी है, लेकिन

आदिवासी अस्मिता और उनकी संघर्षधर्मी चेतना के विकास और प्रतिरोध संगठनों के निर्माण में नक्सलवादी आन्दोलन के प्रेरणा प्रयासों को वहाँ लगभग नजरअंदाज कर दिया गया है।

आदिवासी साहित्य पर कुछ भी कहने से पहले बेहतर होगा कि आदिवासी और इससे स्वतः जुड़े हुए या किसी के द्वारा जोड़ दिए गए विश्लेषणों पर थोड़ा दृष्टिपात कर लिया जाए। आदिवासी साहित्य सभवतः दुनिया का सबसे प्राचीन और जीवन्तता से भरा हुआ साहित्य है। आदिवासियों की इतनी सशकत अभिव्यक्ति पर किसी की नजर न जाना या फिर यूँ कहें कि स्वघोषित विद्वत मंडली द्वारा जान–बूझकर अनदेखा कर दिया जाने के पीछे के कारण क्या हो सकते हैं। अगर लेखन कला को साहित्य का सर्वाधिक प्रखर लक्षण माना जाता हो तो दुनिया की सर्वप्रथम प्राप्त लिपि हड़प्पा, मोहनजोदड़ो की लिपि के लिखने वाले कौन लोग थे ?या वे लोग कौन रहे हों ? यही इसी भूमि के आदिवासी न।

आदिवासी साहित्य की कोई केन्द्रीय विधा नहीं है। अन्य साहित्यों की तरह उसमें आत्मकथा लेखन भी उपलब्ध नहीं होता। क्योंकि आदिवासी समाज में नहीं हम में विश्वास करता है। उसकी अभिव्यक्ति प्रतीकों के माध्यम से होती है। वह सामूहिकता की बात करता है, हम की चिंता करता है। इसलिए आदिवासी लेखकों ने अपने संघर्ष में कविता को मुख्य हथियार बनाया है। आदिवासी साहित्य अपने दायरे में अन्य उत्पीड़ित अस्मिताओं के प्रति संवेदनशील है। इसके अंतर्गत शब्द, नृत्य, गीत, संगीत, चित्र, प्रकृति और समूची समष्टि समाहित है। साहित्य समुच्य है इन सभी अभिव्यक्तियों का। आदिवासी समाज में सृष्टि ही सर्वोच्च नियामक है। उसके दर्शन में सत्य– असत्य, सुन्दर– असुन्दर, अच्छा– बुरा, छोटा– बड़ा, दलित– ब्राह्मण, मनुवय– अमनुवय जैसी कोई विशिष्ट अवधारणा नहीं है।

आदिवासी साहित्य मूलतः वाचिकता है। वाचिकता में ही आदिवासी दर्शन का प्रवाह है। आदिवासी दर्शन के प्रवाह को संरक्षित, प्रसारित और साझा करने वाला तथा अपनी मूलभाषाओं कें व्यक्त होने वाला साहित्य ही आदिवासी साहित्य है। आदिवासी दर्शन सहानुभूति या स्वानुभूति की बजाय सामूहिक अनुभूति में विश्वास करता है। उनके जीवन दर्शन में प्रेम की महत्ता है, नैतिकता है, न्याय है, सामुदायिक एकता है। चूँकि आदिवासियों का प्राचीन साहित्य अलिखित है जो मौखिक परंपरा के अंतर्गत आता है। इसी साहित्य में उनका जीवन दर्शन निहित है जिसे लिखित होने के अभाव में कभी देखने का प्रयास नहीं किया गया। इसी मौखिक परम्परा का पुनः पाठ करने की जरूरत है। आदिवासी जीवन सामूहिकता को महत्व देता है। उनका लोक साहित्य मुख्यधारा के साहित्य से कही विशाल व विशद् है। नाच–गान, प्रकृति इसका नैसर्गिक पहलु है। आदिवासी लेखक अपनी आदिवासियत की बहुमूल्य शैली के प्रति रुझान रखकर ही आदिवासी साहित्य का सृजन कर सकता है। उसे अपने साहित्य के लिए आदिवासी जीवन मूल्यों व कथन, भाषा, शैली, आदिवासियत तत्वों को ढूँढ़ने की जरूरत नहीं होगी, वे स्वतः उसके लेखन में आ जाएगा।

आदिवासी साहित्य आदिवासियों को सम्मान से जीने, अपनी पहचान बनाने, अपनी लड़ाई खुद लड़ने अपनी बात कहने एवं संगठित होने के लिए प्रेरित करता है यह अपनी सामुदायिक अस्मिता, अस्तित्व, संस्कृति संघर्ष के लिए तो जागृत है ही, परम्परागत अधिकारों की प्राप्ति हेतु संघर्ष की भी पुरजोर अभिव्यक्ति है। यह मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में बलपूर्वक अनुपस्थित दर्ज कए गये आदिवासियों एवं जनजातीय समूहों की उपस्थिति को रेखांकित करने वाला साहित्य विमर्श है। आदिवासी साहित्य मुख्यधारा की संस्कृति के दायरे से बाहर रहकर आदिवासियों के जीवन को व्यक्त करने वाला, उनकी संस्कृति, परम्परा, संघर्ष, इतिहास को एक स्तर से ऊपर उठाने वाला साहित्य है। यह गैर आदिवासी समाज से पृथक है। इसे आदिवासी दृष्टिकोण से ही समझा जा सकता है।

निष्कर्ष

हम निष्कर्ष के रूप में यही कहेंगे कि सरकार की नई उदारीकरण की नीतियों के कारण आदिवासी समाज के शोषण की प्रक्रिया अत्यन्त तेज हो गई है। विकास के नाम पर जंगलों को तोड़ा जा रहा है। जो आदिवासी जंगलों में रहते थे, उनकी जमीन अब उनसे छिनी जा रही है। इस विकास प्रक्रिया में आदिवासियों की जल, जंगल और जमीन का अधिकार ही खत्म कर दिया है। अपने अस्तित्व के खतरे के बीच आदिवासी समाज अपना अस्तित्व बचाए रखने के लिए सजग हो गया है। अपनी अस्मिता बचाए रखने के लिए सजग हो गया है। अपनी अस्मिता बचाए रखने के लिए अपनी भाषा, संस्कृति, कला, मान्यताएँ आदि की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहा है। यह आदिवासी साहित्य विमर्श हाशिए के समाज को मुख्य प्रवाह में लाने में सहायक सिद्ध हो रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सं. वंदना टेटे, आदिवासी दर्शन और साहित्य, संस्करण, पृ.सं.–34
2. सं. वंदना टेटे, एलिस एक्का की कहानियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ.सं.–2015, पृ.सं.–22
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. अशोक तिवारी, विश्वविद्याल प्रकाशन, आगरा, पृ.सं.–367
4. सं. रमणिका गुप्ता, आदिवासी साहित्य यात्रा, संस्करण–2016, पृ.सं.–24
5. सं. वंदना टेटे, आदिवासी दर्शन और साहित्य, संस्करण–2016, पृ.सं.–24
6. आदिवासी साहित्य विकीपीडिया पेज से
7. वंदना टेटे, आदिवासी साहित्य : परम्परा और प्रयोजन, प्र.सं.–2015, पृ.सं.–22
8. सं. गंगा सहाय मीणा, आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2014, पृ0सं0–36
9. सं. हरिराम मीणा, समकालीन आदिवासी कविता, अलख प्रकाशन, जयपुर, 2013, पृ.सं.–34
10. निर्मला पुतुल, अरावली उद्घोष, उदयपुर, वर्ष–2011, पृ.सं.–55
11. सं. गंगा सहाय मीणा, आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2014

ठा. रामसिंहजी तँवर की हिन्दी साहित्य साधना

लक्ष्मी भाटी
शोधार्थी, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

ठाकुर रामसिंह जी तंवर राजस्थानी भाषा, साहित्य और संस्कृति के प्रबल पक्षधर तो थे ही, लेकिन उन्हें अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दी से भी अत्यन्त ही लगाव था। उन्होंने अपने जीवनकाल में 'ज्योत्सना' तथा 'प्रेमाश्रम' नामक उच्च कोटि की रचनाओं का सृजन किया था। ये रचनाएँ निबन्धात्मक हैं। इनकी इन रचनाओं के अन्त में 'र' तथा 'स' लिखा है जिसमें 'र' से तात्पर्य है रामसिंह लिखित तथा 'स' से तात्पर्य सूर्यकरण पारीक द्वारा लिखित। ठाकुर रामसिंह तंवर तथा सूर्यकरण पारीक इन दोनों ने अत्यन्त ही अल्पायु में हिन्दी साहित्य में लेखन के द्वारा एक नये अध्याय का शुभारम्भ किया था। उन्हीं के लेखन ने हिन्दी साहित्य को दो श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाओं से सम्पन्न किया। इनकी दो रचना ज्योत्सना व प्रेमाश्रम थी।

संकेताक्षर : *हिन्दी, साहित्य, संस्कृति, राजस्थानी भाषा, राष्ट्रभाषा।*

ठाकुर रामसिंह जी तंवर राजस्थानी भाषा, साहित्य और संस्कृति के प्रबल पक्षधर तो थे ही , लेकिन उन्हें अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दी से भी अत्यन्त ही लगाव था। इनकी दो रचना ज्योत्सना व प्रेमाश्रम थी। इनकी रचना 1918 में रची गई तथा किशोर प्रेस लखनऊ से इनका प्रकाशन हुआ। 26 अप्रैल 1927 के पत्र में ज्योत्सना का साहित्यिक विश्लेषण प्राप्त होता है। यह विश्लेषण इस प्रकार है–" सत्य तो यह है कि नवीन भाषा साहित्य में विचार और वाणी की यह शैली अभी विरल और अनोखी है। उंगलियों पर गिन लेने के योग्य उन मणिमय भूषणों में हम 'ज्योत्सना' काव्य की गणना होगी भाषा का भविष्य इसका मन भर समादर करेगा। हमारे साहित्य का आगार इससे सम्पन्न होगा।" इस ज्योत्सना के देने वाले कौन हैं इस सुमन–संचय के आचार्य होने का सौभाग्य किसे प्राप्त हुआ है ?इस उद्यान के माली हैं दो चतुर मरुस्थल निवासी। दोनों ही एक प्राण हुये पुष्प पल्लवित इस मार्ग से चातुर्य बताते चल रहे हैं। इनकी रचनाओं के उपरान्त जो 'र' एवं 'स' का प्रयोग है उसकी सन्धि करने पर 'रस' शब्द निष्पन्न होता है। अतः इनकी रचना साहित्यकारों के लिये रसोत्पत्ति में सहायक है।

यह 'ज्योत्सना' हिन्दी भाषा के साहित्य भण्डार के लिये एक नवीन अनुपम रत्न प्रगक हुआ है। उचित है कि युगल कवि की युगल–किशोर कविता को युगल–भुजा पसार बारम्बार उहार आदर करै, और इसकी सरस सुरंगा छटा निहार अपने प्यासे युगल नेत्रों को तृप्त करे। इसके सत्यामृत का पीकर अपनी आन्तरिक तृषा को शान्त करे। इसको भगवतकृपा का प्रसाद जाग निज पदार्थ मन से अपनाए और सुखसमूह को सहज ही पाएँ। इस से विगलित रच गहिर्त कविता की तुकी बेतुकी के तुक्कसों से फिरे हुये मन, आकस्मिक–विस्मयकारी अविकारी बेतुके–सच्चे–तुक–पुँज से मनभर, पेटभर, अघाएँ। सच्ची नैसर्गिक–विचार–चातुर्य की धार से निजपंत करण को भरें। कुकाव्य–जनित–मल को इस शुद्ध विकार–नाश, निर्विकार साबुन से घोडाले, झक्क और निर्मल करके साहित्य शुचि से साफ सफाई पाएँ। विचार की वास्तविकता, सन्मार्गवाहिनी मर्यादा और सच्ची महिला को जान लेने की उत्कण्ठा रखने वाले उत्सुकजन सफल मनोरथ बने। कालिदास की काव्य–कल्लोलें ,भारवि की सार्थक रवि–भा–प्रभाविनी समृद्धियाँ दण्डी की सुपदन्यस्त पदलालित्य भरी मंदगामिनी गतियाँ, कविसम्राट् टैगोर की सरल–सुचारु–चमकदार–चय–चंद्रिकाएँ, इस कवियुग्म– युवक–संघटित नव–विकसित "ज्योत्सना" में इतस्ततः किरण यूपों से आभरी हैं सो चकारे बन टकटकी लगाकर अपनी शष्कुलियों के कोटरों से पीजाने को उत्कण्ठित है।

सत्य तो यह है कि नवीन भाषा साहित्य में विचार और वाणी की यह शैली विरल व अनोखी है। उंगलियों पर गिन लने के योग्य उन मणिमय भूषणों में इस "ज्योत्सना" काव्य की गणना होगी। भाषा का भविष्य इसका मनभर समादर करेगा। हमारे साहित्य का भण्डार इससे धनवान् होगा। साहित्य–प्रेमी–समुदाय इसे पाकर धन्य होगा। जगत् का विचार–वृत्त इसके प्रवेश से विस्तृत होगा। अनोखी सूझ की बूझ बढ़ेगी। वाणी की वीणा सुस्वर झंकृत होगी।

ज्योत्सना गद्यकाव्य शैली की एक अद्भुत रचना है। गद्यकाव्य के लिये संस्कृत साहित्य प्रसिद्ध है, बाणभट्ट, दण्डी, सुबन्धु आदि कई कवियों ने गद्यकाव्य के माध्यम से साहित्य साधना की है। उसी गद्यकाव्य शैली से हिन्दी में साहित्य सृजन अपने आप में अनोखा एवं अभूतपूर्व प्रयोग है। ज्योत्सना में कुछ गद्यकाव्य शैली से रची गई रचनाओं का परिचय इस प्रकार है।

बाल्यकाल

फूलों से लदा हुआ मेरा मधुर बाल्यकाल कहाँ गया ?मरुस्थल की स्वर्ण भूमि में, मृगतृष्णा की समीर लहरियों में, उन स्वप्नस्मृति के हृदय में जो चन्द्रलोक में रहती हैं और तारामण्डल में विहार करती हैं और जीवन के इस सरस प्रभात में।

दूर मेरी प्यारी मरुभूमि के सुदूर क्षितिज पर मेरे बाल्यकाल की पदचाप सुनाई देती है। उषा की ललित मुसकान की तरह उसकी स्मृति मेरे हृदय पर छा रही है और सन्ध्या की स्वर्ण स्वप्न की तरह वह धीरे धीरे मेरे मस्तिष्क सागर की तरंगों में पिघल कर विलीन हो रही है। इसी प्रकार एक अन्य माली का जीवन से कुछ पद उद्धृत हैं–

माली को देखा है, पर उसके जीवन को विरले ही जानते होंगे। सरोवर की पश्चिमी कुंज में सहरा, मालती, जुही, चमेली चित्रविचित्र लतिकाओं से छाई हुई एक छोटी सी सुथरी कुटिया हैं द्वार पर एक नन्हा सा बालक और एक पाँच वर्ष की बालिका मिट्टी के घरौंदे बना–बना कर बिखेर रही है।....

माली के पसीने के बूँदें देखी है, परन्तु मिट्टी खोदने में क्या मजा है, यह विरले ही जानते होंगे। लू की लपटों से झुलस कर लताएँ रोती हैं तो माली रोता है

वल्लरी फूलती है तो –माली फूलता है
तरु फलते हैं तो माली सफल होता है
माली का जीवन वनस्पतिमय है

माली देखा है, परन्तु उसके जीवन को विरले ही जानते होंगे।

अनन्त सौन्दर्य

गुलाग की पत्तियों में सौन्दर्य है या पराग में ?उसका रंग और आकार सुन्दर है या उसकी सुगन्ध और मधु ?बाल्यकाल की छटा कुछ निराली ही है। सौन्दर्य जो क्षणिक है, अनन्त है, कुरूप कालिमा धारी कलाधर मनोहर है या प्रखर प्रकाश वाला प्रभाकर? पंक के हृदय में सौरभ छिपा है और मधु भी। काले मेघ ही नील नभपटल पर रंगबिरंगे चित्र रचते हैं और बिजली उनके मुस्कान की रेखा है।

सुदर्शन चक्र

तेरे अनन्त चक्र का त्याग अखंड ओर असीम है। सूर्य डूबता है और अंधकार छा जाता है। नही ंतो नील नभो वितान पर इतने जीवनमय जगमग तारे कहां से खिलते ?रात्रिसागर की अन्धेरी गहराई में शुक्र सुकुमारी संध्या को मार्ग दिखाता है और वह अपने प्रियतम चन्द्र के हृदय में प्रवेश कर जाती है। तेरे अनन्त चक्र का त्याग अखण्ड और असीम है।

संगीत रहस्य

सभ्यता के गर्भ से निकले हुये गान में हिम की ठण्डक है अथवा ज्वालामुखी की धधकती हुई ज्वाला। उसमें खिलते हुये मुकुल के हृदय से निकलती हुई मंद सुगन्ध की स्वाभाविकता कहाँ, पपीहे को मोहित करने वाली पिहु–पिहु का सा हर्ष कहाँ, नील गगन में तिरोहित होते हुये इन्द्रधनुष का सा अन्त कहाँ ?

मातृभूमि

प्यारी मातृभूमि, मैं तेरा हूँ तनमनधन सब तेरा है। तेरा जल मेरा रक्त है; तेरी मिट्टी मेरा शरीर है; तेरा समीर मेरा श्वास है। यदि मैं तेरे गुण गाऊँ तो आश्चर्य क्या है ?तू मेरी माता है; मेरे माता–पिता की माता है, उनके माता–पिता की माता थी और मेरे बाल–बच्चों की भी माता रहेगी।

मेरे पुरखा खान्ति से तेरी गोद में सोते हैं, मुझको भी एक दिन तेरी गोद में विश्राम मिलेगा और मेरी सन्तति भी तेरी गोद में स्थान पायेगी। हे अमर मातृभूमि, मैं किन शब्दो में तेरे गुण गाऊँ।

क्योंकि मैं तेरा हूँ।

अनहद नाद

द्वार पर टंगे हुये घंटे को बजा–बजा कर सब लोग मन्दिर में चले गये। बारक ने भी घंटे की ओर हाथ

उठाया पर टन् टन् टन् न सुनाई दी।

उसने फिर प्रयत्न किया, किन्तु उसका नन्हा हाथ वहाँ कैसे पहुँचता ?उसकी उत्कंठा पर किसी ने ध्यान न दिया।

उसने रोना आरम्भ किया, पर वहाँ कौन सुनता ? और जो सुनता था, उसका हृदय करुणा के आवेग से इतना भर गया था कि उसमें सहायता करने की शक्ति न रही।।

काशी

निर्मल, नील नभ का स्पर्श करती हुई गंगा पूछती है "समय के चक्र में इस अर्धचन्द्राकार नगरी का पहला स्थान है या मेरा ?यह मेरे पानी में सोते हुये रंगबिरंगे बादलों की छाया है अथवा मेरी नौकाओं के अगणित पालों की परछाई ?" और अपने पंखे की कोर से उद्वेलित लहरियों को छूते हुये विहंगम प्रश्न के एक–एक अक्षर को चंचुपुट में भरकर अनन्त में विलीन हो जाते हैं। काशी हमारे विस्मृत अतीत स्वप्नें की स्मृति है और भविष्य के स्वप्नों की प्रतिच्छाया।।

अस्तित्व

वह न तो दिखाई देता है और न छिपा ही रहता है। वह अन्धकार में प्रकाश की तरह छिपा हुआ और प्रकाश में अन्धकार की भाँति प्रकट है।

हम उसे अनेक नामों से पुकारते हैं, परन्तु उसका एक भी नाम नहीं। वह सुदूर–दूर से भी दूर, वह सिन्नकट–निकट से भी निकट है!

वह ऐसा कोई है अवश्य जिसे हम जानते हुये भी नहीं जानते और नहीं जानते हुये भी जानते हैं।

वह न तो छिपा रहता है और न दिखाई देता है।

आह्वान

आओ, आओ, लहरियों ! इस मेरे तीर पर आओ। तुम गंभीरता की इठलाती पुत्रियाँ हो, असीम तुम्हारा पिता है; अनेक होते हुये भी तुम एक हो।

इनकी दूसरी कृति थी प्रेमाश्रम उसमें से कुछ दर्शनीय उद्धरण इस प्रकार हैं–

प्रेमाश्रम

स्वर्गाश्रम में मेरी कुटी है और प्रेमाश्रम उसका नाम है। नीचे गंगा चन्द्र को लहरों के पलने में झुलाती है। ऊपर मण्एिाकुट शिखर चन्द्र का चुम्बन करता है। बीच में मेरी कुटी की कुसुम–कलिकायें खिलती हैं।

उषा

अहा, क्षितिज पर, जहाँ आकाश अपनी प्राणेश्वरी पृथ्वी से मिलता है यह लालिमा सी क्या दिखाई दे रही है, क्या यह लज्जिता पृथ्वी के कपोलों की लाली है या प्यारे और प्यारी के परस्पर चुम्बित अधरोष्ठों का विद्रुम विनिन्दक वर्ण है। या प्यारी के मांग का सिन्दूर है या प्यारे मतवाले नेत्रों की अरुणिमा है।

यह देखों प्रातःकालीन पवन तुम्हारी ओर से हमारे प्रश्न का उत्तर दे रही है। तुम तो स्वयं वियोगनी हो तुम तो स्वयं अपने प्राणवल्लभ अनिरुद्ध की खोज में बन बन भटक रही हो। हा! टबले! अब हमने तुम्हारी लज्जा का तुम्हारे अन्तर्दुख का कारण जाना। देखो न , तुम्हारा फूला–सा बदन कैसा कुम्हला गया है हा! उषे, क्या तुमने इसीलिये गेरुएँ वस्त्र पहन रखे हैं–क्या तुम इसीलिये प्रेमयोगिनी बनी फिरती हो, धन्य हो

हाँ, रोओ; पेट भर रोओ; उषे! उषे!! प्रेयसी! प्राण वल्लभी कहाँ हो ?बोलती क्यों नहीं ?अरे इस पापी को अकेला छोड़ कर कहाँ चली गई! रोओ, परन्तु उषा को न पाओगे; जब तक वियोग की रात्रि का विरह के समुद्र को पार करके, जीवन के तंतु को तोड़कर, प्रेम–प्रदीप–प्रकाशित पुण्यलोक सतयलोक को न जाओगे! जहाँ वियोगिनी सति उषा प्रातःकालीन पवन विड़ोलित, जन्हु पर्यन्त पानी में खड़ी तुम्हारा नाम जप रही है।

मेरी दुखिया आँखों ने भी हार कर अपने पलक कपाट बंद कर लिये थे। वे स्वप्न में भी भावी चिन्ता के कारण बहुत रोयीं। अभी पूर्व दिशा पीली भी नहीं पड़ने पाई थी कि किसी ने आकर मुझे जगाया। 'उठो पाटल, भगिनी ने एकमात्र सहोदरा ने तुम्हें बुला भेजा है। यह सुनकर मेरा हृदय हिल गया। मैंने किसी की ओर देखा तक नहीं; परन्तु मुझे विश्वास है कि उस समय सप्त–ऋषि दुखभरी दृष्टि से मेरी ओर देखते हुये मानसरोवर की ओर जा रहे थे। अन्यान्य तारामण्डल के निवासी भी मेरी इस दयनीय दशा पर दुःख प्रकट कर रहे थे।

यह उषा की जो विवेचना है वह ऋग्वेद के उषा सूक्त का ही भाषा में गायन हो ऐसा प्रतीत होता है।

प्रतीक्षा

दोमास की दीर्घ प्रतीक्षा के पश्चात् एक दिन उनका पत्र मिला लिखा था– तुम बड़े निष्ठुर हो मुझसे मिलने नहीं आये आये। मुझे तो अन्त में आना ही पड़ता है। अपने प्यारे का प्रेमपत्र पाकर मुझे परम प्रसन्नता हुई। जिसको

हम प्यार करते हैं उसके सब पत्र प्रेमपत्रोंही की कोटि में आते हैं चाहें उनमें गलियाँ ही क्यों न हो ? प्रेमी के मुख से गालियाँ भी तो मीठी लगती हैं। सचमुच, मुझे उसके मीठे, 'निष्ठुर' शब्द कमें सिकंजी का स्वाद आया।। अलंकारों के उपासक कहेंगे कि अत्युक्ति है, किन्तु उनको ध्यान रहे कि प्रेम–साम्राज्य की भाषा में अत्युक्ति अलंका है ही नहीं नैयायिक पूछेंगे प्रमाण 'प्रत्यक्षे किं प्रमाणं'। वे अपने हृदय–मन्दिर में प्रेम–प्रदीप जला कर देख लें।

इस प्रकार ठाकुर रामसिंह का हिन्दी साहित्य का यह अभूतपूर्व अवदान था। जिसे हिन्दी साहित्य में गद्यकाव्य के प्रणेता के रूप में देखा जाना चाहिये।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *प्रेमाश्रम मूल पाण्डुलिपि, सूर्यकरण पारीक पुस्तकागार, बीकानेर संग्रह म.मा.पु.प्र. शोध केन्द्र, दुर्ग, जोधपुर*
2. *ज्योत्सना, मूल पाण्डुलिपि, सूर्यकरण पारीक पुस्तकागार, बीकानेर संग्रह म.मा.पु.प्र. शोध केन्द्र, दुर्ग, जोधपुर*
3. *राजस्थान भारती, त्रैमासिक संयुक्तांक भाग 22, अंक 2 व 3, जनवरी 2001 से जून 2001, प्रकाशक शार्दुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्युट, बीकानेर*
4. *राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति के उन्नायक ठा. रामसिंह तंवर, संपादक डॉ. महेन्द्रसिंह नगर, म.मा.पु. प्रकाश शोध केन्द्र, दुर्ग, जोधपुर*
5. *मित्रों के पत्र, पाटल प्रकाशन सूरसागर, पारीक हाऊस बीकानेर, 2008, संपादक ओंकारश्री बीकानेर*
6. *राजस्थानी पत्रिका 'माणक', अंक जून 1982,*
7. *ठाकुर रामसिंहजी का अध्यक्षीय उद्‌बोधन सभापति अखिल भारतीय राजस्थानी साहित्य सम्मेलन, प्रथम अधिवेशन दीनाजपुर वि.सं. 2001, प्रकाशक प्रधानमंत्री स्वागत कारिणी समिति, दीनाजपुर*

श्रीमद्भगवद् गीता का बौद्ध धर्म पर प्रभाव

shodhshree@gmail.com

नरेश चौधरी
शोधार्थी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

शोध सारांश

आज से लगभग 5200 वर्ष पहले श्रीकृष्ण ने शिष्य अर्जुन को कुरुक्षेत्र में जो उपदेश दिया था उसी का संग्रहित रुप है – श्रीमद्भगवद्गीता गीता पर मनुष्य जाति का अधिकार है। इसे हिन्दू धर्म से जोड़कर देखा जाता हैं जो युक्ति संगत नहीं है। सबसे प्राचीन ग्रंथ होने के कारण इस ग्रंथ का प्रभाव विश्व के लगभग सभी धर्मो पर पड़ा है। धर्म गुरुओं व धर्मग्रन्थों पर भगवद् गीता का प्रभाव स्पष्ट ही दिखाई पड़ता है।

संकेताक्षर : *बौद्ध धर्म, श्रीमद्भगवतगीता, श्रीकृष्ण, अर्जुन, हिन्दू धर्म।*

बौद्ध धर्म भारत की समण परम्परा में निकला धर्म और महान दर्शन है गौतम बुद्ध द्वारा बौद्ध धर्म की स्थापना हुई है। महात्मा बुद्ध के प्रमुख सिद्धांत जो अष्टागिंक मार्ग के नाम से जाने जाते है इन पर भगवद्गीता का प्रभाव दिखाई पड़ता है। श्रीमद् भगवद् गीता में पांच मूल तत्वों को स्पष्ट किया गया है– ईश्वरीय ज्ञान, जीवों का स्वरुप, प्रकृति, काल और कर्म। इन्हीं तत्वों को महात्मा बुद्ध द्वारा अपने प्रवचनों के द्वारा शिष्यों को बताया गया है।

563 ई. पू. को शाक्यगणराज्य के राजा के गृह में जन्मे गौतम बुद्ध ने 29 वर्ष की अवस्था में वैभव त्यागकर महाभिनिष्क्रमण का निश्चय किया और 35 वर्ष की अवस्था में अपनी प्रज्ञा के प्रकर्ष से उन्होंने चार आर्य सत्यों की प्रत्यक्ष अनुभूति की। सारनाथ से कौण्डिल्य आदि पंचभिक्षुओं के सम्मुख अपना प्रथम उपदेश देकर इन्होंने धर्मचक्र प्रवर्तक किया। बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध के कंठ से जो सरिता स्त्रावित हुई थी, वह मानव के हृदय को अमृत एवं आनन्द से अनेक शताब्दियों तक सींचती रही है।

भारतीय परम्परा में तो बुद्ध को भगवान विष्णु का नवम् अवतार के रुप में देखा जाता है। दूसरी और महायान परम्परा बुद्ध को सर्वकालिक ईश्वर मानते हुए विष्णु, इन्द्रादि देवता की तरह उन्हें भी अन्य जीवों की भांति सुख दुख के विषयान्तर्गत मानती है।

बौद्ध धर्म के संस्थापक बुद्ध ने ऐसी आचार शिक्षा का उपदेश दिया है जो सब पुण्यों में संयुक्त है तथा सब पापों का निवारण करने वाली कला तथा चित्त शोधक है। बौद्ध धर्म की शिक्षा का उद्देश्य आध्यात्मक शास्त्र के रहस्यों को सुलझाना नहीं था। प्रत्युत सामान्य व्यक्ति की समस्याओं एवं कष्टों के निवारण हेतु सरल आचार मार्ग का निर्देश देना था। बौद्ध धर्म के अनुसार सदाचार से इहलौकिक और पारलौकिक अभ्युदय संभव है। हिंदू धर्म में वेदों का जो स्थान है बौद्ध धर्म में वही स्थान पिटकों का है। भगवान बुद्ध के उपदेशों को उनके शिष्यों ने पहले कंठस्थ किया फिर लिख लिया। वे उन्हें पेटियों में रखते थे। इसी से पिटक नाम पड़ा। पिटक तीन है 1. विनय पिटक 2. सुत्त पिटक 3. अभिधम्म पिटक।

बुद्ध ने निर्वाण के समय भिक्षुओं को बोधिपक्षीय धर्म का उपदेश किया। इसका उद्देश्य था साधना के द्वारा निर्वाण की प्राप्ति करना। यह मध्यम मार्ग द्वारा मुक्ति की प्राप्ति पर बल देते हैं। जिसमें अत्यन्त शारीरिक सुख या दुख का कोई स्थान न हो। इन शुद्ध आचार तत्वों के पालन को मज्झिम मग, मध्यम मार्ग कहा जाता है। इस बोधिपक्षीय धर्म को उन्होंने सात भागों में विभक्त कर कुल सैतींस धर्मो का उपदेश किया। इसका उद्देश्य या मुक्ति प्राप्त करना।

बुद्ध स्वयं पुरातन वैदिक धर्म के अनुयायी थे उनकी उपाधियों में से एक उपाधि है अर्क बंधु जिसका अर्थ होता है–सूर्य

का मित्र। बौद्ध धर्म यद्यपि सुधारवादी धर्म था किन्तु वह भारतीय परम्पराओं से मुक्त न हो सका। बौद्ध पर हिन्दू पौराणिकता का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक रहा है।

महायान सम्प्रदाय गीता से अवश्य रुप से प्रभावित हुआ है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है– ''मैं सब लोगों का पिता और पितामह हूँ। मैं यद्यपि अज और अव्यय हूँ तथापि धर्मरक्षणार्थ समय पर अवतार लेता हूँ। इस प्रकार गीता में श्रीकृष्ण ने जो कर्मयोग तथा भक्तियोग का समन्वय स्थापित किया है वहीं बातें महायान धर्म में पायी जाती है।

बौद्ध ग्रंथ मिलिन्दपन्हो दार्शनिक और धार्मिक दृष्टि से तो एक महाग्रन्थ है ही। साहित्यिक और ऐतिहासिक महत्व भी उसका कम नहीं है। मिलिन्दपन्हो की विचारात्मक गद्य बद्ध शैली महत्वपूर्ण है, इससे भारत में अनेक विद्वानों ने इसका नाम बुद्ध गीता भी रखा है।

महाभारत कालीन वेदव्यास के डेढ़ हजार वर्ष बाद भगवान बुद्ध का जन्म हुआ है और उनके भी चार सौ वर्ष के पश्चात् बौद्धों में सम्प्रदाय विभाजन हुआ, जिसका काल निर्धारण बौद्ध संगतियों तथा देश विदेश के बौद्ध विवरणों से प्रमाणित है।

गीता और बौद्ध धर्म या बौद्ध ग्रंथ की साधारण समानता तथा विभिन्नता पर भी यहाँ विचार करना आवश्यक हैं। गीता धर्म की विशेषता यह है कि गीता में वर्णित स्थितप्रज्ञ प्रवृत्ति मार्गवलंबी रहता है। परंतु इस विशेष गुण को थोड़ी देर के लिए अलग रखते है और उक्त पुरुष के केवल मानसिक और नैतिक गुणों का ही विचार करें, तो गीता में स्थित प्रज्ञ के, ब्रह्मनिष्ठ पुरुष के, और भक्तियोगी पुरुष के जो लक्षण बतलाये है और उनमें और निर्वाणपद के अधिकारी अर्हतों के अर्थात् पूर्णावस्था को पहुंचे हुए बौद्ध भिक्षुओं के जो लक्षण भिन्न भिन्न बौद्ध ग्रन्थों में दिए हुए है, उनमें विलक्षण क्षमता दिख पड़ती है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि उपनिषद, ब्रह्मसूत्र, मनुस्मृति, वैदिक ग्रंथ और भगवद्गीता बुद्ध की उपेक्षा प्राचीन हैं, इसलिए इनके जो विचार तथा श्लोक बौद्ध ग्रंथों में पाये जाते है उनके विषय में विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि उन्हें बौद्ध ग्रंथकारों ने उपर्युक्त वैदिक ग्रंथों से ही लिया है। महायान बौद्ध धर्म की दो रचनाएँ है– महायान, शुद्धोर्त्पाज तथा सद्धर्म पुंडरिका। ये दोनों धर्म ग्रंथ गीता की गहण ऋणी है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है–

सर्व धर्म परित्यज मामेकं शरणं ब्रज
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षपिष्यामि मा शुचः।।

अर्थात् सभी धर्मों को छोड़कर तुम केवल मेरी शरण में आओ, मैं सभी पापों से तुम्हें मुक्त कर दूंगा। यही बात महात्मा बुद्ध ने डंके की चोट पर कहीं– बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्म शरणं गच्छामि। तुम बुद्ध धर्म और संघ का आश्रय ग्रहण करो अपने श्रम से अपने तथा औरों के दुःख का नाश करो। 'आत्मा दीपो भव'।

बौद्ध धर्म में प्रतीत्यसमुत्पाद का अधिकरण बुनियादी मूल्य माना जाता है। इस प्रतीत्यसमुत्पाद से तथागत ने कार्यकरण के संबंध की बात बताई है। बुद्धत्व एवं मृत्यु के कारण बुद्ध ने गृहत्याग किया था इसलिए इस कार्यकरण परंपरा का आरंभ वृद्धत्व और मृत्यु से ही किया है। वृदत्व एवं मृत्यु का कारण जन्म है और बाद में विभिन्न बारह संबंधों को समादृत कर अंत में ऐसा कहा है कि इन सब बातों का कारण अविद्या है। ज्ञान से ऐसी आपदा का नाश होता है और इस ज्ञान का मतलब चार आर्य सत्य। अब इस कारण परंपरा के साथ भगवद्गीता के 2/62–63 श्लोकों की तुलना करें तब उसमें छुपा हुआ साम्य पल भर में समझा जा सकता है। गीता के अनुसार –

ध्यायतो विषयान्पुसः सदस्तेपूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोथेऽभिजायते।। (62)

विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है। आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है। कामना पूर्ति में व्यवधान आने से क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः
स्मृतिभ्रशाह बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणशयति।। (63)

क्रोध से विशेष मूढ़ता अर्थात् अविवेक उत्पन्न होता है। नित्य–अनित्य वस्तु का विचार नहीं रह जाता। अविवेक से स्मरण शक्ति भ्रमित हो जाती है।

मनुष्य कभी भी इच्छाओं से शत प्रतिशत मुक्त नहीं हो पाता है। कर्म करने की प्रेरणा भी इच्छा से प्राप्त होती है। इच्छा के उद्भव के बिना मनुष्य कर्म नहीं करता है। स्वाभाविक है कि कर्म करने से फल तो प्राप्त होगा ही। ऐसा फल मनोवांछित भी होगा और इससे विपरीत भी। तथागत बुद्ध ऐसे झंझट से मुक्त होने के लिए इच्छा को मूल से नष्ट करने की प्रेरणा देते है। कृष्ण गीता में इसी बात का हल अनासक्ति भाव से कर्म करने में बताते है। इच्छा को शांत करने के लिए कर्म तो करना ही पड़ेगा। श्रीकृष्ण ने बताया है कि सभी कर्मो को अनासक्त भाव से करते रहना चाहिए।

केवल मात्र ईश्वरीय मान्यता का प्रश्न छोड़ दिया जाय तो गीता ग्रंथ भी बौद्ध धर्म का धार्मिक ग्रंथ का मान प्राप्त करने के लायक होता है। बुद्ध ने ईश्वर को नहीं माना। मान लिया तो सारी खोज बंद हो जाती है। बुद्ध

ईश्वर को मानते नहीं है। बुद्ध ईश्वर को जानते है। कारण यह है कि ईश्वर ज्ञान का विषय नहीं है। अनुभव का विषय भी नहीं है। ईश्वर अनुभव हैं। गीता भी करीब यही बात कहती है। गीता के अनुसार –

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्न मन्यन्ते मामबुद्धयः
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।। (7/24)

यद्यपि जब देवताओं के नाम पर देवता नाम की कोई वस्तु ही नहीं है, जो फल मिलता है वह भी नश्वर है, फिर भी सब लोग मेरा भजन नहीं करते, क्योंकि बुद्धिहीन पुरुष मेरे सर्वोत्तम अविनाशी और परमप्रभाव को भली प्रकार नहीं जानते, इसलिये वे मुझ अव्यक्त पुरुष को व्यक्तिभाव को प्राप्त हुआ मानते है।

अतः बुद्ध के द्वारा प्रतिपादित ज्ञान योग भी वही है जो कृष्ण ने कहा। अलग हो भी नहीं सकता क्योंकि ज्ञान तो वही होगा, जो है। ना भावो विद्यते सतः इति।

परार्थपरता, स्वार्थत्याग और निष्काम कर्म का उपदेश करने में गीता की बौद्ध मत से एकता है। दोनों में आन्तरिक जीवन की शुद्धता पर जोर दिया है और यज्ञ भाग की निन्दा की है। बौद्ध धर्म वासनाओं के नाश पर जोर देता है और गीता ईश्वर की सेवा के भाव से अपने कर्तव्य का उपदेश देती है।

भगवान बुद्ध ने अनासक्ति योग से बताया है कि यदि हम केवल कुशल कर्म करते जाय और उनमें आसक्त हो जाय तो उसमें अकुशल के उत्पन्न होने की संभावना नहीं रहती है। कुशल विचार में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए, निरपेक्षता से कुशल कर्म करते रहना चाहिए।

न बुद्धिभेदं जनमेदज्ञानां क्रर्मसंगिनाम्
जोषयेत् सर्वकर्माणि विद्धान्युक्तः समाचरन्

अर्थात् ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि कर्मो से आसक्ति वाले अज्ञानियों की बुद्धि में भ्रम उत्पन्न न करे किन्तु स्वयं युक्त होकर अर्थात् सब कर्मो को भली भांति करते हुए दूसरों से भी उन्हें कराये।

यदि लक्षण के आधार पर कृष्ण और बुद्ध के विश्व मानव पर प्रभाव की तुलनात्मक समीक्षा की जाये तो बौद्ध दर्शन एवं गीता दर्शन का पारस्परिक सम्बन्ध तथा उनका तुलनात्मक महत्व आसानी से समझा जा सकता है। कृष्ण और बुद्ध दोनों ही विश्व शास्ता है। भगवान कृष्ण जहाँ अर्जुन के उपलक्षण से मानवता के सारथी बने वही भगवान बुद्ध भी संयमी पुरुषों के अद्वितीय सारथी है।

बौद्ध दर्शन मुख्यतया बोध मार्ग है और बोध के द्वारा ही वह दुख विमुक्ति की शिक्षा देता है। गीता में भी ज्ञान की महिमा चरम मानवीय पुरुषार्थ के रुप में सुरक्षित है। बौद्ध दर्शन का प्राण है मध्यम मार्ग। गीता में भी मध्यम मार्ग साधना के एक सामान्य मार्ग के रुप में प्रशासित है। भोगवाद और आत्म पीड़ा की अतियां जिस प्रकार बौद्ध दर्शन से अप्रशंसनीय है उसी प्रकार उन्हें गीता में भी श्रेय का मार्ग नहीं माना गया है।

गीता जिस अनासक्ति का उपदेश देती है तथा उसके द्वारा कर्म के अर्जित फलों के बंधन से हमें बचाती है, उसी पर बुद्ध ने भी प्रकाश डालते हुए कहा था ये रुप,, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान आत्मस्वरुप नहीं है और उनके बंधन में आकर हमें आत्मबुद्धि उनमें अर्पित नहीं करनी चाहिए।

बौद्ध दर्शन व गीता दोनों का मुख्य उद्देश्य मोक्ष के सिद्धांतों का प्रतिपादन करना नहीं अपितु अनित्य और सुख लोक में से होकर मनुष्य को शान्ति का एक मार्ग दिखा देना मात्र है और इस अर्थ में दोनों समान है।

भगवान बुद्ध ने संसार में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समता प्रस्थापित की। हमारे समाज में जातीयता, सामाजिक विषमता की जड़ है। जातीयता की नींव है चातुर्वर्ण्य। यद्यपि गीता में श्रीकृष्ण कहते है –

चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं
गुणकर्म विभागशः (4/13)

लोग तो गुण कर्म को छोड़कर ही चातुर्वर्ण्य मानते है। यही सब सामाजिक अनर्थों की जड़ है। भगवान बुद्ध के अनुसार जन्म से कोई नीच नहीं होता, न जन्म से कोई ब्राह्मण होता है। कर्म से ही मनुष्य नीच होता है कर्म से ही ब्राह्मण।

गीता और बौद्ध आचारदर्शन भी वैयक्ति दृष्टि से आचरण के आन्तरिक पक्ष पर यथेष्ट बल देते है और लोक व्यवहार का आचरण आवश्यक मानते है। गीता में प्रतिपादित स्वधर्म, वर्णधर्म और लोक संग्रह के सिद्धांत इसी का समर्थन करते है।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत
कुर्याद्विद्वास्तथासक्तकिषुर्लोकसडंग्रहम्।। (3/25)

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *सोमेन्द्र सिंह, जीवन का आधार है बौद्ध धर्म की आचार शिक्षा, उत्कर्ष प्रकाशन, मेरठ, 2018, पृ. 7*
2. *विजय कुमार सिंह, बौद्ध धर्म और तिब्बती परम्पराएं, संकल्प पब्लिकेशन, छत्तीसगढ़, 2019, पृ. 2*
3. *सं. अनीत गौड़, मैं बुद्ध बोल रहा हूं, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ 105*
4. *गणेश प्रसाद बुधोलिया, शास्त्री–आदिकाव्य और बौद्ध सान्ध्यि, एजुक्रीयेशन पब्लिशिंग, छत्तीसगढ़, 2010,*

पृ. 24

5. श्री स्वामी अड़गड़ानन्द जी, शंका समाधान, श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानन्द जी आश्रम ट्रस्ट, मुम्बई, 1994, पृ. 393
6. लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, गीता रहस्य एक कर्मयोगशास्त्र, अखिला भारतीय, दिल्ली, 2010, पृ. 570
7. प्रो. जी.के. वार्ष्णेय, भगवद् गीता के अनमोल मोती, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 2013, पृ. 19
8. डॉ. नन्द कुमार राय, सत्य के खोजी, महात्मा बुद्ध, शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ..60
9. दिनकर जोशी, प्रश्नों पर पूर्ण विराम, साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 19
10. श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुवाह, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, मुम्बई, 1990, पृ. 115
11. दिनकर जोशी, प्रशनों का पूर्ण विराम, साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
12. एम. नाडकर्णी, हिन्दू धर्म (गांधी के दृष्टिकोण से), 2010, एनी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, पृ. 152
13. श्री प्रकाश गुप्ता, स्नान गीता सरोवर, पैट्रीक बुक पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2008, पृ. 33
14. जदुनाथ सिन्हा, भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स, दिल्ली, 1960, पृ. 249
15. धर्मानन्द कोसम्बी, भगवान बुद्ध जीवन और दर्शन, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008, पृ. 147

संत सुन्दरदास के काव्य में राम की अवधारणा

डॉ कृष्णा मीणा
सहायक आचार्य, गार्गी कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय), नई दिल्ली

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

रचनाकार अपनी पूर्ण चेतना में न केवल युग जीता है बल्कि अपना अतीत और भविष्य जीता है, इसीलिए उसकी रचनाधर्मिता का मूल्य अक्षुण्ण रहता है। संत सुन्दरदास की वाणियों ने जो अलख जगाया वह हमारी भागती–दौड़ती जिन्दगी के लिए उतना ही मूल्यवान है, जितना अपने युगीन संदर्भों में था। संत सुन्दरदास ने भक्ति के मूल–तत्व 'राम' स्मरण पर जोर देते हुए उसे परिष्कृत रूप प्रदान कर सहज और स्वाभाविक बना दिया ताकि जनसाधारण भावपूर्ण हृदय से अपना सके। उन्होंने भक्ति और कर्म के विकारों से तंग आकर, धर्म से विमुख होती हुयी जनता को राम की और उन्मुख किया।

संकेताक्षर : *संत सुन्दरदास, राम की अवधारणा, अद्वैत ज्ञान, राम की निष्कलंकता, नाम–स्मरण।*

मानवीय ज्ञान को समृद्ध करने में प्राचीनकाल से ही भारतीय दार्शनिकों का योगदान अतुलनीय रहा। इनके ज्ञान का लक्ष्य मानव के भौतिक जीवन को समृद्ध करना ही नहीं था बल्कि उससे परे भी कोई समृद्धि होती है इसका बोध कराया इसलिए हमारे देश में बड़े–बड़े राजा–महाराजा भी दार्शनिकों को भी नमन करते थे और शास्त्रार्थ द्वारा दार्शनिक विचारों को सत्यता तक पहुँचाने में रूचि लेते थे। उपनिषदों में ब्रह्म के दो रूपों का वर्णन किया गया है–निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म। संतों को निर्गुण–सगुण ब्रह्म का ज्ञान परवर्ती ग्रंथों की विरासत से मिला जिसको उन्होंने जनसाधारण की बोली में उकेरा।

संत सुन्दरदास का स्थान कबीर और दादू के समकक्ष लिया जाता है। निर्गुण काव्यधारा के सर्वाधिक शिक्षित संत सुन्दरदास अन्य संतों से इस अर्थ में भिन्न है कि इन्होंने अन्य की भाँति ऊटपटाँग बातें नहीं की। संत सुन्दरदास ने जो दार्शनिक विवेचन किया, सभी शास्त्र–सम्मत है। शास्त्रों में पारंगत होने के कारण सुन्दरदास के दार्शनिक विचार अतुलनीय है। यह सत्य है कि अनुभव की जितनी गंभीरता कबीर और दादू में थी, उतनी इनमें नहीं आयी लेकिन दार्शनिक और साहित्यिक दृष्टिकोण से देखने पर इनका स्थान संत–साहित्य में सर्वश्रेष्ठ जान पड़ता है।

भक्तिकाल के संतों ने निर्गुण ब्रह्म को कोई विशेष नाम नहीं दिया। उन्होंने अपने समय के सभी धर्म–सम्प्रदायों में प्रयुक्त होने वाले ईश्वर–वाचक शब्दों से निर्गुण–ब्रह्म का वर्णन किया। अधिकतर संतों ने राम–नाम को अधिक महत्व दिया। राम शब्द में 'र' अग्नि का, 'अ' सूर्य का तथा 'म'–चन्द्र का प्रतीक माना जा सकता है। राम सूर्य साधना से उपलब्ध होने वाले ज्योतिस्वरूपी ब्रह्म का प्रतीक हैं। शंकराचार्य द्वारा पोषित अद्वैत–दर्शन में एकमात्र ब्रह्म को ही परम तत्व माना गया है–''ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः।" (अर्थात् ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है तथा जीव (आत्मा) ब्रह्म ही है, अन्य नहीं है)। सुन्दरदास जी ने अपने शास्त्रार्थ ज्ञान का उल्लेख कर राम स्वरूपी ब्रह्म की अवधारणा को निरूपित किया है।

'सुन्दर यहै निरूपियौ बहु बिधि करि वेदांत।
ब्रह्म बिना दूजा नहीं सबकैं यह सिद्धांत।।'

सुन्दरदास की रचनाओं में अद्वैत दर्शन के माध्यम से राम (ब्रह्म) को निरूपित करने का प्रयास किया। उनका यह प्रयास सुन्दर–ग्रंथावली के 'अथ अद्वैत ज्ञान कौ अंग' के 25 छंद में परिलक्षित होता है। यथा–

'सुन्दर बिचारत यौं उपज्यों अद्वैत ज्ञान,
आपु कौं अखंड ब्रह्म एक पहिचांन्यौ हैं।'

संत सुन्दरदास जी ने 'अध रामाष्टक' रचना में 'राम' के ब्रह्म रुप को निरूपित किया है–

'पूरि दशहू दिशा सर्ब्ब मैं आपजी।
स्तुति हि कौ करि सकै पुन्य नहिं पापजी।।
दास सुन्दर कहै देहु विश्रामजी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी ।।'

एक ही अखंडित राम (ब्रह्म) को परिभाषित करते हुए सुन्दरदास जी वेद–पुराणों का उद्धरण लेते हुए कहते हैं–

'एक अखंडित ब्रह्म बिराजत
नाम जुदौ करि बिश्व कहावै।
एकई ग्रन्थ पुरान बषानत
एकई दत्त बसिस्ट सुनावै।।
एकई अर्जुन उद्धव सौं कहि
कृष्ण कृपा करिकैं समुझावै।
सुन्दर द्वैत कछु मति जानहुं
एकई ब्यापक वेद बतावै।।'

संत सुन्दरदास का राम निराकार होते हुए भी नित्यस्वरूप, अचल और वर्णनातीत है। वह आदि, अंत एवं मध्य रहित है।

संत सुन्दरदास ने अपने विचारों को इस तरह से अभिव्यक्त किया–

'निराकार है नित्य स्वरूपं,
अचल अभेद छाहं नहिं धूपं।
अव्यक्त पुरुष अगम अपारा,
कैसे कै करिये निद्धारा।।
आदि अतं कछु जाइ न मानी,
मध्य चरित्र सु अकथ कहानी।'

सुन्दरदास जी ने साखी ग्रंथ के 'अथ अद्वैत ज्ञान को अंग' भाग में जगत को राम (ब्रह्म) रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार जैसे स्वर्ण के आभूषण, स्वर्ण ही होते हैं, वैसे ही ब्रह्म की अभिव्यक्ति रूप जगत भी ब्रह्म सत्ता का रूपांतरण है।

'सुन्दर हूं नहिं और कछु तूं कछु और न हैंइ।
जगत कहा कछु और है एक अखंडित सैंइ।।
सुन्दर हौं नहिं तूं नहीं जगत नही ब्रह्माण्ड।
हौं पुनि तूं पुनि जगत पुनि ब्यापक ब्रह्म अखण्ड।।'

संत सुन्दरदास का राम (ब्रह्म) सगुण एवं निर्गुण की सीमा से परे है। संत सुन्दरदास के अनुसार– ब्रह्म के द्वारा संसार की प्रत्येक वस्तु संचालित होती है, जैसे सागर में लहरों को देखकर अज्ञानी मानव उन्हें सागर से भिन्न मानता है, एक ही शरीर के अनेक अंग शरीर से पृथक देखता है, शिला पर अंकित चित्र शिला से भिन्न देखता होता है, उसी प्रकार ब्रह्म के माया के आवरण से आवृत्त अज्ञानी मानव भी अपनी बुद्धि से विभिन्न रूपों में ग्रहण करता है, जो सत्य के विरुद्ध प्रतीत होता है।

'एक शरीर में अंग भये बहु
एक धरा परि धाम अनेका।
एक शिला महिं कोरि किये
सब चित्र बनाइ धरे ठिक ठेका।।
एक समुद्र तरंग अनेकनि केसैं
क कीजिए भिन्न बिबेका ।
दैत कछू नहिं देषिये सुन्दर
ब्रह्म अखंडित एक कौ एक।।'

संत सुन्दरदास ने राम को संसार में सर्वत्र विद्यमान बताया। सुन्दरदास जी राम के स्वरूप को निरूपित करते हुए कहते हैं कि राम तटस्थ, निर्मल, निर्गुण, सर्वदा रहने वाला, निरंजन और अखंडित है। समस्त विश्व उस दिव्य–ज्योति में समाहित है। जगत और परमात्मा में कोई भेद नहीं है। दोनों एक ही हैं–

'सुन्दर सुन्दर ब्यापि रह्यौ सब सुन्दर ही महिं सुन्दर सो है।'

संत सुन्दरदास के अनुसार, ब्रह्म–रूपी प्रकाश ऊपर–नीचे, बाहर–भीतर, स्थूल–सूक्ष्म जगत में सर्वत्र दृश्यमान है, जे रूपांतरित होकर आभासित होता रहता है। स्वयं ब्रह्म ही ब्रह्म का किया हुआ तमाशा (जगत–दृश्य) देख रहे हैं–

'ब्रह्म निरीह निरामय निर्गुन
नित्य निरंजन और न भासै।
ब्रह्म अखंडित है अध अरध
बाहिर भीतरि ब्रह्म प्रकासै।।
ब्रह्महि सूक्षम थूल जहां लग
ब्रह्महि साहिब ब्रह्महि दासै।
सुन्दर और कछू मति जानहुं
ब्रह्महि देषत ब्रह्म तमासै।।'

संत सुन्दरदास का राम (ब्रह्म) रूप बंधन, मुक्ति, मौनत्व, वाणी, प्रसन्नता, रूष्ठता आदि मनेभावे से परे हैं।

'अडोलं अतोलं अमोलं अमानं।
अदेहं अछेहं अनेहं निधानं।।
अजापं अथापं अपापं अतापं।

नमस्ते नमस्ते नमस्ते अमापं।।
न शेषं अशेषं न रेषं न रूपं।
नमस्ते नमस्ते नमस्ते अनूपं।।
न छाया न माया न देशो न कालो।
न जाग्रन्न स्वप्तं न बृद्धो न बालो।
न ह्रस्वं न दीर्घ न रम्यं अरम्यं।
नमस्ते नमस्ते नमस्ते अगम्यं।।
न बद्धं न मुक्त न मौनं न वक्तुं ।
न धूम्रं न तेजो न यामी न नक्तं।।
न युक्तं अयुक्तं न रक्तं विरक्तं।
नमस्ते नमस्ते नमस्ते अशक्तं।।
न रूष्टं न तुष्टं न इष्टं अनिष्टं।
न ज्येष्ठं कनिष्ठं न मिष्ठं अमिष्ठं।।
न वक्त्रं न ध्राणं न कर्ण न अक्षं।
न हस्तं न पादं न सीसं न लक्षं।।'

संत–वाणी सृष्टि (जगत) को राम (ब्रह्म) सत्ता की अभिव्यक्ति मानती है। सुन्दरदास जी के अनुसार ब्रह्म और जीव–सृष्टि में व्याप्य–व्यापक का संबंध है। ब्रह्म न तो व्याप्य है और न ही व्यापक। जीव–सृष्टि ही व्याप्य और व्यापक दोनों है।

'ब्यापिन ब्यापिक ब्यापि हु ब्यापक
आतम एक अखंडित जांनौ।
ज्यौं पृथवी नहिं ब्यापिन ब्यापक
भाजन ब्यापि हु ब्यापक मांनौ।।
कंचन ब्यापि न ब्यापक
दीसत भूषन ब्यापि हु ब्यापक ठांनौ।
सुन्दर कारण ब्यापि न ब्यापक
कारय ब्यापि हु ब्यापक आंनौ।।'

सुन्दरदास जी ने ब्रह्म और माया के संबंध को शिव और शक्ति तथा पुरुष और प्रकृति द्वारा समझाने का प्रयास किया है। उनके अनुसार ब्रह्म एक ही है, परंतु लीला–वैचियिं दिखाने के लिए कुछ समय के लिए दो रूप धारण कर लेता है।

'ब्रह्म अरू माया जैसे शिव अरू शक्ति पुनि,
पुरुष प्रकृति दोउ करि कैं सुनाये हैं।
पति अरू पतनी ईश्वर अरू ईश्वरी ऊ,
नारायण लक्ष्मी द्वै बचन कहाये हैं।।
जैसें कोऊ अर्द्ध नारी नाटेश्वर रूप धरै,
एक बीज ही तें दोइ दालि नाम पाये हैं।
तैसैंहि सुन्दर बस्तु ज्यौं है त्यौं हि एक रस,
उभय प्रकार होइ आपु ही दिषाये हैं।।'

राम (ब्रह्म) और जगत की स्थिति स्पष्ट करते हुए संत सुन्दरदास के अनुसार, इस जगत में ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है। जगत कैं एकमात्र ब्रह्म मानकर मानव अपने चित्त को अन्य भ्रमों से दूर करता है।

'ब्रह्महि मांहि बिराजत ब्रह्महिं
ब्रह्म बिना जिनि औरहि जानौ।'
'सुन्दर ब्रह्म बिना कछु नांहिन,
ब्रह्महि जानि सबै भ्रम भानौं।।'

संत सुन्दरदास ने राम (ब्रह्म) और जगत की एकता को दृष्टांतों द्वारा प्रतिपादित किया। जैसे दही के बिलाने पर डली रूप में निकले घी को मक्खन कहते हैं, उसी को गर्म होने पर पिघल जाने पर 'घृत' कहने लगते हैं, ठीक उसी प्रकार ब्रह्म ही जगत है तथा जगत ही ब्रह्म है।

'सुन्दर घृतई बन्धि गयौ धर्‍यौ डरा सौ नाम।
ऐसैं रामहि जगत है जगत देषियै राम।।'

सुन्दरदास जी के अनुसार–जैसे समुद्र का जल वायु के कारण जमकर सैंधा नमक बन जाता है, वैसे ही राम (ब्रह्म) ही जगत के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।

'सुन्दर नीर समद्र कौ, जमि करि हुवौ लौंन।
तैसैं यह सब ब्रह्म है दूजा कहिये कौंन।।'
'जगत जगत सब को कहै, जगत कहौ किंहिं ठौर।
सुन्दर यह तो ब्रह्म है नाम धर्‍यौ फिरि और।।'

संत सुन्दरदास के अनुसार मृत्तिका से निर्मित पात्र मृत्तिका से भिन्न प्रतीत होते हैं लेकिन ज्ञानी के लिए भेद–रहित है। उसी प्रकार से जल और तरंग, ईख एवं माधुर्य, दुग्ध एवं घृत में कोई तत्व भेद नहीं है। यह निर्गुण ब्रह्म संसार की प्रत्येक वस्तु में समाया हुआ है।

'तोही मैं जगत यह तूं ही है जगत मांहि,
तौ मैं अरू जगत मैं भिन्नता कहाँ रही।
भूमि ही ते भाजन अनेक भाँति नाम रूप,
भाजन बिचारि देषै उहै एक है मही।।
जल तें तरंग भई फेन बुदबुदा अनेक,
सोऊ तौ बिचारें एक वहै जल है सही।
महा पुरुष, जेते हैं सब कौ सिद्वांत एक,
सुन्दर खल्विदं ब्रह्म अन्त बेद है कही।।'
'जैसैं ईक्षुरस की मिठाई भांति भांति भई,
फेरी करि गारै ईक्षुरस हि लहत है।
जैसे धृत थीजि कैं डरा सौ बंधि जात पुनि,
फेरि पिघरे तें वह धृतई रहत है।।
जैसैं पानी जमि के पषान हू सौ देषियत,

सो पषान फेरि करि पानी ह्वै बहत है।
तैसैहि सुन्दर यह जगत है ब्रह्ममय,
ब्रह्म सो जगत मय बेद यौं कहत हैं।।'

संत सुन्दरदास ने बारंबार तत्कालीन जनता को ध्यान दिलाया कि राम (ब्रह्म) का द्वैत भाव मानव सर्जित है। सुन्दरदास जी ने उदाहरणों द्वारा अद्वैत वेदांत को स्थापित करने का प्रयास किया है–

'बृक्षन कौं बन कहत हैं बन मैं वृक्ष अनेक।
सुन्दर द्वैत कछू नहीं वृक्ष रू बन तौ एक।।'
'घर कहिये सब भूमि पर भूमि घरनि मैं होइ।
सुन्दर एकै देषिए कहन सुनन कौं दोइ।।'
'कोरि किये चित्रंम बहु एक शिला कै मांहि।
यौं सुन्दर सब ब्रह्ममय ब्रह्म बिना कछु नांहि।।'
'भयौ सरकरा ईक्षु रस ब्यापि मिठाई मांहि।
सुन्दर ब्रह्म सु जगत है जगत ब्रह्म द्वै नांहिं।।'

सुन्दरदास जी ने 'अथ ब्रह्म निःकलंक कौ अंग' में सर्वव्यापी राम (ब्रह्म) की निष्कलंकता प्रतिपादित की है। उनके अनुसार वेदांत मत में राम (ब्रह्म) सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी अलिप्त, असंग, निर्मल और निष्कलंक है।

'स्वेदज जरायुज अंडज उदभिज पुनि,
चारि षांनि तिन के चौरासी लक्ष जंत है।
जलचर थलचर ब्योमचर भिन्न भिन्न,
देह पंच भूतन की उपजि शपंत है।।
शीत घाम पवन गगन मैं चलत आइ,
गगन अलिप्त जामैं मेघ हू अनंत है।
तैसैं ही सुन्दर यह सृष्टि एक ब्रह्म मांहि,
ब्रह्म निःकलंक सदा जानत महंत है।।'

निर्गुण काव्यधारा के सर्वाधिक शिक्षित संत सुन्दरदास अन्य संतों से इस अर्थ में भिन्न है कि इन्होंने अन्य की भाँति ऊटपटाँग बातें नहीं की। संत सुन्दरदास ने जो दार्शनिक विवेचन किया, सभी शास्त्र–सम्मत है। उन्होंने अपनी रचनाओं में अद्वैत ज्ञान का निरूपण बारंबार किया।

सुन्दरदास की रचनाओं की अप्रतिम विशेषता है कि उन्होंने दर्शन जैसे गूढ़ विषय को भी जनसाधारण की भाषा में सरल एवं ग्राह्य बना दिया। इस प्रकार सुन्दरदास की दर्शन–संबंधी रचनाएँ उच्च श्रेणी की काव्य–कोटि में आती है। जहाँ कबीरदास की वाणी शास्त्र के खंडन में केंद्रित है, वहीं सुन्दरदास की वाणी शास्त्र के मंडन में दिखायी पड़ती है। इस प्रकार सुन्दरदास जी ने अद्वैत चिंतन के माध्यम से राम के 'नाम–स्मरण' को प्रतिपादित करने का प्रयास किया। उनके दार्शनिक विचारों में वेदांत दर्शन का प्रभाव स्पष्ट नज़र आता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 *तिवारी, श्री सिद्धिनाथ (1953): निर्गुण काव्य–दर्शन; श्री अजन्ता प्रेस लि., पटना, पृ. 234*
2 *त्रिगुणायत, गोविन्द (1961): हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि; साहित्य निकेतन, कानपुर, पृ. 389–90*
3 *निगम, शोभा (2011): भारतीय दर्शन; मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 225*
4 *मिश्र, रमेशचन्द्र (2011): सुन्दर ग्रन्थावली, भाग–2, किताबघर, नई दिल्ली, पृ. 527*
5 *–वही–, पृ. 950*
6 *–वही–, पृ. 954*
7 *मिश्र, रमेशचन्द्र (2011): सुन्दर ग्रन्थावली; भाग–1, किताबघर, नई दिल्ली, पृ. 242*
8 *मिश्र, रमेशचन्द्र (2011): सुन्दर ग्रन्थावली; भाग–2, किताबघर, नई दिल्ली, पृ. 952*
9 *दीक्षित, त्रिलोकी नारायण (1953): सुन्दर–दर्शन; किताब महल, नई दिल्ली, पृ. 158*
10 *मिश्र, रमेशचन्द्र (2011): सुन्दर ग्रन्थावली, भाग–2, किताबघर, नई दिल्ली, पृ. 520*
11 *–वही–, पृ. 952*
12 *–वही–, पृ. 951*
13 *–वही–, पृ. 957*
14 *मिश्र, रमेशचन्द्र (2011): सुन्दर ग्रन्थावली, भाग–1, किताबघर, नई दिल्ली, पृ. 255*
15 *मिश्र, रमेशचन्द्र (2011): सुन्दर ग्रन्थावली, भाग–2, किताबघर, नई दिल्ली, पृ. 959*
16 *–वही–, पृ. 957*
17 *–वही–, पृ. 958*
18 *–वही–, पृ. 522*
19 *–वही–, पृ. 522*
20 *–वही–, पृ. 526*
21 *–वही–, पृ. 955*
22 *–वही–, पृ. 521–522*
23 *–वही–, पृ. 911*

अफीम पोस्त खेती का भौगोलिक वितरण एवं उत्पादन का विश्लेषण

shodhshree@gmail.com

रतन लाल जाट
शोद्यार्थी, भूपाल नोबल्स विश्वविद्यालय, उदयपुर

डॉ. हेमेन्द्र सिंह शक्तावत
सह आचार्य, भूपाल नोबल्स विश्वविद्यालय, उदयपुर

शोध सारांश

अफीम का पौधा जिसे अफीमपोस्त कहते है, वनस्पति दूध धारण करने वाली फैमिलीपैपेवैरेसीका एक सदस्य पौधा है। यह पौधा अन्तःपरागित एवं सीधा बढ़ने वाला 50 से 120 सेन्टीमीटर ऊँचा होता है। इस पौधे का तना अन्दर से नरम होता है तथा पौधे के शाखाएँ बहुत कम होती है। इस पौधे की पत्तियाँ अक्सर डंठलयुक्त होती है, लेकिन शिखर के पास वाली पत्तियाँ डंठल विहिन होती है। पौधे के शिखर पर प्रायः एक ही फूल लगता है। यह फूल द्विलिंगी एवं चार पंखुडियों वाला होता है। इस फूल की पंखुडियाँ गिरने पर अन्दर से अफीम-डोड़ा निकलता है। इस डोड़े में लेटेक्स पाया जाता है। अफीम-डोड़े को नुकीले औजार से चीरा लगाकर लेटेक्स निकाल लिया जाता है। यही लेटेक्स सूख जाने के बाद अफीम कहलाता है।

***संकेताक्षर :** अफीम, वनस्पति, उत्पादन, भौगोलिक वितरण, विश्लेषण।*

अफीम एक स्वापक, सुषुप्ताकारक, हृदय-शक्ति बढ़ाने वाली, उत्तेजक एवं दर्दनाशक औषधि है। एक विलक्षण औषधि होने के साथ-साथ अपनी निद्रादायी, उत्तेजक, अपूर्व आनंददायी एवं चिन्ताहारी क्षमताओं के कारण औषधीयों के निर्माण में अफीम का उपयोग हुआ है। अफीम के औषधीयों में योगदान के सम्बन्ध में एम.ए. हक ने बताया था कि अफीमपोस्त एक औषधीय महत्त्व का पौधा है। इस पौधे से प्राप्त अफीम का उपयोग दर्द को समाप्त करने तथा बेहोशी पैदा करने की औषधियों में किया जाता है। अफीम में अनेक क्षारोद पाए जाते है जिनमें मार्फिन प्रमुख है। एम.ए. वेस्लोवस्क्याने अपनी पुस्तक में लिखा कि अफीम की महत्ता निरन्तर बढ़ती जा रही है एवं मार्फिन, कोड़िन, पैपेवैराइन, नारसीन, थैबाइन जैसे क्षारोद का आज चिकित्सा जगत् में दर्द निवारण में उपयोग बढ़ता जा रहा हैं।

चिकित्सक अफीम एवं इसके क्षारोद को शल्य क्रियाओं में अधिक उपयोग करते हैं। 'द इनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना' में अफीम का उपयोग प्रसव पीड़ा, गुर्दा संबंधी रोगों, रूधिर वाहिनियों में रूधिर का जमाव, कैंसर को ठीक करने में बताया गया हैं। इसी प्रकार जे.आर. शर्मा, आर.के. लाल एवं एस.पी.एस. खनुजा ने बताया कि भारत में अफीमपोस्त की खेती औषधीय उद्देश्यों से की जाती है। अफीमपोस्त से प्राप्त अफीम का उपयोग गंभीर दर्द का शमन करने तथा अस्थमा जैसे दीर्घ स्थायी विकारों एवं खाँसी को दबाने के लिए परम्परागत औषधीयों के निर्माण में किया जाता हैं।

अफीम पोस्त खेती का भौगोलिक वितरण

भारत मेंअफीमपोस्त खेती हेतु लाइसेंसशुदाअफीम उत्पादकों की संख्या एवं लाइसेंस क्षेत्र का निर्धारण केन्द्र सरकार के वित्त मंत्रालय के राजस्व विभाग द्वारा किया जाता है। केन्द्र सरकार का राजस्व विभाग समय-समय पर नियमानुसार लाइसेंसशुदा अफीम उत्पादकों की संख्या एवं लाइसेंस क्षेत्र को स्वापक औषधी एवं मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के विभिन्न नियमों के अन्तर्गत परिवर्तित करता रहता है। यह परिवर्तन अन्तर्राष्ट्रीय स्वापक नियंत्रण बोर्ड द्वारा भारत के लिए निर्धारित अफीम की निर्यात मात्रा तथा अफीम की देश के औषधीय निर्माण उद्योगों में घरेलू मांग पर निर्भर करता हैं। अफीम का उत्पादन केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित भू-भागों में ही किया जा सकता है। यह भू-भाग प्रति वर्ष स्वापक औषधी एवं मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम 1985 के अन्तर्गत अफीमपोस्त की खेती के

लिए भारत सरकार के गजट में अधिसूचित किए जाते है। इसके अतिरिक्त देश के किसी भी इलाके में अफीमपोस्त की खेती को अवैध माना जाता है।

भारत में अफीमपोस्त की खेती के लिए उपयुक्त मिट्टी तथा भौगोलिक एवं जलवायुविक दशाएँ केवल मध्यप्रदेश, राजस्थान एवं उत्तरप्रदेश राज्यों में ही पायी जाती हैं। अतः उपरोक्त तीनों राज्यों की भौगोलिक सीमा जहाँ आपस में जुड़ी हुई हैं वहाँ सीमित बेल्ट के अन्तर्गत पठारी भू–भाग पर अफीमपोस्त की खेती करवाई जाती है।भारत में अफीमपोस्त की खेती का भौगोलिक वितरण देखे तो इसमें; मध्यप्रदेश के मन्दसौर, नीमच, रतलाम, उज्जैन, झाबुआ, गाज़ापुर और राजगढ़ जिले, राजस्थान के कोटा, बारां, झालावाड़, चित्तौड़गढ़, उदयपुर एवं भीलवाड़ा तथा उत्तरप्रदेश के बाराबंकी, फैज़ाबाद, गाज़ीपुर, महू, लखनऊ, रायबरैली, शाहज़हाँपुर एवं बदायूंन जिले सम्मिलित होते है। इनके अतिरिक्त उत्तराखंड उधमसिंह नगर एवं देहरादून जिलों में अफीमपोस्त की खेती हेतु लायसेंस दिए गए है।

केन्द्र सरकार नियमानुसार अफीमपोस्त उत्पादन नीति में मध्यप्रदेश, राजस्थान एवं उत्तरप्रदेश राज्यों के विनिर्दिष्ट इलाकों को उन इलाकों के रूप में अधिसूचित करती है जहाँ केन्द्र सरकार की ओर से अफीमपोस्त का उत्पादन किया जा सकता है। केन्द्र सरकार द्वारा 1 अक्टूबर, 2018 से शुरू होने वाले एवं 30 सितम्बर 2019 को समाप्त होने वाले अफीम फसल–वर्ष 2018–19के लिए मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तरप्रदेश एवं उत्तराखंड राज्यों के अफीमपोस्त के उत्पादन हेतु अधिसूचित किए गए इलाकों को तालिका 1 में दर्शाया गया है। ज्ञातव्य है कि मध्यप्रदेश राज्य के केएनके कॉलेज ऑफ हॉर्टिकल्चर मंदसौर, राजस्थान राज्य के राजस्थान कॉलेज ऑफ एग्रीकल्चर उदयपुर, उत्तरप्रदेश राज्य के राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान लखनऊ एवं सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ मेडीसिनल एंड एरोमेटिक प्लांट लखनऊ, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि तथा प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज तहसील मिल्कीपुर तथा उत्तराखंड राज्य केसीएसआईआर–सीमैप पंत नगर तहसील किच्छा एवं विकास नगर देहरादून मेंप्रायोगिक प्रयोजन के लिए अफीमपोस्त की खेती करवाई जाती है।

तालिका 1 : अफीमपोस्त के उत्पादन हेतु अधिसूचित इलाकों का भौगोलिक वितरण

जिलों का नाम	सीमा (तहसील/परगना)
भाग. I : मध्य प्रदेश राज्य	
मंदसौर	मंदसौर, दलौदा, सीतामऊ, सुवासरा, मल्हारगढ़, शामगढ़, गरोठ, भानपुरा तथा केएनके कॉलेज ऑफ हॉर्टिकल्चर, मंदसौर (प्रायोगिक प्रयोजन के लिए)।
नीमच	नीमच, जावद, मनासा, जीरन, सिंगोली तथा रामपुरा।
श्रतलाम	रतलाम, सैलाना, जावरा, आलोट, पिपलोदा तथा ताल।
अगर माल्वा	बड़ौद।
उज्जैन	माहिदपुर, खाचरोद, नागदा, झाबुआ, पेटलावाड़।
राजगढ़	जीरापुर।
भाजापुर	सुसनेर।
भाग. II : राजस्थान राज्य	
कोटा	रामगंज मंड़ी, संगौड़, लाडपुरा और कनवास।
बांरा	बांरा, छबड़ा, छिपाबड़ौद और अटरू।
झालावाड़	झालरापाटन, खानपुर, अकलेरा, मनोहर थाना, पिड़ावा, पचपहार, गंगधार, असनावर, सुनेल तथा बकानी।
चित्तौड़गढ़	चित्तौड़गढ़, भदेसर, डुंगला, बेंगू, रावत भाटा, निम्बाहेड़ा, बड़ी सादड़ी, गंगरार, कपासन, राशमी तथा भूपाल सागर।
प्रतापगढ़	छोटी सादड़ी, प्रतापगढ़, अरनोद, धरियावद और पिपलखुंट।
उदयपुर	वल्लभनगर, मावली, लसाड़िया, उदयपुर तथा राजस्थान कॉलेज ऑफ एग्रीकल्चर, उदयपुर (प्रायोगिक प्रयोजन के लिए)।
भीलवाड़ा	मांडलगढ़, कोटड़ी, बिजौलिया और जहाजपुर।

भाग. III : उत्तर प्रदेश राज्य	
बाराबंकी	नवाबगंज, राम नगर, फतेहपुर, रामसनेही घाट, हैदरगढ़ सिरौली गौसपुर।
लखनऊ	मोहनलालगंज, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान लखनऊ (प्रायोगिक प्रयोजन के लिए) तथा सेंट्रल इंस्टीट्युट ऑफ मेडीसिनल एंड एरोमेटिक प्लांट (प्रायोगिक प्रयोजन के लिए)।
फैजाबाद	सोहावल, रूदौली, बीकापुर, मिल्कीपुर एवं आचार्य नरेन्द्र देव कृषि तथा प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय (एएनडीयूएटी) कुमारगंज, तहसील मिल्कीपुर (प्रायोगिक प्रयोजन के लिए)।
शाहजहांपुर	कन्त (तहसील सदर), जलालाबाद और तिल्हाड़।
बदायूं	बिसौली, बदायूं, दातागंज, बिल्सी।
बरेली	बरेली, मीरगंज, आंवला और फरीदपुर।
गाजीपुर	जमानिया।
मऊ	घोसी एवं मधुबन।
रायबरेली	कुमहरावान एवं महाराजगंज। भाग. प्ट रूउत्तराखंड़ राज्य
उधमसिंह नगर	सीएसआईआर–सीमैप, पंत नगर, तहसील किच्छा (प्रायोगिक प्रयोजन के लिए)।
देहरादून	विकास नगर (प्रायोगिक प्रयोजन के लिए)।

स्त्रोत : केन्द्रीय नारकोटिक्स ब्यूरो, ग्वालियर (मध्यप्रदेश)।

राजस्थान में अफीम पोस्त उत्पादक एवं उत्पादन क्षेत्र : राजस्थान में लाइसेंसशुदा अफीम उत्पादकों जिन्होंने अफीमपोस्त फसल की बुवाई की एवं लाइसेंस क्षेत्र जिस पर फसल उगाई गई का वर्ष 1998–99 से 2017–18 तक का विवरण तालिका 2 में दर्शाया गया है। अफीमपोस्त की खेती में लाइसेंसशुदा अफीम उत्पादकों की संख्या अथवा अफीमपोस्त का लाइसेंस क्षेत्र घरेलु एवं विश्व के औषधीय निर्माण उद्योगों हेतु अफीम की मांग के अनुसार निर्धारित किया जाता हैं।

तालिका 2 : राजस्थान में लाइसेंस शुदा अफीम उत्पादक एवं उत्पादन क्षेत्र

फसल वर्ष	उत्पादकों की संख्या	उत्पादन क्षेत्र (हैक्टेयर में)
1998–99	59689	11985
1999–00	55949	12571
2000–01	44897	8601
2001–02	43923	8421
2002–03	39282	6683
2003–04	43931	8461
2004–05	39406	3918
2005–06	34614	3411
2006–07	26657	2616
2007–08	11727	1131
2008–09	15769	3595
2009–10	21425	5554
2010–11	23926	7999
2011–12	17521	5542
2012–13	19954	2530
2013–14	18746	2503

2014–15	17245	2846
2015–16	3264	477
2016–17	25373	4171
2017–18	21749	2088

स्त्रोत : केन्द्रीय उप–नारकोटिक्स कमीश्नर कार्यालय, कोटा (राजस्थान)।

तालिका से वर्ष 1998–99 से 2017–18 तक राजस्थान में लाईसेंसशुदा अफीम उत्पादकों की संख्या एवं लाइसेंस क्षेत्र की प्रवृति स्पष्ट दिखाई पड़ती है। वर्ष 1998–99 से 2007–08 तक की अवधि में वर्ष 1999–00 एवं 2003–04 को छोड़कर शेष वर्षो में लाइसेंस क्षेत्र में कमी हुई है। वर्ष 2008–09 से 2010–11 की अवधि में लाइसेंस क्षेत्र में वृद्धि हुई है। यह वृद्धि अफीम का पर्याप्त स्टॉक न होने के कारण की गयी थी। वर्ष 2011–12 से 2015–16 तक की अवधि में वर्ष 2014–15 को छोड़कर शेष वर्षो में लाइसेंस क्षेत्र में कमी हुई है। अन्ततः वर्ष 2016–17 में लाइसेंस क्षेत्र में वृद्धि हुई है पर अगले ही वर्ष में लाइसेंस क्षेत्र लगभग आधा रह गया जबकि उत्पादकों की संख्या में अधिक कमी नहीं आई है।

वर्ष 1998–99 में विश्व बाज़ार में निर्यात की मांग को पूरा करने हेतु बफर स्टॉक को उपयोग में लिया गया। अतः वर्ष 1999–2000 में उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता महसूस की गई। ऐसी स्थिति में लाइसेंसशुदा उत्पादकों की संख्या एवं लाइसेंस क्षेत्र को थोड़ा बढ़ाया गया। इस वर्ष उत्पादन अधिक रहा। वर्ष 1999–2000, 2000–01 एवं 2001–02 में न्यूनतम अर्हक उपज में निरन्तर वृद्धि करने से वर्ष 2000–01 से 2002–03 तक लाइसेंसशुदा उत्पादकों की संख्या एवं लाइसेंस क्षेत्र में निरन्तर कमी हो गई। चूंकि वर्ष 2000–01 से प्रति उत्पादक लाइसेंस क्षेत्र को निश्चित कर दिया गया अतः लाइसेंसशुदा उत्पादकों की संख्या में कमी से लाइसेंस क्षेत्र में भी कमी हो गई। वर्ष 2002–03 में प्रतिकूल मौसमी दशाओं के कारण उत्पादन में कुछ कमी हुई। इसे पूरा करने हेतु वर्ष 2003–04 में लाइसेंसशुदा उत्पादकों की संख्या एवं लाइसेंस क्षेत्र में मामूली सी वृद्धि की गई।

विश्व बाजार में निम्न गुणवत्ता के कारण भारतीय अफीम की निर्यात मांग में वर्ष 2000–01 से कमी होने लगी। इस कमी को देखते हुए सरकार अफीम के उत्पादन को नियन्त्रित करने हेतु सचेत हो गई। वर्ष 2004–05 में सरकार ने उत्पादन को नियन्त्रित करने हेतु प्रति उत्पादक लाइसेंस क्षेत्र को पहले की तुलना में घटाकर आधा कर दिया गया। अतः लाइसेंस क्षेत्र घटकर मात्र 3918 हैक्टेयर रह गया था। वर्ष 2006–07 में 26657 लाइसेंस शुदाअफीम उत्पादकों को 2616 हैक्टेयर क्षेत्र पर लाइसेंस प्रदान किए गए। वर्ष 2007–08 में खराब मौसम के कारण फसल उगाने वालों का प्रतिशत कम हो गया जिससे उत्पादन में कमी हो गई। इस कमी को पूरा करने के लिए वर्ष 2008–09 में अफीम उत्पादन हेतु लाइसेंस क्षेत्र को बढ़ाया गया।

तालिका 3 : अफीम उत्पादन में राजस्थान का योगदान (वर्ष 1996 से 2018 तक)

फसल–वर्ष	उत्पादन (70° संगतता पर, मेट्रिक टन में)		देश के कुल उत्पादन में
	राज्य का उत्पादन	देश का उत्पादन	राज्य का योगदान
1998–99	590	1383	42.66
1999–00	702	1705	41.17
2000–01	506	995	50.85
2001–02	503	1055	47.67
2002–03	387	684	56.57
2003–04	522	1087	48.02
2004–05	221	457	48.35
2005–06	213	442	48.19
2006–07	150	358	41.89
2007–08	73	177	41.24
2008–09	217	510	42.54
2009–10	349	761	45.86
2010–11	504	1045	48.22
2011–12	367	794	46.22
2012–13	173	371	46.63
2013–14	160	318	50.31
2014–15	179	348	51.43
2015–16	28	61	45.90
2016–17	267	513	52.04
2017–18	130	256	50.78

स्त्रोतःकेन्द्रीय नारकोटिक्स ब्यूरो, ग्वालियर (मध्यप्रदेश)।

अफीम-कीमत का विनियमन

अफीम पोस्त की खेती लाईसेंसशुदा कृषक ही कर सकते हैं। केन्द्र सरकार लाइसेंस शुदा कृषकों को पूर्व निर्धारित निश्चित क्षेत्र पर उत्पादन हेतु अनुमति प्रदान करती है। लाइसेंस शुदा कृषक अफीम उत्पादक अफीम को न तो खुले बाजार में बेच सकता है न ही कीमत के सन्दर्भ में उसके पास कोई चयन हैं अतः अफीम की कीमत के सन्दर्भ में गुणवत्ता की बात नहीं की जा सकती है। चूंकि अफीम की खुले बाज़ार में बिक्री के अपने दोष है इसलिए सरकार ही इसकी अकेली क्रेता है। अफीम का खुला बाज़ार न होते हुए भी सरकार चाहती है कि अफीम का उत्पादन बढ़े, ताकि इसका औषधीय उपयोग हो, घरेलू मांग पूरा कर निर्यात किया जा सके एवं उत्पादकों की आय बढ़े। अतः सरकार उत्पादन मात्रा को आय से जोड़ती हैं।

चूंकि अफीम को खुले बाज़ार में नहीं बेचा जा सकता है। केवल केन्द्रीय सरकार ही इसकी खरीददार होती है अतः अफीम की कीमत केन्द्रीय सरकार द्वारा ही निर्धारित की जाती है। यहाँ कीमत से अर्थ है केन्द्रीय सरकार द्वारा 70 डिग्री की मानक संगतता पर अफीम के प्रति किलोग्राम मूल्य से है। यहॉ 70 डिग्री की मानक संगतता से आशय 70 प्रतिशत अफीम एवं 30 प्रतिशत नमी की मात्रा से है। यह मूल्य केन्द्र सरकार के वित्त मंत्रालय के राजस्व विभाग द्वारा एन.डी.पी.एस. अधिनियम के नियमानुसार समय–समय पर निर्धारित किया जाता है, जो तीन राज्यों के लिए एक समान होता है अर्थात् उत्पादन एवं औसत उपज से यह मूल्य प्रभावित नहीं होता है।

अफीम के मूल्य को नियत करने में पिछले वर्ष की कीमत अनुसूची के आधार पर शैक्षणिक शोध; जिसमें सम्बन्धित तीन राज्यों के कषि विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों के प्रतिवेदन, जिन्हें अफीम उत्पादन पर शोध हेतु लाइसेंस प्रदान किए गए है, विषय विशेषज्ञों, जिला अफीम अधिकारियों, उप–स्वापक आयुक्त एवं स्वापक आयुक्त की राय तथा पिछले वर्ष की उत्पादन लागतों एवं लाइसेंसशुदा शकों द्वारा अफीम के खरीद मूल्य में वृद्धि की मांग आदि बातों को ध्यान में रखा जाता है। सभी राज्यों में सभी लाइसेंसशुदा शकों को सरकार द्वारा निर्धारित कीमत ही दी जाती है। लाइसेंसशुदा अफीम शकों को न सिर्फ कीमत एक समान दी जाती है वरन् इसे उत्पादन से भी जोड़ा जाता है, जैसाकि तालिका 4 में दिखाया गया हैं।

तालिका 4 : अफीम के खरीद मूल्य निर्धारण हेतु कीमत अनुसूची

प्रति हैक्टेयर उपज(किलो में)	प्रति किलो कीमत भुगतान (70 डिग्री मानक संगतता पर रुपये में)			
	वर्ष 1999–02	वर्ष 2002–04	वर्ष 2004–08	वर्ष 2009–10
44 किलो तक	630	720(14.28)	750(4.16)	790(5.33)
44 से 48 किलो तक	650	770(18.46)	800(3.89)	840(5.00)
48 से 52 किलो तक	650	825(26.92)	860(4.24)	905(5.23)
52 से 54 किलो तक	800	1025(28.12)	1075(4.87)	1130(5.11)
54 से 56 किलो तक	800	1050(31.25)	1100(4.76)	1155(5.00)
56 से 58 किलो तक	800	1100(37.50)	1150(4.54)	1210(5.21)
58 से 60 किलो तक	800	1150(43.75)	1200(4.34)	1260(5.00)
60 से 62 किलो तक	1100	1400(27.27)	1475(5.35)	1550(5.00)
62 से 68 किलो तक	1100	1430(30.00)	1500(4.89)	1575(5.08)
68 से 70 किलो तक	1100	1525(38.63)	1600(4.91)	1680(5.00)
70 से 80 किलो तक	1100	1550(40.90)	1625(4.83)	1705(4.92)
80 से 85 किलो तक	1200	1550(29.16)	1625(4.83)	1705(4.92)
85 से 90 किलो तक	1200	1800(50.00)	1900(5.55)	1995(5.00)
90 से 100 किलो तक	1200	1900(58.33)	2000(5.26)	2100(5.00)
100 किलो से अधिक	1400	2100(50.00)	2200(4.76)	2310(5.00)

स्त्रोत :http://www.cbn.nic.in/operation

( ) में पिछली कीमत अनुसूची से प्रतिशत वृद्धि को बताया गया है।

नोटः यद्यपि अफीम उत्पादक को मात्र हैक्टेयर का दसवाँ हिस्सा (दस आरी) क्षेत्र अफीम उत्पादन के लिए दिया गया है परन्तु, ऊपरी कीमत अनुसूची में उत्पादन की प्रति हैक्टर के हिसाब से अफीम उत्पादक को मिलने वाली प्रति किलो कीमत को बताया गया है जैसाकि एन.डी.पी.एस. नियमों में उल्लेख किया गया हैं।

तालिका 4 के पहले कॉलम में प्रति हैक्टर उपज (70 डिग्री मानक संगतता पर, किलोग्राम में) दी गई है। ऐसा अनुमान है कि दस आरी क्षेत्र (हैक्टेयर का दसवाँ भाग) पर अफीम का उत्पादन 4.4 से 10 किलोग्राम तक हो सकता है। तालिका में दर्शाया गया है कि यदि कोई उत्पादक प्रति दस आरी 4.4 से 4.8 किलोग्राम तक अफीम सरकार को जमा करा पाता है तो वर्ष 1999–2002 की कीमत अनुसूची के अनुरुप उसे 630 रू. प्रति किलो के हिसाब से अफीम की कीमत का भुगतान किया जाता है। इसी प्रकार, यदि कोई अफीम उत्पादक 5.2 से 5.4 किलोग्राम तक अफीम जमा करा पाता है तो उसे 800 रू. प्रति किलो के हिसाब से कीमत प्राप्त होती है अथवा यदि कोई अफीम उत्पादक 6.0 से 6.2 किलोग्राम तक अफीम जमा करा पाता है तो उसे 1100 रू. प्रति किलो के हिसाब से कीमत प्राप्त होती है अर्थात् जैसे–जैसे अफीम उत्पादक अधिक उत्पादन सरकार को जमा करा पाता है वैसे–वैसे अफीम की प्रति किलो अधिक कीमत प्राप्त होती है जैसाकि तालिका में स्पष्ट रुप से दिखाया गया हैं।

तालिका में कीमत अनुसूची वर्ष 1999–2002 की प्रतिकिलो कीमत की वर्ष 2002–04, 2004–08 एवं 2009–10 से तुलना की गयी है। तालिका से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वर्ष 1999–2002 की तुलना में 2002–04, 2004–2008 एवं 2009–10 में प्रति हैक्टेयर उपज के लगभग सभी समूहों में कीमत में वृद्धि की गई है अर्थात् प्रति दस आरी 4.4 किलो तक उत्पादन जमा कराने पर खरीद कीमत वर्ष 1999–2002 में 630 रूपये से बढ़ाकर वर्ष 2002–2004 में 720 रूपये की गयी अथवा कीमत में 14.28 प्रतिशत की वृद्धि की गई। जबकि वर्ष 2002–04 से 2004–08 एवं 2004–08 से 2009–10 में यह वृद्धि क्रमशः 4.16 एवं 5.33 प्रतिशत रही। इसी प्रकार, 4.4 से 4.8 किलो तक उत्पादन जमा कराने पर खरीद कीमत में वर्ष 1999–2002 से 2002–04, 2002–04 से 2004–08 एवं 2004–08 से 2009–10 तक क्रमशः 18.46, 3.89 एवं 5.0 प्रतिशत की वृद्धि गयी और इसी प्रकार अन्य भी। इस प्रतिशत परिवर्तन को देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रति दस आरी 4.4 किलो से 10 किलो या अधिक तक का कीमत परिर्वतन अधिक उपज को प्रेरित करता हैं।

यदि प्रति किलो कीमत भुगतान की प्रतिशत वृद्धि को देखा जाए तो प्रति दस आरी 5.2 से 6.0 एवं 6.0 से 8.0 किलोग्राम उत्पादन पर कीमत में प्रतिशत वृद्धि अधिक है क्योंकि अधिकांशतः उत्पादन इसी रेंज में होता है। यदि संचयी प्रतिशत वृद्धि को देखा जाए तो पाएंगे कि प्रगतिशील दर से प्रति किलो कीमत भुगतान डिज़ाइन किया गया है जो अफीम उत्पादक को न सिर्फ ज्यादा उत्पादन जमा कराने को प्रेरित करता है वरन् अवैध व्यापार की तरफ उसके रूझान को भी कम करता है।

अफीम का उत्पादन प्रेरित कीमत प्रारूप : चूंकि अफीम की फसल आगतों के प्रति ज्यादा संवेदनशील होती है अतः सरकार अफीम उत्पादक को अधिक उत्पादन करने एवं उसे सरकार को जमा कराने हेतु प्रेरित करती है। इस हेतु सरकार ने फसल वर्ष 2014–15 से कीमत भुगतान हेतु नई कीमत अनुसूची तैयार की है जिसके आधार पर वर्तमान तक भुगतान किया जा रहा हैं।

अफीम की अधिक उपज प्रेरित कीमत अनुसूची को देखने से ज्ञात होता है कि वर्ष 1999–2002, 2002–04, 2004–08 एवं 2009–10 की कीमत अनुसूचियों की तुलना में वर्ष 2014–15 की कीमत अनुसूची में प्रति हैक्टर उपज के समूहों को कम किया गया हैं। वर्तमान में प्रति दस आरी 5.6 से 7.0 किलोग्राम तक अधिकांश उत्पादन हो रहा है अतः इस विस्तार में समूह अधिक बनाए है। समूह ऐसे तैयार किये गये है कि उत्पादक हमेशा आगे वाले उत्पादन विस्तार में जाने के लिए प्रेरित होता है क्योंकि वहाँ उसे प्रति किलो अफीम की अधिक कीमत प्राप्त होती हैं।

जैसाकि ऊपर बताया गया है कि अफीमपोस्त की फसल आगतों के प्रति बहुत ही संवेदनशील है अतः अफीम उत्पादक को अधिक उत्पादन जमा कराने पर बढ़ता हुआ प्रति किलो मूल्य इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वह अफीमपोस्त की खेती में अधिक आगतें प्रयुक्त करे। उसका हर प्रयास उत्पादन बढ़ाने का रहे, उत्पादन करते समय वह इस बात का ख्याल रखे कि उसे अधिक उत्पादन जमा कराने पर न सिर्फ

अधिक आय प्राप्त होनी वरन् यह आय प्रति किलो अधिक कीमत प्राप्ति के कारण और भी बढ़ जाएगी जैसाकि तालिका5 से स्पष्ट है।

तालिका 5 : अफीम की अधिक उपज प्रेरित कीमत अनुसूची(वर्ष 2014-15 से लागू)

प्रति हैक्टेयर उपज	प्रति किलोग्राम कीमत (700 संगतता पर, रू. में)	वृद्धि (प्रतिशत)	संचयी वृद्धि (प्रतिशत)
44 किलोग्राम तक	870	-	-
44 से 52 किलो तक	1000	13.00	13.00
52 से 56 किलो तक	1275	27.50	40.50
56 से 60 किलो तक	1390	8.27	48.77
60 से 65 किलो तक	1740	20.11	68.88
65 से 70 किलो तक	1875	7.20	76.08
70 से 75 किलो तक	2050	8.53	84.61
75 से 80 किलो तक	2250	8.88	93.49
80 से 85 किलो तक	2500	10.00	103.49
85 से 90 किलो तक	3000	16.66	120.15
90 किलोग्राम से अधिक	3500	14.28	134.43

स्त्रोत :http://www.cbn.nic.in/operation

कीमत अनुसूची में प्रति दस आरी क्षेत्र पर 5.2 से 5.6 किलोग्राम वाले विस्तार में प्रति किलो भुगतान राशि अधिक बढ़ाई गई है क्योंकि वर्ष 2013-14 के लिए प्रति दस आरी 5.7 किलोग्राम न्यूनतम अर्हक उपज निर्धारित की गई। इसी प्रकार, वर्ष 2013-14 तक प्रति दस आरी क्षेत्र से औसतन 6.4 किलोग्राम के आस पास उत्पादन होता रहा है। अतः अधिक उत्पादन को सरकार अपने पास जमा कराने के लिए अफीम उत्पादक को प्रेरित करने हेतु 6.0 से 6.5 किलोग्राम पर प्रति किलो कीमत में वृद्धि अधिक की हैं।

4. अफीम उत्पादकों को भुगतान राशिः तालिका6 में राजस्थान में अफीमपोस्त की खेती के लायसेंस हेतु न्यूनतम अर्हक उपज, अफीम की औसत उपज एवं अफीम उत्पादकों को भुगतान राशि का फसल वर्ष 1998-99 से 2017-18 तक का विवरण दिया गया हैं।

तालिका 6 : राजस्थान में अफीम की औसत उपज एवं भुगतान राशि (वर्ष 1999 से 2018 तक)

फसल वर्ष	न्यूनतम अर्हक उपज 700 संगतता संगतता (किग्रा/हैक्ट. में)	औसत उपज 700 (किग्रा/हैक्ट. में)	भुगतान राशि (करोड़ रू. में)
1998-99	30	49.22	35.88
1999-00	42	55.42	59.53
2000-01	50	58.88	44.99
2001-02	52	59.73	48.10
2002-03	52	57.90	42.56
2003-04	52	61.73	65.28
2004-05	54	53.89	28.87
2005-06	54	62.44	29.90

फसल वर्ष	न्यूनतम अर्हक उपज 700 संगतता संगतता (किग्रा/हैक्ट. में)	औसत उपज 700 (किग्रा/हैक्ट. में)	भुगतान राशि (करोड़ रु. में)
2006-07	56	57.53	30.05
2007-08	56	64.59	11.26
2008-09	56	60.31	32.39
2009-10	53	62.79	51.15
2010-11	56	63.04	76.81
2011-12	56	66.98	62.44
2012-13	56	68.39	29.93
2013-14	57	64.01	25.95
2014-15	51	62.98	31.54
2015-16	56	59.20	4.62
2016-17	49	64.27	43.54
2017-18	56	62.81	20.73

स्त्रोत : केन्द्रीय नारकोटिक्स ब्यूरो, ग्वालियर (मध्यप्रदेश)।

तालिका 6 में राजस्थान में अफीमपोस्त की खेती के लाइसेंस हेतु न्यूनतम अंर्हक उपज, अफीम की औसत उपज एवं अफीम उत्पादकों को भुगतान राशि का विवरण स्पष्ट देखा जा सकता हैं। वर्ष 1998-99 से 2017-18 की अवधि में कुछ वर्षों को छोड़कर न्यूनतम अर्हक उपज को निरंतर बढाया गया है। वित्त मंत्रालय के राजस्व विभाग द्वारा वर्ष के प्रारंभ में न्यूनतम अर्हक उपज तय करने के पश्चात् विशेष परिस्थितियों में औसत उपज कम होने पर उस वर्ष एवं आगामी वर्ष के लिए न्यूनतम अर्हक उपज कोकम भी किया गया है।

वर्ष 1998-99 से 2017-18 की अवधि में कुछ वर्षों को छोड़कर औसत उपज में निरंतर वृद्धि हुई है। वित्त मंत्रालय के राजस्व विभाग द्वारा औसत उपज में वृद्धि को देखते हुए आगामी वर्ष के लिए न्यूनतम अर्हक उपज को बढ़ाया गया है। उक्त अवधि में कुछ वर्षों को छोड़कर औसत उपज न्यूनतम अर्हक उपज से अधिक रही है। वर्ष 2012-13 औसत उपज 68.39 किलोग्राम प्रति हैक्टर आंकी गई जो विगत बीस वर्षो में सर्वाधिक रही है। वर्ष 1998-99 के अतिरिक्त वर्ष 2004-05 में भी औसत उपज कम आंकी गई है जैसाकि तालिका से स्पष्ट है।

वर्ष 1998-99 से 2017-18 की अवधि में कुछ वर्षो को छोड़कर भुगतान की गई राशि में निरंतर कमी हुई है। वर्ष 2007-08 एवं 2015-16 में उत्पादन में कमी के कारण भुगतान राशि कम हो गई। भुगतान राशि करोड़ रूपयों आंकी गई जो विगत बीस वर्षो में 2010-11 में सर्वाधिक रही है। वर्ष 1998-99 से 2017-18की अवधि में औसत उपज एवं भुगतान राशिमें सीधा सम्बन्ध देखा गया है। इस प्रकार उत्पादन में उच्चावचन के कारण भुगतान राशि में भी उतार-चढ़ाव देखने को मिलता हैं।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. *अफीमपोस्त उत्पादन नीति 2018-19, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।*
2. *केन्द्रीय स्वापक ब्यूरो कार्यालय, ग्वालियर (मध्यप्रदेश)।*
3. *उप-नारकोटिक्स कमिश्नर कार्यालय, कोटा (राजस्थान)।*
4. *जिला अफीम अधिकारी कार्यालय, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान)।*
5. *कृषि निदेशालय, राजस्थान सरकार, जयपुर (राजस्थान)।*
6. *केन्द्रीय स्वापक ब्यूरो की वेबसाइट : www.cbn.nic.in*
7. *अग्रवाल, ए. "मादक औषधीयाँ",नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, ए-5, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली।*
8. *अग्रवाल, एन.एल. "भारतीय कृषि का अर्थतंत्र', राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।*
9. *नायमा, के.सी. (2012) ''राजस्थान में अफीम पोस्त*

की खेती”, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली।

10. सुलेमान, एस. “मादक दृव्य संदर्शिनी–उपयोग, दुरूपयोग एवं प्रभाव'', क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, 28, शॉपिंग सेन्टर, करमपुरा, नई दिल्ली।
11. टॉक, डी.के. “उदयपुर जिले में अफीम की कृषि : एक आर्थिक अध्ययन'', स्नातकोत्तर, (अर्थशास्त्र), मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर।
12. डॉ. सरोहा, एम.एस., डॉ. पी.सी. बोर्दिया एवं डॉ. एम. पी. भार्मा ''अफीम की उन्नत खेती'', सूजस संचय, सूचना एवं जनसम्पर्क मंत्रालय, राजस्थान, 2001, पेज न. 76.
13. हक, एम.ए. ''औषधीय पौधे–एक बहुमूल्य धरोहर'', योजना, जून–2004, पेज 36.
14. शर्मा, जे.आर. एवं एस.पी.एस. खनुजा “पोस्ता की खेती–भारत में अफीम का वैध उत्पादन'', फार्म बुलेटिन, केन्द्रीय औषधीय एवं संगध पौधा संस्थान, (सीमैप), लखनऊ. (उत्तरप्रदेश)।
15. त्रिपाठी, आर. “राजस्थान की माटी में उपजा है काला सोना'',राजस्थान सुजस, फरवरी–मार्च, 1994, पेज नं. 13.
16. CBN Report (2018), published by Central Bureau of Narcotics, Gwalier (MP),available on http://www.cbn.nic.in/operation
17. International Narcotic Control Strategy Report (2016), published by International Narcotics Control Board, Viena.
18. South East Asia Opium Survey Report (2016), Reported by United Nations Office on Drug and Crime,available on http:// www.unodc.org
19. The Encyclopedia Americana, “The International Reference Work”, Americana Corpo., Washington D.C.
20. Veselovskaya, M.A. (1976), “The Poppy: Its Classification and Importance as an Oleiferus crop”, Amerind Publishing Com. Pvt. Ltd., New Delhi.

बाल्यावस्था में व्यक्तित्व विकास के आयाम

shodhshree@gmail.com

हेमा रूपावत
सहायक आचार्य, राजकीय कन्या महाविद्यालय, बून्दी

शोध-सारांश

बालक का सम्पूर्ण जीवन उसके प्रारम्भिक विकास से प्रभावित रहता है। इस प्रारम्भिक विकासात्मक सीढ़ी में बालक के वंशानुक्रम के साथ–साथ वातावरण का बराबर योगदान होता है और यही योगदान बालक के व्यक्तित्व को पूर्ण रूप देने में सहायक सिद्ध होता है। बालक जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक विभिन्न विकासात्मक अवस्थाओं से गुजरता है। जैसे–जैसे वृद्धि और विकास होता जाता है वैसे–वैसे बालक के व्यक्तित्व की पहचान करना आसान होता जाता है। इस शोध पत्र मे बालक की विभिन्न विकासात्मक अवस्थाओं का प्रभाव उसके व्यक्तित्व निमा्रण व उत्तरोतर विकास में सहायक होता है बताया गया है। वातावरण व वंशानुक्रम से सम्बन्धित समस्त गुण, अवगुण, बालक की बुद्धिलब्धता, शारीरिक गठन, सामाजिक सम्बंध, संवेगों, भाषात्मक प्रतिमानों सभी बालक के सम्पूर्ण जीवनकाल मे महत्तवपूर्ण होते है। उपरोक्त सभी तथ्य बालक के व्यक्तिव के निर्धारण में सहयोग प्रदान करते है।

संकेताक्षर : *पर्सनेलिटी, समूह मानक, संज्ञान, संज्ञानात्मक अनुक्रियाएँ, सामाजिक परिपक्वता, समायोजन, समप्रेषण, Emotion, संवेगात्मक क्रियाएं, संरचनात्मक विकास, अधिगम, अन्वेषण एवं भाषा।*

हमारी भारतीय परम्पराओं में संस्कारों का बड़ा महत्व है, और आज वैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करते है कि माता–पिता के अनुवांशिक गुण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी मे जाते है जिनका मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण मे प्रमुख योगदान होता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार गर्भावस्था मे माँ के खान–पान, आचार–विचार, रहन–सहन एवं वातावरण का ज्यों का त्यौं प्रभाव भावी संतान पर पड़ता है। बालकों में संस्कारों का बीजारोपण गर्भावस्था में ही हो जाता है।

व्यक्तित्वः- शब्द अंग्रेजी भाषा के ‘‘पर्सनेलिटी’’ (personality) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। (personality) भाब्द लैटिन भाषा का परसोना से बना है जिसका वास्तविक अर्थ होता है– नकली चेहरा या मुखौटा, जिसका प्रयोग प्राचीनकाल मे नाटक के पात्र ‘‘कलाकार’’ अपने रूप व वेश बदलने मे किया करते थे।

एच.जे. आइजनेक के अनुसारः– व्यक्ति की अतिप्रेरणात्मक व्यवस्थाओं का व्यक्तित्व सापेक्ष रूप से वह स्थिर संगठन है जिसकी उत्पत्ति जैविक, अन्तर्नोदो, सामाजिक तथा भौतिक वातावरण की अन्तः क्रिया के फलस्वरूप होती है।

“Personality to the dynamic organization within the individual of these psychophysical systems that determine his unique adjustment of his environment G.W. All part, 1937[1]

गिलफोर्ड के अनुसारः– हम व्यक्तित्व को शीलगुणों के एक संकलित नमूने के रूप मे परिभाषित कर सकते है।[2]

प्रत्येक व्यक्ति एवं परिवार की स्थितियां भिन्न–भिन्न होती है, अतः व्यक्तिगत भिन्नता भी व्यक्तित्व के भिन्न–भिन्न व्यक्तित्व को दर्शाती है। परिवार के सुखद माहौल मे रहकर बालक जब बड़ा होता है, वह शीलगुणों को अपनाता है, ऐसे सुखद अनुभवों से बालक का व्यक्तित्व विकास भी सुन्दर होता है। बालक जब बड़ा होता है, तो खेल–खेल में ही अनुशासन, उदारता, नियम–पालन, मित्रता, सहयोग, सहिष्णुता, त्याग आदि गुणों को सीखता है, ये ही गुण उसके व्यक्तित्व मे समाहित होते जाते है और व्यक्तित्व प्रभावशाली बनता जाता है।

बाल्यावस्था मे विकास के आयाम

➢ **बौद्धिक विकासः**- बालकों मे बुद्धि का विकास, विभिन्न विकास की तरह ही क्रमबद्ध होता है जो कि अनवरत चलता रहता है। बौद्धिक विकास पर वातावरण व वंशानुक्रम दोनों का प्रभाव पडता है। वातावरण में बालकों को सिखाना, प्रशिक्षण व आदतें भी सम्मिलित है जो कि बौद्धिकता या बौद्धिक विकास को प्रभावित करते है। बालकों की बुद्धितब्धि मे वातावरण और दशाशं भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

''बच्चों और किशोरों के बुद्धि परीक्षण फलांको पर आधारित दीर्घकालीन विकास चक्रों मे पता चलता है कि यद्यपि अधिकांश व्यक्तियों के सम्बंध मे स्कूल जाने की आयु मे प्रति वर्ष किये जाने वाले बुद्धि परीक्षणों के फलांकों में अपेक्षाकृत बहुत अधिक स्थिरता रहती है। इतने पर भी उनमें पर्याप्त परिवर्तन देखने में आते है।''[3]

➢ **शारीरिक विकास** :- शारीरिक विकास व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। वंशानुक्रम व वातावरण बालक के शारीरिक विकास को प्रभावित करते है उसी प्रकार शारीरिक विकास के कारण जैसे आहार भी व्यक्तित्व विकास को प्रभाव करता है। आहार में पौष्टिक व पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व का होना आवश्यक है। पौष्टिक आहार बालक की रोग प्रतिरोधक क्षमता की वृद्धि कर विभिन्न रोगों से रक्षा करता है तथा वृद्धि में भी सहायक है। अतः शारीरिक विकास की व्यक्तित्व को बनाने मे अहम भूमिका है।

➢ **सामाजिक विकासः**- सामाजिक सम्बंधों मे परिपक्ता प्राप्त करना ही सामाजिक विकास है। समाज मे रहकर समाज के मानदंडों मे खरा उतरने व अपने को सामाजिक परिस्थितियों से अनुकूलन करना होता है।

चाइल्ड के अनुसारः– सामाजिक विकास वह प्रक्रिया है, "जिसके द्वारा व्यक्ति में उसके समूह के अनुसार वास्तविक व्यवहार का विकास होता है।"

समूह में रहकर बालक सामाजिक बनता है, बालक सामाजिक का पाठ सर्वप्रथम परिवार,फिर आस–पास के माहौल में पढ़ता है। बालक समूह में रहकर सामाजीकरण को सीखता है। समूह के गुणों को अपने में अर्न्तनिहित करता है बालक का शारीरिक विकास भी समाजिकता व समाजिक विकास को प्रमाणित करता है, यही सामाजिक विकास बालक के व्यक्तित्व को बनाने में सहायक है बालक का संपूर्ण व्यक्तित्व सामाजिकता के कारण प्रभावित रहता है।

➢ **संज्ञानात्मक विकासः**- शिशु जन्म के साथ अनुक्रियाओ को प्रकट कर नही सकता, परन्तु बढ़ती आयु व विकास के साथ –साथ भौतिक वातावरण की अनुक्रियाओं को समझने लगता है और विकासात्मक परिपक्वता को प्राप्त करने लगता है। बालक वातावरण को पहचानकर, विभिन्न प्रतीकों की सहायता से व ज्ञान भंडार मैं वृद्धि कर, संज्ञानात्मक सरंचना विकसित करता है । यह एक अर्जित योग्यता है,जो जीवनपर्यन्त चलती रहती है। संतान वह प्रक्रिया है,जिसके द्वारा कोई भी व्यक्ति किसी भी वस्तु की प्रतिछाया को पहचानता है, उसकी जानकारी प्राप्त करता है। संज्ञान से अभिप्राय उच्च मानसिक प्रक्रियाओं मे है जिससे बालक को आस–पास के वातावरण को पहचानने मे मदद् मिलती है। संज्ञानात्मक व्यवहार को व संज्ञान को तर्कना, विचार व स्मृति प्रभावित करते है। संज्ञान व बुद्धि को आहार भी प्रभावित करता है। पौष्टिक आहार में संज्ञान व बुद्धि को बढाने मे मदद मिलती है जो कि संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करता है।

➢ **भाषा का विकासः**- भाषा ध्वनियों के द्वारा मानव के भावों की अभिव्यक्ति है व सम्प्रेषण का एक सशक्त माध्यम है। भाषिक विकास प्रक्रिया एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसमें अनेक प्रकार की क्रियाऐं सम्मिलित है। जिसमें मानसिक संगठन के द्वारा क्रियाओं प्रतिक्रियाओं का पुर्नगठन होता है। किसी नई बात को सीखने के साथ ही मानसिक जगत में नवीन व्यवस्था उत्पन्न होती है।

विकास के क्रम में बालक अनेक कौशलों, चलना, बैठना, दौड़ना, खाना–पीना, रोजाना, खेलना आदि सीखता है। भाषा का विकास भी इसी क्रम में प्रारम्भ हो जाता है। भाशा का विकास भी मानव शिशु के व्यक्तित्व निर्माण का ही प्रयास है। भाषा और उसका प्रयोग अनुभव पर निर्भर करता है। भाषा विकास मे अन्य विकासों की भांति वातावरण की भूमिका होती है, भाषा से ही सामाजिकरण की प्रक्रिया मे वृद्धि होती है। जिन परिवारों मे जहॉं सम्प्रेषण (बात–चीत) सीमित होता है, बच्चों की बातें कम सुनी जाती है और उन पर कम ध्यान दिया जाता है ऐसे में बालकों का भाषा विकास अवरूद्ध हो जाता है या भाषा विकास धीमा हो जाता है। हरलॉक के अनुसार भाषा में सम्प्रेषण के सभी साधन आते है, जिसमें विचारों और भावों को प्रतिकात्मक बना दिया जाता है, जिससे अपने विचारों और भावों को दूसरों के समक्ष अर्थपूर्ण ढंग से कहा जा

सकें।[5]

➢ **संवेगात्मक विकास :-** मानव जीवन में संवेगों का महत्वपूर्ण स्थान है। यह सामाजिक, चारित्रिक विकास के साथ–साथ व्यक्तित्व विकास में भी सहायक है। संवेग अंग्रेजी भाषा के Emotion का हिन्दी रूपान्तर है। Emotion लैटिन भाषा के शब्द Emover से बना है। जिसका अर्थ उत्तेजित होना, भडक उठना, उद्धीप्त होना, होता है। संवेगों के कारण व्यक्ति उत्तेजित हो जाता है, यह अवस्था ही संवेग है। संवेग परिस्थितियों की जटिल अवस्था है जो कभी व्यक्तित्व के कार्य मे बाधक होती है कभी प्रेरणास्प्रद होती है। बालक के जीवन मे संवेगों का बड़ा महत्व है। संवेग के कारण बालक क्रियाऐं करता है और संवेगात्मक क्रियाओं की पुनरावृत्ति धीरे–धीरे आदत बन जाती है।

इंगलिश एवं इंगलिश के अनुसारः– संवेग जटिल भावना की अवस्था है। इसमें गत्यात्मक तथा ग्रंथीय क्रियायें होती है अथवा यह वह जटिल व्यवहार है, जिसमें आंतरिक अवयवों की क्रियायें महत्वपूर्ण है।[6]

संवेग प्रभावशाली अनुक्रिया के समान होता है। यह शरीर की सामान्य एवं शारीरिक प्रतिक्रियाओं के रूप में व्यक्त होता है।

बोरिंग, लैग फील्ड एवं वील्ड :– बालकों में संवेग थोडे समय के लिए होते है, संवेगों की उत्पत्ति जल्दी–जल्दी होती है। बालकों में तीव्र संवेग हानिकारक नही होते, परन्तु किशोरावस्था मे हानिकारक हो सकते है।

व्यक्तित्व के संरचना एवं कार्य मे विकास एक दूसरे पर आश्रित रहते है। विकसित संरचना के अभाव में विकास सम्भव नही है। अतः व्यक्तित्व का प्राथमिक विकास संरचनात्मक विकास पर निर्भर करता है। अच्छी तरह कार्य करने के लिए उसे वृद्धि एवं परिपक्वता की आवश्यकता होती है, शिशु में वृद्धि व विकास के साथ उसके व्यक्तित्व की संरचना मे परिवर्तन होता है। जिसके परिणामस्वरूप वह परिवेश में समायोजित होने का प्रयास करता है या समायोजित हो सकता हे।

व्यक्तित्व के विकास का तात्पर्य केवल शारीरिक विकास तक सीमित नहीं है अपितु व्यक्तित्व की संरचना की इकाइयों मे सरलता से जटिलता का परिवर्तन है।

अनुभव, अधिगम व परिपक्वता से बालक का निजी व्यक्तित्व निर्मित होता है तथा अनोखे व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

बालक के व्यक्तित्व का निर्माण विकास की विभिन्न अवस्थाओं मे होता है। व्यक्ति के जीवन काल मे विकास की कमी में अलग–अलग परिवर्तन होते है। चूंकि व्यक्तित्व का विकास एक सतत प्रक्रिया है, जिसका बीजारोपण गर्भाधान से हो जाता है तथा यह प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती रहती है। यह प्रक्रिया विकास प्रतिमान के रूप मे स्पष्ट होती है तथा विकासात्मक अवस्थाओं मे देखी जा सकती है।

- ➢ गर्भकालीन अवस्था मे व्यक्तित्व विकास पर अनुवांशिक कारकों का प्रभाव पड़ता है। (यह अवस्था 280 दिन की होती है।)
- ➢ शैशावस्था यद्यपि लघु होती है फिर भी महत्वपूर्ण होती है यहीं से शिशु समायोजन करना सीखता है, समायोजन की क्षमता अपेक्षाकृत कम विकसित होती है।
- ➢ बचपनावस्था मे शारीरिक व व्यवहारिक परिवर्तन बालक के समायोजन को प्रभावित करते है। व्यक्तित्व के विकास के दृष्टिकोण से यह क्रान्तिक समय होता है क्योकि इस समय जो नींव पडती है उसी पर प्रौढ़ व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इस अवस्था में माता के व्यवहार का बालक के व्यक्तित्व पर असर पडता है।
- ➢ बाल्यावस्था मे बालकों मे व्यापक परिवर्तन होते है, इस अवधि में बच्चों का तीव्र मानसिक, शारीरिक, सामाजिक विकास होता है। परिपक्व व्यक्तित्व का प्रतिमान भी दिखाई देने लगता है।
- ➢ बच्चों मे नकारात्मक प्रवृत्ति के साथ संवेगों मे स्थिरता, कौशलों का अर्जन तथा लैगिंग अंतर भी दिखाई पड़ता है। बच्चों मे जिज्ञासा, अन्वेषण एवं भाषा विकास भी परिलक्षित होने लगता है। यह अवस्था क्रान्तिकारी परिवर्तन की अवस्था है। इस अवस्था मे होने वाले व्यक्तित्व विकास पर माता–पिता, मित्रों एवं सम्बन्धियों का सर्वाधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है।
- ➢ किशोरावस्था मे बालकों मे सामाजिक संवेगात्मक, मानसिक एवं अन्य व्यवहार परिपक्वता की ओर अग्रसर होते है बालक इस अवस्था मे समायोजन के नए आयाम सीखता है। सामाजिक अनुमोदन प्राप्त करने का प्रयास करता है जिससे उनका व्यक्तित्व प्रभावित भी रहता है।
- ➢ व्यक्तित्व के जो प्रतिमान किशोरावस्था तक

विकसित हो जाते है उनका अन्य अवस्थाओं मे जैसे प्रौढोवस्था, वृद्धावस्था मे स्थिरीकरण होता है तथा नवीनशील गुण भी विकसित होते है।

- प्रौढ़ावस्था से व्यक्तित्व प्रणाली मे समन्वय की कमी आने लगती है। अतः व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से किशोरावस्था तक की अवस्थाऐं ही विशेष महत्व रखती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बाल विकास एवं बाल मनोविज्ञान, डॉ. निधि श्रीवास्तव, रक्षा निमामा, पृ. 112
2. बाल विकास का मनोविज्ञान –
   1. डॉ. जानकी मूरजानी
   2. डॉ. दर्शनकौर नारंग
   3. डॉ. मणिका मोहन पृ. 191
3. बालमनोविज्ञान, रामकुमार वर्मा, पृ. 39
4. बाल विकास एवं पारिवारिक सम्बंध, डॉ. मथुरेश्वर पारीक, पृ. 166
5. बाल विकास एवं बाल मनोविज्ञान, डॉ. निधि श्रीवास्तव, रक्षा निनामा, पृ. 65
6. बाल मनोविज्ञान, राम कुमार वर्मा, पृ. 61

आचार्य पाणिनि पूर्व कारक–विभक्ति

डॉ. गुंजन गर्ग
सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, गंगापुर सिटी

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

संस्कृत व्याकरण में वाक्य संरचना के आधारभूत कारक और विभक्ति विशिष्ट है। आचार्य पाणिनि के द्वारा अपने व्याकरण ग्रन्थ अष्टाध्यायी में इनका विस्तृत वर्णन किया गया है। लेकिन कारक और विभक्ति की यह अवधारणा आचार्य पाणिनि से बहुत प्राचीन है। वेद, ब्राह्मण, प्रतिशाख्य, निरुक्त आदि ग्रन्थों में यह पर्याप्त रूप से प्राप्त होते है। आचार्य पाणिनि से पूर्ववर्ती ऐन्द्र व्याकरण, भागुरि व्याकरण, काशकृत्स्न व्याकरण और आपिशल व्याकरणों के प्राप्त उद्धरणों में कारक और विभक्ति के उल्लेख प्राप्त होते है। संभवतः आचार्य पाणिनि द्वारा अन्य संज्ञाओं की भांति कारक और विभक्ति संज्ञाओं को यही से ग्रहण किया गया है।

संकेताक्षर : *कारक, विभक्ति, आचार्य पाणिनि, ऋग्वेद, ब्राह्मण, प्रतिशाख्य, निरुक्त, ऐन्द्र व्याकरण, भागुरि व्याकरण, काशकृत्स्न व्याकरण, आपिशल व्याकरण।*

वेदार्थसहायक षड्वेदांगों में व्याकरण का प्रमुख स्थान है। व्याकरण को वेद रूपी पुरुष के मुख की संज्ञा दी जाती है– मुखं व्याकरणं स्मृतम्। व्याकरण के अन्तर्गत सन्धि, लिंग, लकार, प्रत्यय, समास, कारक – विभक्ति इत्यादि का अध्ययन किया जाता है।

कारक शब्द 'डुकृञ् करणे' धातु से ण्वुल् प्रत्यय करने से निष्पन्न होता है। इसका शाब्दिक अर्थ है – करोतीति कारकम्। आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय के चतुर्थ पाद में 'कारके' (1.4.23) सूत्र से कारकाधिकार को माना है। उन्होने नाम, आख्यात, उपसर्ग, संप्रसारण, निपातन लकारादि संज्ञाओं की भाँति कारक संज्ञा को परिभाषित नहीं किया। संभवतः यह कारक संज्ञा भी अन्यवद् आचार्य पाणिनि से पूर्व अतिप्रचलित थी। किन्तु अष्टाध्यायी में इस कारकसंज्ञा के अधिकारक्षेत्र का विस्तृत वर्णन किया गया है। आचार्य पाणिनि ने अनेक सूत्रों मे कारक संज्ञा का प्रयोग किया है।

वि उपसर्गपूर्वक 'भज्' धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से विभक्ति शब्द निष्पन्न होता है। इसका शाब्दिक अर्थ है– विभज्यते इति विभक्तिः। व्याकरण में पद बनाने वाले प्रत्ययों को विभक्ति कहते है। ये प्रत्यय दो प्रकार के होते है– सुप् प्रत्यय और तिङ् प्रत्यय। आचार्य पाणिनि ने अनेक पदों में विभक्ति पद को उद्धृत किया है। प्रमुख रूप से विभक्ति सुप् प्रत्ययों के अभिधायक के रूप में प्रयुक्त होती है। नियमानुसार तिङ् प्रत्ययों की विभक्तिसंज्ञा तो होती है, किन्तु व्यवहारतः इस अर्थ में उनका प्रयोग नहीं होता। स्वयं आचार्य पाणिनि ने सुप् के अर्थ में ही विभक्ति शब्द का प्रयोग किया है– अव्ययं विभक्ति समीप. (2.1.6), प्राग्दिशो विभक्तिः (5.3.1), सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः (6. 1.168), इकोऽचि विभक्तौ (7.1.73), अष्टन आ विभक्तौ (7.2.84)।

कारक और विभक्ति की परम्परा बहुत प्राचीन है। यह स्वयं में अपना एक इतिहास रखती है। यद्यपि आचार्य पाणिनि ने इन्हें सूत्र के रूप में परिबद्ध किया है। तथापि हम यह नहीं कह सकते कि आचार्य पाणिनि से पूर्व ये नियम नहीं थे। नियम तो वहाँ निश्चित रूप से विद्यमान थे। लेकिन उनका स्वरूप क्या था ? यह विवादास्पद है। क्योंकि आचार्य पाणिनि से पूर्व उनके नियमित स्वरूप का पूर्ण रूप प्राप्त नहीं होता। आचार्य पाणिनि से प्राचीन साहित्य के अवलोकन से यह तो प्रामाणिक रूप से कहा जा सकता है, कि कारक–विभक्ति के नियम अपने पूर्ण विकसित स्वरूप में

विद्यमान थे। जब हम वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, प्रातिशाख्य, निरूक्तादि ग्रन्थों पर दृष्टिपात करते हैं, तो यह स्वतः प्रमाणित हो जाता है, कि गद्य हो पद्य, वाक्यसंरचना के अभाव में अस्तिवहीन हैं और जब हम रामायण, महाभारत जैसे पूर्णतया विकसित परिपल्लवित साहित्य का अवलोकन करते हैं तो किसी प्रमाण की आवश्यकता ही नहीं होती। क्योंकि पदों का इतना सरस, मंजुल, श्रुताकर्षक, श्लोकात्मक रूप में गुम्फित विन्यास हमें इस बात को मानने के लिए प्रेरित करता है, कि आचार्य पाणिनि से पूर्व कारक–विभक्ति के नियमों का अपना एक पूर्ण स्वरूप था।

विश्व वाङ्मय की प्रथम पुस्तक ऋग्वेद के परिशीलन से ज्ञात होता है, कि वहाँ कारक–विभक्ति को शब्दशः कहीं भी उद्धृत नहीं किया गया। किंतु पूरा वेद कारक–विभक्ति के अटूट नियमों में आबद्ध है। वेद में उल्लिखित मंत्रों के आधार पर वैयाकरण निकाय द्वारा विभक्तियों के अन्वेषण के क्रम में अनेक संभावनाए व्यक्त की जाती है, यथा–

चत्वारि श्रृङ्गा त्रयो अस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महो देवो मर्त्या आ विवेश।।

प्रस्तुत मंत्र में आचार्य पतंजलि 'सप्त हस्तासो' पदों में सप्तविभक्तियों की संभावनाएँ व्यक्त करते है। इसी प्रकार अन्य मन्त्र भी द्रष्टव्य है, यथा–

सुदेवोऽसि वरूण यस्य ते सप्तसिन्धवः।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव।।

यहाँ 'सप्तसिन्धवः' पद सप्तविभक्तियों के अर्थ में विचारणीय है। इसी सन्दर्भ में ऋग्वेद के 8 वें मण्डल में 69 वें सूक्त के अनेक मंत्रों में त्रिष्टुप्, त्रिः सप्त, अप् आदि पद भी विचारणीय हैं।

शब्दशः निर्देश न होने पर भी पदों में अनुस्यूत विभक्तियाँ मंत्रगत रहस्य को स्पष्ट कर देती है। भाव यह है, कि कारक और विभक्ति का प्रयोगात्मक रूप तो प्रत्येक मंत्र में झलकता ही है–

अग्निर्होता कविक्रतुः
कर्ता कारक (प्रथमा विभक्ति) (ऋग्. 1.1.5)
अग्निमीळे पुरोहितम्
कर्म कारक (द्वितीया विभक्ति) (तत्रैव 1.1.1)
अग्निना रयिमश्नवत्
करण कारक (तृतीया विभक्ति) (तत्रैव 1.1.3)
यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने
सम्प्रदान कारक(चतुर्थी विभक्ति) (तत्रैव 1.1.6)
अतः परिजमन्ना गहि
दिवो वा रोचनादधि
अपादान कारक (पंचमी विभक्ति) (तत्रैव 1.6.9)
वर्धमानं स्वे दमे
अधिकरण कारक(सप्तमी विभक्ति)(तत्रैव 1.1.8)

प्रस्तुत उदाहरण कारक–विभक्ति के मूलाधार को प्रकट करते हैं। साथ ही वेदों में अन्यान्य कारकविषयक और विभक्तिविषयक नियमों को प्रदर्शित करने वाले प्रयोग भी यत्र तत्र बिखरे हुए हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

देवो ..... यो अर्वन्त प्रथमो अध्यतिष्ठत्। (ऋग् 1.63.9)
.... न दुरूक्ताय स्पृहयेत् (तत्रैव 1.41.9)
.... त्वं तस्माद् वरूण पाह्यस्मान् (तत्रैव 2.28.10)
शुनं नरः .... स्वरभवज्जाते अग्नौ (तत्रैव 4.3.11)
आ सिन्धोरा परावतः (तत्रैव 10.137.2)

इस प्रकार उक्त उदाहरण कारक और विभक्ति के सुपल्लवित स्वरूप को उजागर करते हैं।

सर्वप्रथम मैत्रायणी संहिता में विभक्ति संज्ञा का उल्लेख मिलता है– 'तस्मात् षड् विभक्तयः। अथर्ववेद में भी अनेक मंत्रो में विभक्ति संज्ञा का संकेत प्राप्त होता है। यहाँ एक मंत्र में 21 प्रकार के शब्द अर्थात् सात विभक्तियाँ तथा प्रत्येक के तीन वचनों का उल्लेख हैं–

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बलां तेषां तन्वो अद्य दधातु मे।।

एक अन्य मन्त्र में अष्टापदी वाणी से सप्तविभक्तियाँ तथा आठवें सम्बोधन का ग्रहण होता है– वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम्। इन्द्रात् परितन्वं ममे ऐतरेय ब्राह्मण में भी वाणी के सप्त प्रकारों से सप्त विभक्तियों की संभावना की गई है–

सप्तधा वै वागवदत्। सप्त विभक्तय इति भट्टभास्करः।

गोपथ ब्राह्मण में भी अनेक व्याकरण सम्मत परिभाषिक शब्द प्राप्त होते हैं– 'ओंकारं पृच्छामः, को धातुः, किं प्रातिपदिकम्, किं नामाख्यातम्, किं लिङ्गम्, किं वचनम्, का विभक्तिः, कः प्रत्ययः, कः स्वर उपसर्गो निपातः, किं वै व्याकरणम्, को विकारः, को विकारी, कतिमात्रः, कतिवर्णः, कत्यक्षरः, कति पदः, कः संयोगः, किं स्थाननादानुप्रदानानुकरणम्।

यहाँ उल्लिखित विभक्ति पद व्याकरण की प्रसिद्ध विभक्ति संज्ञा को इंगित करता है। जो इस बात को पुष्ट करता है, कि प्रथमादि को संभवतः विभक्ति संज्ञा से पुष्ट किया जाने लगा था। इसी प्रकार गोपथ ब्राह्मण में ही अन्यत्र अव्यय के सन्दर्भ में दी गई परिभाषा

विभक्ति के स्वरूप को प्रमाणित करती है–

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्।।

ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त कतिपय पारिभाषिक शब्दों का पूर्णस्वरूप प्रातिशाख्यों में प्राप्त होता है। प्रातिशाख्यों को व्याकरण का प्रारम्भिक रूप कहते हैं। यहाँ वर्ण विचार, स्वरविचार, संधि, पदपाठ, लोप, उपधा, आम्रेडित, अपृक्तादि का वर्णन है, जिनमें से अनेक को पाणिनीय व्याकरण में ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया गया है।

षड्वेदाङ्ग में शिक्षा और निरूक्त में भी व्याकरण विषयक सामग्री का उल्लेख किया गया है। यास्कीय निरूक्त में पद, नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात, भाव, सत्त्ववचन, कर्मोपसंग्रह, उपबन्ध, क्रमानुसार विभक्ति इत्यादि उल्लेख प्राप्त होते है। यहाँ प्रथम अध्याय में 'त्व' शब्द के (दृष्टव्यय होने पर) उदाहरण में त्वः त्वे त्वस्मै के वैदिक प्रयोग दिखलाये हैं। जिनमें प्रथमा तथा चतुर्थी विभक्तियाँ है। इसी प्रकार निरूक्त के सप्तम अध्याय में ऋचाओं के तीन भेद करते हुए परोक्षकृताः ऋचाओं का प्रयोग सभी सुप् विभक्तियों में दिखलाया गया है– तत्र परोक्षकृताः सर्वाभिर्नामविभक्तिभिः युज्यन्ते प्रथमपुरूषैश्च आख्यातस्य। भरतमुनि द्वारा किया गया निरूक्त का शास्त्रीय लक्षण इसकी कारकयुक्तता को सूचित करता है–

नानानामाश्रयोत्पन्नं निघण्टुनिगमान्वितम्।
धात्वर्थहेतुसंयुक्तं नानासिद्धान्तसाधितम्।।
स्थापितोऽर्थो भवेद्यत्र समासेनार्थसूचकः।
धात्वर्थवचनेनेह निरूक्तं तत्प्रचक्षते।।

अर्थात् अनेक प्रकार के नाम के आश्रय से उत्पन्न निघण्टु और निगम से अन्वित क्रिया और कारकयुक्त अनेक प्रकार के सिद्धान्तों से साधित, संक्षेप रूप से अर्थ का सूचक धात्वर्थवचन के द्वारा जो उपस्थापित किया जाता है, उसको निरूक्त कहते है।

आचार्य पाणिनि से प्राचीन 85 वैयाकरणों की सत्ता नाना ग्रन्थों में विकीर्ण उद्धरणों से मानी जाती है। नवव्याकरण और अष्टव्याकरण का भी उल्लेख प्राप्त होता है। व्याकरणों और वैयाकरणों की यह श्रृंखला आचार्य पाणिनि से पूर्व व्याकरण के पुष्पित और पल्लवित स्वरूप की परिचायक है। किन्तु संभवतः उसका स्वरूप उतना सूत्रबद्ध और नियमयुक्त नहीं था, जितना आचार्य पाणिनिकृत अष्टाध्यायी में देखने को मिलता है। ऐन्द्र व्याकरण का कारक और विभक्ति से सम्बन्धित कोई उद्धरण स्पष्ट रूप से अन्यान्य ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होता, लेकिन उसके विषय में अनेक संभावनाएँ व्यक्त की जाती है। ए.सी. बरनैल ने आचार्य पाणिनि द्वारा परिभाषित और अपरिभाषित संज्ञाओं का स्रोत ऐन्द्र व्याकरण को माना है।

इसी संदर्भ में अष्टाध्यायी के सूत्र चतुर्थी संप्रदाने (2.3.13) और प्रतिपदिकार्थ लिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा (2.3.46) में क्रमशः चतुर्थी और प्रथमा विभक्ति के प्रसंग में व्याख्या ग्रन्थों में उद्धृत 'प्राचाम्' पद से ऐन्द्र व्याकरण का ही ग्रहण किया गया है। इसी मत को बाटलिंक और गोल्डस्टूकर ने भी स्वीकार किया है।

भागुरि व्याकरण का कारकसम्मत एक उद्धरण प्राप्त होता है–

अपादानसम्प्रदानकरणाधारकर्मणाम्।
कर्तुश्चान्योऽन्यसन्देहे परमेकं प्रवर्तते।
इति भागुरिवचनमेव शरणम्।।

अन्यत्र भी कारक और विभक्ति विषयक भागुरि व्याकरण का उद्धरण मिलता है–

हन्तेः कर्मण्युपष्टम्भात् प्राप्तुमर्थे तु सप्तमीम्।
चतुर्थी बाधिकामाहुश्चूर्णिभागुरिवाग्भटाः।।

काशकृत्स्न व्याकरण के भी कतिपय उद्धरण प्राप्त होते हैं यथा–

भूते भव्ये वर्त्तमाने भावे कर्तरि कर्मणि
प्रयोजके गुणे योग्ये धातुभ्यः स्युः क्विबादयः।।
अकर्मकेभ्यो धातुभ्यो भावे कर्मणि यङ् स्मृतः।

वाक्यपदीय में सम्बन्ध के सन्दर्भ में अवांतर रूप में आचार्य व्याडि कृत संग्रह ग्रन्थ को उद्धृत किया है–

सम्बन्धस्य न कर्तास्ति शब्दानां लोकवेदयोः।
शब्दैरेव हि शब्दानां सम्बन्धः स्यात् कृतः कथम्।।

आपिशल व्याकरण को पाणिनि व्याकरण का उपजीव्य ग्रन्थ माना जाता है। यहाँ विभक्ति पद को उल्लिखित करते हुए विभक्त्यन्त को पद माना गया है। आचार्य पाणिनि भी इस आपिशलीय मत को स्वीकार करते है। अनेक व्याकरण ग्रन्थों में यह अपिशल सूत्र उद्धृत है–

अर्थ पदम् आहुरैन्द्राः, विभक्त्यन्तं पदमाहुरापिशालीयाः
सुप्तिङन्तं पदं पाणिनीयाः।

चतुर्थीविभक्ति विषयक पाणिनीय सूत्र मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु का आधार ग्रन्थ आपिशल व्याकरण ही माना जाता है। जैसा कि महाभाष्य की टीका प्रदीप में उद्धृत किया है– मन्यकर्मण्यनादर उपमाने विभाषाप्राणिष्वत्यापिशलिरधीते स्म जगदीशतर्कालंकार कृत शब्दशक्तिप्रकाशिका में इसी अपिशल मत को प्रस्तुत किया है–

सदृशस्त्वं तृणादीनां मन्यकर्मण्यनुक्तके।
द्वितीयावच्चतुर्थ्याऽपि बोध्यते बाधित यदि।।

इत्यापिशलेर्मतम्।

शब्दकौस्तुभ में भी इसे स्वीकार किया है– तथा चापिशलिरपि मन्यकर्मण्यनादर उपमाने विभाषाऽप्राणिष्विव त्यसूत्रयत्। अन्यत्र भी यह विभिन्न ग्रन्थों में स्वीकार किया गया है–

मन्यतेरनादरार्थात् कर्मोपमानाच्चतुर्थी
वा न तु काकादेः।
मन्यकर्मणि चानादरेऽप्राणिषु।

इस प्रकार अपिशल व्याकरण में उद्धृत कतिपय संज्ञाओं को पाणिनि व्याकरण में पूर्णरूपेण स्वीकार कर लिया गया है। विभक्ति विषयक कतिपय मत अपिशल व्याकरण से संग्रहित किये गए है।

आचार्य पाणिनि से पूर्व के ग्रन्थों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है, कि कारक और विभक्ति की अवधारणा अति प्राचीन है। वेदों में कारक संज्ञा का तो स्पष्टतया उल्लेख नहीं है, किन्तु विभक्ति संज्ञा का उल्लेख प्राप्त होता है और साथ ही मंत्रो में अभिव्याप्त कारकनियमानुसारी प्रयोग कारक की सत्ता को प्रमाणित करते है। ब्राह्मणग्रन्थों में और अधिक स्पष्टरूप से व्याकरणपरक परिभाषिक शब्दों का उल्लेख मिलता है। जिसमें विभक्ति संज्ञा भी उद्धृत है। निरुक्त आदि ग्रन्थों तथा आचार्य पाणिनि से पूर्ववर्ती व्याकरण ग्रन्थों में भी कारक और विभक्ति की सत्ता के उल्लेख प्राप्त होते है

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा। कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः।*
2. *पा शि0 42 – शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणं स्मृतम्। तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।*
3. *पा. धातु. तनादि 1472*
4. *ण्वुल्तृचौ (3.1.133), कर्तरि कृत् (3.4.67)*
5. M.M.W. P. 274- Making, Doing, Acting who or what does or produces or Croats.
6. Karakahnika - Panini's Karaka theory, P.3 – Panini has no defined the term karaka, still he has delimeted the domain of the designation by restricting its application to six varieties of which are enumerated.
7. अष्टा 1.4.23, 2.3.7, 3.3.19, 6.2.139, 148, 6.3.99, 8.1.51
8. *पा0 धातु भ्वादि, भज सेवायाम् 998*
9. *स्त्रियां क्तिन् 3.3.94*
10. M.M.W. P 977 – case (According to Panini) a termination or inflection either of a case or of the parson of a tense, certain taddhita affixes which are used like case termination have also the name vibhakti.
11. *विभक्तिश्च 1.4.104*
12. *स्वौजसमौट् 4.1.2*
13. *तिप्तस्झि 3.4.78*
14. *अष्टा. 1.1.38, 1.2.44, 64, 1.3.4, 1.4.104, 2.1.6, 5.3.1, 6.1.168, 6.3.132, 7.1.73, 7.2.84, 8.4.11*
15. *ऋग्. 4.58.3*
16. *म. भा. 1.1.1, भाग 1., पृ. 40*
17. *ऋग् 8.69.12*
18. *सं व्या. का उद्. वि. पृ. 24*
19. *अधिशीङ्स्थासां कर्म (1.4.46)*
20. *स्पृहेरीप्सितः (1.4.36)*
21. *भीत्रार्थानां भयहेतुः (1.4.25)*
22. *यस्य च भावेन भावलक्षणम् (2.3.37)*
23. *पञ्चम्यपाङ्परिभिः (2.3.10)*
24. *मै. सं. 1.7.3*
25. *अथर्व. 1.1.1*
26. *तत्रैव 20.42.1*
27. *ऐ. ब्रा. 7.7*
28. *गो. ब्रा. 1.1.24*
29. *तत्रैव 1.1.26*
30. *नि. पृ. 86 पर पदटिप्पणी 2 से उद्धृत*
31. *तत्रैव 1.3.8, पृ. 15*
32. *तत्रैव 7.1.1, पृ. 224*
33. *नाट्य. 6.13, 14*
34. *सं. व्या. शा. इति, भाग 1, पृ. 67–68, एवं 71–77*
35. *तत्रैव पृ. 68–69, व्याकरणमष्टप्रभेदम्*
36. *रामायण 7.36.47 सो यं नवव्याकरणार्थवेत्ता*
37. *On the Aindra school of Sanskrit Grammarains,Their place in the subordinate literature, p 21*
38. *तत्रैव पृ. 22*
39. *सं. व्या. शा. इति., भाग 1, पृ. 107 से उद्धृत*
40. *तत्रैव पृ. 107*
41. *तत्रैव पृ. 132 से उद्धृत*
42. वा. प. 1.26 से उद्धृत
43. सं. व्या. शा. इति भाग 1, पृ. 151 से उद्धृत
44. अष्टा. 2.3.17
45. म. भा. 2.3.1, भाग 2, पृ. 500
46. सं. व्या. शा. इति, भाग 1, पृ. 154 से उद्धृत
47. श. कौ. 2.3.17, भाग 2, पृ. 229
48. आचार्य आपिशल की कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ. 53 से उद्धृत
49. कातन्त्र 2.4.25

राजस्थान में आदिवासी आंदोलन

shodhshree@gmail.com

भगवान सिंह शेखावत
सहायक आचार्य, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

शोध सारांश

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के महायज्ञ में आदिवासियों का योगदान अतुलनीय है। राजस्थान में स्थानीय सामन्तवाद व ब्रिटिश साम्राज्यवाद के मध्य अपवित्र गठबंधन का प्रतिरोध मेर, भील व मीणाओं ने किया। भील आदिवासी आंदोलन को व्यापक व संगठित स्वरूप देने का श्रेय गोविन्द गुरु को जाता है जिसे नया आयाम मोतीलाल तेजावत के एकी आन्दोलन ने दिया जिसका प्रभाव मेवाड़ रियासत से बाहर गुजरात व राजपूताना की अन्य रियासतों में भी होने लगा राजस्थान की सबसे बड़ी जनजाति मीणाओं के आन्दोलन का नेतृत्व जैन मुनि मगनसागरजी ने किया। इस तरह आदिवासी आंदोलन से सामाजिक गतिशीलता प्रारंभ हुई साथ ही स्वतंत्रता संघर्ष की मशाल भी क्रमशः आगे बढ़ी।

संकेताक्षर : भोमट, सम्पसभा, जरायमपेशा, भगत पंथ, एकी आंदोलन, सामन्तवाद, उपनिवेशवाद।

भूखे की हड्डी से वज्र बनेगा भयंकर
ऋषि दधिची को ईर्ष्या होगी, नेत्र खोलेंगे शंकर
अन्तविहीन उदर की आहें दावानल सी बनकर भीषण
भस्मीभूत कर देगीं उनको जो दीनों का करते शोषण

– जयनारायण व्यास

राजस्थान में राजनीतिक जन–चेतना एवं स्वातंत्र्य संघर्ष में आदिवासी आंदोलन का अप्रतिम योगदान रहा है। ये आंदोलन पूर्णतया अहिंसक थे तथा स्वतः स्फूर्त थे। प्रारम्भ में अपने परम्परागत अधिकारों के उल्लंघन के कारण ये आंदोलन प्रारम्भ हुए, जिनके बाद में कुशल नेतृत्व के हाथों में जाने से व्यवस्थित रूप ले लिया, तथा आगे चलकर भावी राजनीतिक आंदोलन के प्रेरणा स्त्रोत बने। राजस्थान में स्थानीय सामन्तवाद व ब्रिटिश साम्राज्यवाद के मध्य अपवित्र गठबंधन का प्रतिरोध मेर भील व मीणाओं ने किया।[1]

गोविन्द गुरू व भगत आंदोलन

दक्षिणी राजस्थान में भील परम्परावादी आदि समुदाय निवास करता रहा है। कर्नल जेम्स टॉड़ ने भीलों को 'वनपुत्र' कहा है। राजपूत शासकों ने उन्हें धरती ''आदि अधिभोक्ता'' के रूप में मान्यता दी। भीलों ने मेवाड़ में गुहिलोत शासकों की उल्लेखनीय सेवाऐं की जिनके बदले डूंगरपुर, बांसवाड़ा व देवलिया जैसे कस्बों का नामकरण भील शासकों के नाम पर किया गया।[2]

पहाड़ी अंचल का निवासी भील समुदाय स्वाभाविक रूप से स्वतन्त्रता प्रेमी रहा है। 13 जनवरी, 1818 में मेवाड़ राज्य ने कम्पनी के साथ सन्धि की, उसके अनुसार राज्य के सभी बाह्य मामलें कम्पनी को सौंप दिये। अपवाद स्वरूप कुछ मामलों में अंग्रेजों को राज्य के आन्तरिक मामलों में भी हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त था। इसी प्रकार भील व गरासिया बहुल डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़ व सिरोही ने कम्पनी के साथ क्रमशः 11 दिसम्बरख 1818, 25

दिसम्बर 1818, 5 अक्टूबर 1818 व 11 सितम्बर 1823 को सन्धियाँ की। इन संधियों के कई प्रावधान भील अधिकारों के विरूद्ध थे। मेवाड़ रियासत व कंपनी की संधि के बाद जब देशी सेनाओं को भंग कर दिया जिससे सैकड़ों भील सैनिक बेरोजगार हो गए। इस पर दौला काका उर्फ दौलजी खींची ने सर्वप्रथम विद्रोह किया, यह विद्रोह तब चरम सीमा पर पहुँच गया जब ''रुखाली कर'' (गावों की चौकीदारी) व भौलाई कर (यात्रियों की सुरक्षा) समाप्त कर दिए गए।

भील लोक गीतों में दौला काका के योगदान का वर्णन इस तरह है :-

रई नैं कैवां बोले – दौला काकाजी
कुण रावजी बाजै – ठाकर दौलाजी
जवास वाली गादी – ठाकर दौलाजी
भगां रो राज करै – ठाकर दौलाजी
दौलौ भीलां नुं राजा – ठाकर दौलाजी –[3]

भील आदिवासी आंदोलन को व्यापक व संगठित स्वरूप देने का श्रेय गोविन्द गुरू को जाता है। गुरू का जन्म 20 दिसम्बर, 1874 को डूंगरपुर रियासत के बांसिया गाँव में एक सामान्य बँजारा परिवार में हुआ। संयमित जीवन के कारण लोग उन्हें ''गुरू'' कहने लगे। गुरू पर स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारों का भी सकारात्मक प्रभाव पड़ा। गोविन्द गुरु के जीवन में मोड़ आया जब पत्नी व पुत्रों का स्वर्गवास हो गया, इस पर गुरु अध्यात्म की ओर प्रेरित हुए तथा अपना जीवन पीड़ित व शोषित जनसाधारण हेतु न्यौछावर करने का संकल्प लिया। गुरू ने ''संप सभा'' (अर्थ-मेल मिलाप, प्रेम, एकता) जो वस्तुतः सामाजिक व आध्यात्कि संगठन था, के माध्यम से डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, सिरोही, ईड़र व गुजरात-मालवा के भीलों को संगठित किया व सामाजिक व राजनीतिक जनचेतना का प्रसार किया जिसे डूंगरपुर रियासत ने स्वयं के लिए बाधा समझा।

गुरु ने बैठ-बैगार, रियासतों की आबकारी नीति, भू राजस्व व्यवस्था का विरोध किया। गुरू ने ''भगत पंथ'' की स्थापना पर शिक्षा हेतु भीलों को प्रेरित किया व सामाजिक बुराईयों का डटकर विरोध किया। डूंगरपुर रियासत व अंग्रेजों को यह लगा कि गुरू की राजनीतिक महत्वकांक्षा है तथा वह ''भील राज्य'' की स्थापना करना चाहता है। अप्रेल 1913 में डूंगरपुर राज्य द्वारा पहले गिरफ्तार और फिर रिहा किये जाने के बाद गुरू अपने समर्थकों के साथ माही नदी के पास मानगढ़ की पहाड़ी पर चले गये। प्रति वर्ष इस पहाड़ी पर मार्गशीर्ष पूर्णिमा को वृहद् मेला लगना प्रारंभ हो गया। रियासती प्रशासन ने इसकी जानकारी ए.जी.जी. को दी साथ ही सैनिक सहायता भी मांगी। नवम्बर 1913 को मार्गशीर्ष पूर्णिमा को जलियांवाला बाग हत्याकांड़ से वीभत्स व बर्बर नरसंहार हुआ जिसमें 1500 भील शहीद हुये। गुरू को गिरफ्तार कर लिया गया, 10 वर्ष की सजा दी गई व वागड़ प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया गया। लीम्बड़ी के पास कम्बोई गाँव में साधारण कृषक के रूप में गुरू ने अपने अन्तिम दिन बिताये।

मानगढ़ पहाड़ी का वर्णन भील लोक गीतों में इस प्रकार है –

रई ने कैवुं बौले रै – मानगढ़ माथे धुमाल करै
हां सु अेक गुरु नै बे चेला – मानगढ़ माथे धुमाल करै[4]

भील आंदोलन पर महात्मा गांधी व उनके सत्याग्रह आधारित आंदोलन का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा जो लोकगीतों में दृष्टव्य है :-

रई ने कैवां बोलै रै – गांधी हई आवै
धोली ने टोपी रौ – गांधी हई आवै
लांबा नै कुरता रौ – गांधी हई आवै
अेक धोतियु पेरियूं – गांधी हई आवै
गुलामी नीं करवीं – गांधी हई आवै
राम कैहतो आवै – गांधी हई आवै
राज लैतो आवै – गांधी हई आवै
मिटिंग करतौ आवै – गांधी हई आवै
भाषण दैतो आवे – गांधी हई आवै
भारत आजाद करतौ आवै – गांधी हई आवै[5]

मोतीलाल तेजावत व एकी आन्दोलन

गोविन्द गुरु के पश्चात, मोतीलाल तेजावत ने आदिवासियों के अंधविश्वास, कुरीतियों पर प्रहार किया, साथ ही रियासती शासन-प्रशासन के जनविरोधी नीतियों का भी डटकर विरोध किया। तेजावत का जन्म वर्तमान उदयपुर जिले के झाड़ोल के पास कोल्यारी गाँव में एक ओसवाल परिवार में (ज्येष्ठ शुक्ल, एक, संवत् 1944 ई. 1888) हुआ। प्रारभ में तेजावत ने ठिकाना झाड़ोल में कामदार के रूप में कार्य किया। परन्तु जनसामान्य पर रियासती अत्याचारों से क्षुब्ध होकर आपने ठिकाने की नौकरी छोड़ अपना जीवन जनसामान्य हेतु लगाने का निश्चय किया।

आदिवासियों के उत्पीड़न की मर्मान्तक वेदना को अपनी डायरी में लिखा, इसके कुछ अंश निम्न हैं –

''उन दिनों सामन्तशाही राजा, महाराजा, इनके ऑफिसर, सिपाही और जागीरदारी जुल्म का सोलह आना बोलबाला था, सिफारिश, घुसखोरी और जबान को ही जनता के लिए कानून बना रखा था, अत्याचारी अहलकार और जुल्मी जागीरदार निजि स्वार्थ के लिए जनता को हैरान, परेशान और तबाह करते थे।''[6]

श्री तेजावत ने अपनी डायरी में अनेक प्रत्यक्षदर्शी प्रमाण दिये हैं उन्होंने उत्पीड़न की शिकार व्यक्तियों की लम्बी सूची दी है। तत्कालीन मेवाड़ में तीर्थस्थलों पर मेलों के आयोजन की परम्परा थी, जहाँ सभी वर्ग–जाति के लोग एकत्रित होते थे। चित्तौड़गढ़ जिले के मातृकुण्ड़ियाँ नामक तीर्थ स्थल पर प्रति वर्ष वैशाखी पूर्णिमा के पावन पर्व पर प्राचीन समय से मेला लगता रहा है, जहाँ मुख्य शिव मंदिर के अतिरिक्त अन्य देवताओं के भी मन्दिर हैं।

1921 में तेजावत अपने साथियों के साथ इस मेले में पहुँचे। जहाँ तेजावत के नेतृत्व में सर्वसम्मति से निर्णय हुआ कि बैठ–बैगार, लगान व अन्य करों के विरूद्ध संघर्ष किया जाए साथ ही यह निर्णय लिया गया कि इन समस्याओं को महाराणा के सम्मुख प्रस्तुत किया जावें तथा जब तक इनका समाधान न हो, तब तक लगान न दिया जावें।

''एकी'' आन्दोलन का मुख्य उद्‌देश्य अशिक्षित आदिवासियों में पूर्ण एकता स्थापित कर शोषण का मुकाबला करना था। तेजावत ने गुप्त तरीके से भोमट क्षेत्र (स्थानीय भौगोलिक नाम) में आन्दोलन के उद्‌देश्यों का प्रचार किया। तेजावत ने किसानों एवं वनवासियों की समस्या का संकलन कर 100 कलमों के आधार पर 21 सूची मांग पत्र तैयार किया गया, भारी दबाव के कारण महाराणा को 18 मांगे तत्काल मानने की घोषणा करनी पड़ी।

तेजावत की बढ़ती लोकप्रियता के कारण उनकी हत्या की भी योजना बनाई जो असफल रही। इस दौरान तेजावत ने ''मेवाड़–पुकार'' नामक पुस्तक भी लिखी जिसमें आदिवासियों की मांगों का वर्णन था।

''एकी'' आन्दोलन का प्रभाव अब मेवाड़ रियासत से बाहर गुजरात व राजपूताना की अन्य रियासतों में भी होने लगा।

''एकी आन्दोलन'' के तहत गुजरात की विजयनगर तहसील में स्थित पालछितरियां गाँव में 7 मार्च 1922 में शांतिपूर्ण जनसभा पर 'भील कोर रेजीमेन्ट ने निरीह आदिवासियों को गोलियों से भून दिया जिसमें 1200 निःशस्त्र व्यक्ति मारे गए व स्वयं तेजावत घायल हो गए। इस घटना पर महात्मा गांधी ने भी कठोर प्रतिक्रिया दी[7] इसके बाद तेजावत 7 वर्ष तक भूमिगत रहे। 1929 में उन्हें बन्दी बना लिया गया व 1936 में वह जेल से बाहर आये। 1942 की अगस्त क्रांति में तेजावत ने सक्रिय रूप से भाग लिया जिस पर पुनः जेल जाना पड़ा। स्वतन्त्रता के पश्चात् अपनी मृत्यु 5 दिसम्बर, 1963 तक आदिवासियों से निरन्तर सम्पर्क रखा तथा उनके उत्थान का प्रयास करते रहे।[8] वास्तव में तेजावत आजादी के ऐसे दीवाने थे जिन्होंने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया, दिल दहलाने वाले सामंती अत्याचार का जिस प्रकार लोहा लिया आज भी कल्पना कर मन सिहर जाता है । यह कर्मठ भील नेता तो आदिवासी समाज का ''मोती बावजी'' हो गया।[9]

खोज्या पानां ख्यात रा, नेता राजस्थान।
तेजावत सम न मिलयौ, जात रैत रो प्राण।।
भण्या सुण्या देख्या घणा नेतावां रा हाल।
मिलयौ न मोतीलाल सौ अणदागल अहवाल।।
चाकर जात अर रैत रौ मेदपाट रौ मान।
तेजावत तप सू बन्यौ जनजाति रौ प्राण।।[10]

बलवंत सिंह मेहता

मीणा जनजाति द्वारा आंदोलन

राजपूताना की सबसे बड़ी जनजाति मीणाओं का सर्वप्रथम आंदोलन 1851 में उदयपुर राज्य के जहाजपुर परगने में हुआ11 रियासती प्रशासन ने ए. जी.जी. की सहायता से इस विद्रोह को दबा दिया जिसमें 6 लोगों को तोप से उड़ा दिया व भारी संख्या में मीणाओं को गिरफ्तार किया।

जयपुर राज्य में 1924 में पारित क्रिमिनल क्राइम्स एक्ट तथा 1930 में मीणाओं की थानों में अनिवार्य हाजरी देने के कानून के विरोध में मीणा महासभा तत्पश्चात् 1944 में जैन मुनि मगनसागर जी के नेतृत्व में नीमकाथाना में वृहद, मीणा अधिवेशन हुआ। अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद (अध्यक्ष पं. नेहरू) ने मीणाओं की मांग का समर्थन किया, परिणामस्वरूप थानों में अनिवार्य उपस्थिति की बाध्यता को समाप्त करना पड़ा परन्तु जरायम पेशा अधिनियम स्वतन्त्रता प्राप्ति पश्चात् ही रद्द हो पाया।

सुस्पष्ट है राजस्थान में आदिवासी आन्दोलन सामाजिक

गतिशीलता व परिवर्तन का वाहक रहा है। राजस्थान में बिट्रिश सर्वोच्चता की स्थापना के पश्चात् जनजाति समाज ने सामन्तवाद व उपनिवेशवाद दोनों का डटकर मुकाबला किया, जो भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष का प्रेरणादायी अध्याय है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *राजस्थान में आदिवासी व किसान आंदोलन – डॉ. बृजकिशोर शर्मा*
2. *स्वाधीनता संग्राम में राजस्थान की आहुतियाँ, डॉ. कन्हैयालाल राजपुरोहित*
3. *आजादी री अलख – मूलदान देपावत, प्रकाश अमरावत, पृष्ठ सं. 70*
4. *वही, पृष्ठ सं. 72*
5. *वही, पृष्ठ सं. 76*
6. *भील क्रान्ति के प्रणेताः मोतीलाल तेजावत, प्रेमसिंह, पृष्ठ 22*
7. *वही, पृष्ठ 49*
8. *मोतीलाल तेजावत व एकी आन्दोलन, डॉ. के.एस. गुप्ता*
9. *मोतीलाल तेजावत, रामकृष्ण शर्मा, पृ. 14*
10. *स्वाधीनता संग्राम में राजस्थान की आहुतियाँ, डॉ. कन्हैयालाल राजपुरोहित, पृष्ठ 171*
11. *राजस्थान में आदिवासी व किसान आंदोलन, डॉ. ब्रजकिशोर शर्मा, पृष्ठ 9*

स्वतंत्र भारत में भुखमरी का खाद्य सुरक्षा के संदर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन

shodhshree@gmail.com

डॉ. अरुण प्रभा चौधरी
पूर्व प्रोफेसर, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

लक्ष्मीनारायण
शोधार्थी, कॉलेज शिक्षा, जयपुर

शोध सारांश

किसी समाज की खुशहाली एवं समृद्धि उस देश के स्वास्थ्य से जुड़ी होती है। जब हम स्वास्थ्य की बात करते हैं तो माताओं और शिशुओं का सम्बन्ध सबसे पहले आता है। जिसे देश में प्रतिवर्ष नवजात शिशुओं और प्रसव के दौरान माताओं की मृत्यु दर लाखों में हो, उसे खुशहाल नहीं कहा जा सकता है। भारत में भुखमरी बहुत ज्यादा है। बच्चों का बौनापन एक ऐसी समस्या है, जो मानव पूंजी, गरीबी, असमानता और न्याय सभ्यता पर दूरगामी प्रभाव डालता है। इसके कारण बच्चे उम्र के अनुसार शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते है और आगे भविष्य में उनके व्यावसायिक अवसरों में अवरोध उत्पन्न करता है। भुखमरी की समस्या का निराकरण करना हमारे हाथ में है। हमें उस स्तर के प्रयास करने की जरुरत है। देश में स्वास्थ्य सेवाओं को सुदूर–दूरस्थ गांव–देहात तक पहुंचाना होगा और देश के हर नागरिक को समय पर पर्याप्त चिकित्सा सुविधा की व्यवस्था करनी होगी। प्रत्येक राष्ट्र के जीवनकाल में ऐसे क्षण आते हैं, जिनका भरपूर फायदा उठाकर एक लम्बी सीढ़ी पर चढ़ाई की जा सकती है। भारत के लिए यही वह सुअवसर है।

संकेताक्षर : *खाद्य सुरक्षा, भुखमरी, कुपोषण, शून्य भुखमरी एवं राष्ट्रीय पोषण मिशन।*

भूख, भूखमरी, अल्पपोषण एवं कुपोषण वर्तमान में सर्वाधिक वैश्विक चर्चा के मुद्दे है। ये मनुष्य के स्वास्थ्य से जुड़े हुए है जिसकी चर्चा मिलेनियम डवलपमेंट गोल एवं सस्टेनेबल डवलपमेट गोल में की गई है। संयुक्त राष्ट्र के घटक विश्व स्वास्थ्य संगठन एवं खाद्य व कृषि आयोग भी चिंतित है। ये मानवाधिकारों से जुड़े हुए है इसलिए संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकारों के घोषणा पत्र में उचित स्थान दिया गया है। भूख एवं भूखमरी मानव की खाद्यान्नों तक पहुँच, उपलब्धता अथवा स्थायित्व में असुरक्षा को दर्शाता है। व्यक्ति को पर्याप्त खाद्यान्नों का नहीं मिलना, पोषक तत्वों की कमी होना अथवा अपौष्टिक खाद्यान्नों तक असतत् पहुँच भूख कहलाती है। ऐसी स्थिति दीर्घकाल में परिवर्तित हो जाती है तो भुखमरी कहलाती है। भूख, भुखमरी एवं कुपोषण अन्तर सम्बन्धित विषय वस्तु है जिसे अलग–अलग नहीं देखा जा सकता है। विश्व खाद्य कार्यक्रम का अनुमान है कि विश्व में 82 मिलियन अल्पपोषित लोग है जिसका अर्थ प्रत्येक नौ में से एक व्यक्ति खाद्यान्नों तक पहुँच के अभाव में भूख रहता है ऐसे अधिकांश लोग विकासशील देशों में है वे ऐसे देश है जो लबें समय तक उपनिवेश रहे, विकास की प्रक्रिया में निवेश की कमी के कारण शामिल नहीं हो पाए , यहां अशिक्षा एवं स्वास्थ्य पर कम ध्यान दिया, संसाधनों का पर्याप्त उपयोग नहीं हो पाने अथवा आजीविका के अभाव में निर्धनता एवं भुखमरी से ग्रसित है।

भूखमरी की स्थिति खाद्यान्नों के अभाव के कारण नहीं होती है बल्कि खाद्यान्नों तक अपर्याप्त पहुंच के कारण होती है। गरीबों, शोषितों, पीड़ितों एवं वंचितो के लिए खाद्यान्नों तक पहुंच का रास्ता सामाजिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक बाधाओं के कारण अवरूद्ध रहता है। स्थानीय एवं राज्य स्तर पर अक्षम प्रशासन तथा उदासीन सरकारें गरीबों एवं सीमान्त वर्गो के लिए कार्यक्रम एवं योजनाओं का निर्माण तो करती है लेकिन क्रियान्वयन नहीं कर पाती है। पूर्व

अमेरिकी राष्ट्रपति जॉन एफ कैनेडी का वक्तव्य है कि ''भूख के खिलाफ जंग ही मानवता को आजादी की वास्तविक जंग है। आज स्वतंत्रता के 70 वर्षो के उपरान्त भी मानवता के लिए भोजन तक पर्याप्त पहुंच उपलब्ध नहीं करवा सके। बच्चों एवं महिलाओं, वृद्धजन एवं दिव्यांगो के लिए भूख एवं कुपोषण का स्तर अत्यन्त चिन्ताजनक है।

भूखमरी अपर्याप्त खाद्यान्नों एवं पोषण के अभाव में होती है। सम्पूर्ण विश्व इस समस्या से ग्रसित है। सन् 2000 में सयुंक्त राष्ट्र द्वारा मिलेनियम डवलपमेंट गोल के 8 लक्ष्यों में प्रथम भूख एवं गरीबी को हटाना था इसके लिए बहुआयामी रणनीतियों, योजनाओं एवं कार्यक्रमों को अपनाया गया लेकिन निर्धारित लक्ष्यों को 2015 तक पूर्णरूपेण प्राप्त नहीं कर सके। वर्ष 2015 में एजेड़ा–2030' के द्वारा धारणीय विकास लक्ष्यों के अन्तर्गत भूखमरी को समाप्त करना, खाद्य सुरक्षा एवं बेहतर पोषण स्तर को प्राप्त करना तथा धारणीय कृषि को प्रोत्साहन देना शामिल है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. स्वतंत्र भारत में भुखमरी की अवधारणा के प्रति समझ विकसित करना।
2. वर्तमान भुखमरी के स्तर का विश्लेषण करना।
3. भुखमरी के कारणों एवं सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयासों की समीक्षा करना।

अध्ययन की विधि

भारत में भुखमरी का अध्ययन हेतु द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग किया गया है। अध्ययन के विश्लेषणत्मक एवं अन्वेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। द्वितीय आंकड़े सरकारी प्रकाशनों, रिपोर्ट एवं आर्थिक समीक्षा के लिए है।

शोध साहित्य की समीक्षा

डाईट्ज एण्ड ट्रोब्रिज (1990) के अनुसार भूख भोजन की कमी की सहज एवं दुखद संवेदनाओं को व्यक्त करती है। यह खाद्यान्नों तक अनैच्छिक पहुंच तथा बार–बार उत्पन्न होने वाले आवरोध को दर्शाता है। लबें समय तक भूख से कुपोषण हो सकता है। जिसे खाद्य असुरक्षा के परिणामस्वरूप होता है।

एलेन (1990) के अनुसार भूख बार–बार खाद्यान्नों तक पहुंच की कमी को दर्शाता है, यह पहुंच की कमी की अनैच्छिक अवस्था है। अधिक समय तक भूख के कारण कुपोषण से ग्रसित हो सकता है। भूख, वर्तमान में खाद्यान्नों की कमी की मनोवैज्ञानिक दशाओं को व्यक्त करता है ऐसी स्थिति जब आती है जब एक बालक भोजन से वंचित रह जाता है।

सीसीएचआईपी (1991) ने भूख को ऐसी मनोवैज्ञानिक एवं शारीरिक दशाओं के रुप में परिभाषित करता है जिसका कारण अपर्याप्त आर्थिक, पारिवारिक एवं सामुदायिक संसाधनों का होना है। इसलिए व्यक्ति को पर्याप्त भोजन नहीं कर पाता है। इसमें संसाधनों की कमी के कारण खाद्यान्नों का उपयोग नहीं कर पाने के तौर पर परिभाषित किया गया है। ऐसी स्थिति जिसमें संसाधनों की असुरक्षा होती है जिससे खाद्यान्न प्राप्त कर सके, खाद्यान्न कैलोरी की अपर्याप्तता, वास्तविक खाद्यान्नों की कमी और प्रतिबंधित एवं अपर्याप्त संसाधनों के कारण खाद्यान्नों के उपभोग के तरीकों में परिवर्तन होता है।

कोहेन (1990) भूख को एक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करता है यह अचानक उत्पन्न होने वाली समस्या नहीं है बल्कि घटनाओं की एक लम्बी श्रृंखला है जो खाद्यान्नों तक पहुंच में बाधा उत्पन्न करती है। एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें लोगों की भूख की जोखिम होती है, समस्या से उबरने का प्रयास करता है, और स्वास्थ्य एवं सामाजिक परिणामों के विभिन्न कारणों से प्रभावित होता है।

ओस्लन एण्ड कैम्पबेल (1990) के अनुसार भूख, सामाजिक रूप से स्वीकार्य खाद्यान्नों की पर्याप्त मात्रा और गुणवत्तापूर्ण उपभोग करने अथवा प्राप्त करने की अयोग्यता को व्यक्त करता है अथवा ऐसा करने की अनिश्चितता को दर्शाता है।

लिनवाड (1985) ने भूख को सामान्य शब्दों में भोजन की लालसा के रूप में परिभाषित किया जाता है हमें समय पर भोजन की लालसा उत्पन्न होती है और हम भूख का अनुभव करते है। फिर भी भूख का अर्थ लम्बी दशा तक व्यक्ति को भोजन से दूर रखने से है। जो लोग भूखे होते है वे अपनी पेट की भूख शान्त करने हेतु खाना खाने का प्रयास करते है।

भूखमरी का समग्र अध्ययन

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत जीवन जीने के अधिकार के अन्तर्गत सम्मान एवं गरीमा के साथ जीवन व्यतीत करना शामिल है जो पर्याप्त एवं पोषणयुक्त खाद्यान्नों से ही संभव है। परन्तु भारतीय संविधान भोजन के अधिकार के मौलिक अधिकार के बतौर पर समाहित नहीं करता है। संविधान इसे नीति निर्देशक तत्वों के अनुच्छेद 47 में शामिल करता है जिसका अर्थ है कि राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्र के लोगों के बेहतर एवं सम्मानित जीवनयापन हेतु पोषण को बढ़ावा दे। राज्य द्वारा पोषण को बढ़ावा देने

से कुपोषण एवं भूखमरी की समस्या का स्वतः समाधान सुनिश्चित है।

संविधान का अनुच्छेद 48 भूखमरी एवं कुपोषण के निवारण हेतु राज्य को कृषि को प्रोत्साहित करने की वकालत करता है। स्वस्थ एवं धारणीय कृषि द्वारा पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक खाद्यान्नों की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकती है।

भारत की वैश्विक भुखमरी सूचकांक में स्थिति

वैश्विक भूखमरी सूचकांक 2019 वैश्विक स्तर पर भूखमरी की गणना सर्वप्रथम 2006 में वैश्विक भुखमरी सूचकांक बनाकर प्रांरभ की गई। इस सूचकांक के चार संकेतक है। जो निम्नलिखित है–

1. अंडर न्यूट्रीशन– जनसंख्या का वह भाग जिसका कैलोरी उपभोग अपर्याप्त है।
2. चाइल्ड वेस्टिंग– पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चों का वह भाग जिनकी लम्बाई की तुलना में भार कम है।
3. चाइल्ड स्टटिंग– पाँच वर्ष के बच्चों का वह भाग जिनकी उम्र की तुलना में लंबाई कम है।
4. चाइल्ड मोर्टेलिटी– पाँच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर।

इस रिपोर्ट का स्कोर 0–100 के बीच होता है। 0 स्कोर पूर्णरुप से भूखमरी से मुक्त स्थिति को दर्शाता है जबकि 100 अत्यन्त गंभीर भूखमरी को दर्शाता है।

वैश्विक भूखमरी सूचकांक को वार्षिक स्तर कन्सर्न वर्ल्डवाइड तथा वेल्थहंगर हिल्फे के साथ इन्टरनेशनल फूड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट द्वारा जारी किया जाता था। हाल ही में वैश्विक भुखमरी सूचकांक जारी करने से आईएफपीआरआई अलग हो गया है।

वैश्विक भूखमरी सूचकांक 2019 की थीम ''भूखमरी एवं जलवायु परिवर्तन'' की चुनौती है। इस रिपोर्ट का मुख्य उद्देश्य एजेडा 2030 के द्वारा भूखमरी की समाप्ति के धारणीय विकास लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में प्रगति करना एवं बाधा उत्पन्न करने वाली खामियों का मूल्याकंन करना है। इस सूचकांक का निर्माण राष्ट्रीय, क्षेत्रीय एवं वैश्विक मानदण्डों एवं तौर तरीकों से निर्मित किया गया है।

सारणीः भारत की वैश्विक भूखमरी सूचकांक में रैंक

क्र.सं	वर्ष	रैंक	मूल्य	चीन
1.	2019	102/117	30.3	6.5 (25)
2.	2018	103/119	31.1	7.6 (25)
3.	2017	100/119	31.4	7.5 (29)
4.	2016	97/118	28.5	7.7 (29)
5.	2015	80/104	29.0	8.6 (21)
6.	2014	55/76	17.8	5.4 (5)
7.	2013	63/78	21.3	5.5 (6)
8.	2012	65/79	22.9	5.1 (2)

स्रोत : वैश्विक भूखमरी सूचकांक रिपोर्ट

117 देशों के भूखमरी सूचकांक जीएचआई के अन्तर्गत भारत की 102 वीं रैक है। तुलनात्मक तौर प्रगति की बात की जाए तो भारत ने भूखमरी के सूचकांक में 2000–38.8, 2005–38.9, 2010–32.0 तथा 2019–30.3 निरन्तर प्रगति की है लेकिन रैंक में स्थिरता अथवा नीचे खिसकता गया है।

वर्ष 2000 में भारत का जीएचआई मूल्य 38.8 था जो भारत को खतरनाक श्रेणी के अन्तर्गत शामिल किया गया था। वहीं 2018 क अन्तर्गत जीएचआई मूल्य 31.1 रहा जो गंभीर श्रेणी में शामिल हुआ अतः थोडी मात्रा में प्रगति हुई है। सुधारों का तुलनात्मक अध्ययन निम्नलिखित है–

- ➢ भारत की कुल जनंसख्या में अल्पपोषित लोगों का प्रतिशत 2000 में 18.2 प्रतिशत था जो 2018 में घटकर 14.8 प्रतिशत हो गया है।
- ➢ शिशु मृत्यु दर 2000 में 9.2 प्रतिशत थी जो 2018 में घटकर 4.3 प्रतिशत हो गई।
- ➢ स्टंटिग 2000 में 54.2 प्रतिशत से घटकर 2018 में 38.4 प्रतिशत रह गया है।
- ➢ वेस्टिंग– 2000 में 17.1 प्रतिशत से बढ़कर 2018 में 21 प्रतिशत हो गया है। भारत में प्रत्येक पाँच बच्चों में से कम से कम एक बच्चा वेस्टिंग की समस्या से ग्रसित है।

भारत में भूखमरी की समस्या का कारण

भारत में भुखमरी की समस्या खाद्यान्नों की उपलब्धता की कमी के कारण नहीं है बल्कि खाद्यान्नों तक पहुंच के अभाव के कारण है खाद्यान्नों तक पहुंच क्रय शक्ति की कमी अथवा सभी क्षेत्रों में पर्याप्त वितरण नहीं होने के कारण हो सकती है। प्रायः खाद्यान्न आधिक्य से खाद्यान्न कमी वाले क्षेत्रों में परिवहन द्वारा पहुंचा कर उपलब्धता सुनिश्चित करनी होती है। खाद्यान्नों की कमी के कारण माँग एवं आपूर्ति में असन्तुलन होने से कीमतों में वृद्धि हो जाती है। जिससे सीमान्त वर्ग भूखमरी की ओर धकेल दिए जाते है कीमतों में वृद्धि के कारण अथवा आजीविका की अभाव की स्थिति में पोषक एवं सन्तुलित आहार पहुंच की सीमा से बाहर हो

जाते है। यह वर्ग दूध, मांस, फल, मछली, अंडा तथा दाल खरीदने में असमर्थ हो जाता है।

सरकार द्वारा भूखमरी के खिलाफ कई प्रभावशाली योजनाए चलाई जा रही है जैसे मिड डे मिल मनरेगा एवं खाद्य सुरक्षा अधिकार आदि। इन योजनाओं के सही क्रियान्वयन के लिए स्थानीय अवसंरचना, परिवहन एवं भंडारण तथा वितरण की नीतियों में बदलाव कर बेहतर तरीके से क्रियान्वयन करना होगा। हमें सार्वजनिक वितरण प्रणाली में निहित खामियों को दूर करके पुर्नगठित करना चाहिए।

मोटे तौर पर भूखमरी के कारण में निर्धनता, रोजगार एवं आजीविका का अभाव, क्रयशक्ति की कमी, खाद्यान्नों तक पहुंच का अभाव, अस्थायी तौर पर क्षेत्र विशेष में खाद्यान्नों के उत्पादन में कमी, सार्वजनिक नीतियों का क्रियान्वयन स्तर पर असफलता, देश की बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन प्रभावों के कारण उत्पादन में कमी एवं पारदर्शिता के अभाव के कारण सरकारी तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार उत्तरदायी है।

भूखमरी निवारण की चुनौतियाँ

- स्वतंत्रता के पश्चात भारत में भौतिक एवं सामाजिक अवसंरचना का विकास तेज गति से हुआ जिससे खाद्यान्नों के भण्डारण, परिवहन एवं खाद्य आपूर्ति बनाए रखने में सहूलियत हुई है। परन्तु आज भी जनसंख्या और आवश्यकता के अनुरूप कोल्ड स्टोरेज एवं भंडारण की कमी है जिससे हजारों टन पोषक तत्वों से युक्त खाद्यान्नों एवं फल–सब्जियाँ नष्ट हो रही है।
- भूखमरी को समाप्त करने के लिए पोषण संबंधी शिक्षा की जानकारी प्रदान की जा रही है परन्तु शिक्षा के अभाव के कारण लोगों तक पर्याप्त रूप में नहीं पहुंच पाई है। अतः इसमें तेजी लाने की आवश्यकता है।
- समाज के कृषकों विशेष रूप से भूमिहीन परिवारों, मजदूरों तथा छोटे एवं सीमान्त किसानों पर ध्यान देने की जरूरत है जो अस्थायी तौर पर खाद्य असुरक्षा की स्थिति से प्रभावित होते है। इन सभी के लिए आजीविका के पूरक पहलुओं पर जोर देना चाहिए।
- हमारा ध्यान गेहूं, चावल,ज्वार, बाजरा, रागी एवं मक्का के उत्पादन तक ही सीमित है। जबकि हमें किसानों को पोल्ट्री, गाय पालन, बकरी पालन पर विशेष ध्यान देने के साथ सॉलर पैनल स्थापित कर अपनी क्रय शक्ति को बढ़ा सकते है।
- सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों भूमिहीन लोगों को आजीविका प्रदान करने हेतु भूमि का वितरण किया जाना चाहिए ऐसा पश्चिम बंगाल सरकार कर रही है जिससे अब तक राज्य में 2.6 लाख परिवार लाभान्वित हो चुके है।
- सरकार द्वारा स्थानीय स्तर पर उत्पादित अनाज का खाद्यान्न बैंक स्थापित कर उपभोग एवं वितरण किया जाना चाहिए। हमें घरेलू आवश्यकताओ पर ध्यान देने की जरूरत है।
- सरकार द्वारा केवल परम्परागत खाद्यान्नों एवं गैर–खाद्यान्नों हेतु न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा की जाती है। जिसका लाभ सीमान्त एवं लघु किसानों को नही मिल पाता है अतः बागवानी क्षेत्र में भी न्यूनतम समर्थन मूल्यों की घोषणा की जानी चाहिए।

भारत में शून्य भूखमरी हेतु किए जा रहे प्रयास

भारत सरकार ने अनेक योजनाओं के द्वारा अल्पोषण एवं भूखमरी को समाप्त करने के लिए अनेक योजनाओं एवं अधिनियम बनाए। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 47 में कहा गया है कि ‘‘पोषण के स्तर को बढ़ाने, लोगों का जीवन स्तर बेहतर करने, सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार को राज्य अपने मुख्य कर्त्तव्य मानेगा।’’

यहाँ हम उन योजनाओं का विवरण दे रहे है जिनसे भूखमरी निवारण करने हेतु प्रयास किए जा रहे हैं –

- **मिड-डे मिल योजना**- मिड–डे–मील योजना मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा विभाग द्वारा 15 अगस्त 1995 को शुरू की गई थी। जो वर्तमान समय में भी चल रही है। इस योजना के तहत प्रति स्कूल दिवस कम से कम 200 दिन न्यूनतम 300 कैलोरी और 8–12 ग्राम प्रोटीन वाला पका हुआ गर्म भोजन दिया जाता है।
- **राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अभियान**- 2007 में शुरू किए गए इस अभियान का प्रधान उद्देश्य बढ़ती हुई खाद्यान्न उपभोग आवश्यकता को पूरा करना था। साथ ही तुलनात्मक रूप से पिछड़े लक्षित जिलों में मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखना, रोजगार के अवसरों को बढ़ावा देना तथा कृषि स्तर की अर्थव्यवस्था में किसानों का आत्मविश्वास बनाए रखना।
- **राष्ट्रीय खाद्य प्रसंस्करण मिशन (NMFP)** – 12वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान खाद्य प्रसंस्करण के क्षेत्र में खाद्य प्रसंस्करण उद्योगो की स्थापना, खाद्य

प्रसंस्करण की क्षमता को बढ़ाने, पूँजी एवं कौशल विकास को सुनिश्चित करने, खाद्य सुरक्षा और स्वच्छता के स्तर को ऊपर उठाने के लिए भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण के मानदण्डों को लागू करने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित राष्ट्रीय खाद्य प्रसंस्करण मिशन की शुरूआत की गई है। इसे राज्यों की सरकारों के माध्यम से लागू किया जा रहा है।

- **राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013** - राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम का मकसद देश के सभी लोगों तक पोषण युक्त भोजन उपलब्ध करना है जिससे खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके। पूरे देश में कानून के लागू होने के बाद 81.34 करोड़ लोगों को 2 रूपये प्रतिकिलो गेहूं व 3 रूपये प्रतिकिलो की दर से चावल दिया जा रहा है।
- **राष्ट्रीय पोषण मिशन (NMM)**:– मार्च 2018 में राजस्थान के झुन्झुनू में प्रधानमंत्री द्वारा राष्ट्रीय पोषण मिशन देश में पोषण के स्तर को युद्धस्तर पर बढ़ाने का एक समग्र प्रस्ताव है। इसे वर्ष 2017–18 से 9046.17 करोड़ के 3 वर्ष के बजट से शुरू किया गया है।
- **राष्ट्रीय पोषण रणनीति 2017** :– 2017 में नीति आयोग द्वारा राष्ट्रीय पोषण रणनीति जारी की गई थी। वर्ष 2030 तक देश से हर तरह का कुपोषण खत्म कर देने का संकल्प लेकर तैयार की गई इस कार्यनीति में पोषण को विकास का आधार बताते हुए कहा गया है कि यह गरीबी को नीचे लाने और आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

1. **सरकारी योजनाओं का सही कार्यान्वयन**- सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं को सही क्रियान्वयन करके हम देश से अल्पोषण, कुपोषण, अडंरवेट बच्चों की संख्या को शून्य के स्तर तक प्राप्त कर सकते है। सरकार द्वारा इन योजनाओं के लिए जारी फंड का समुचित उपयोग करके गरीबों की मदद की जा सकती है। योजनाओं का सीधा पैसा लोगों के खातों में डालना जिससे उन्हें अपने हक का पैसा मिल सके।
2. **रोजगार का सृजन करना**- देश अधिकांश लोग गरीबी, अल्पपोषण एवं भूखमरी से पीड़ित होने का मुख्य कारण बेरोजगारी है। वर्तमान में देश की बेरोजगारी दर 6.1 प्रतिशत है जो पिछले 45 वर्षों में सर्वाधिक हैं सरकार निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन देकर प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों में रोजगार के व्यापक अवसरों का सृजन करना चाहिए। इन रोजगारों से गरीबों की आय होगी और वे भूखमरी से लड़ पाएगें।
3. **खाद्यान्न उत्पादकता को बढ़ाना** - खाद्यान्नों की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता बढ़ाकर खाद्यान्न से वंचित लोगों को खाद्यान्न उपलब्ध करवाया जा सकता है। यह सब उचित सिंचाई नवीन कृषि प्रोद्यौगिकी का उपयोग करके किया जा सकता हैं।
4. **गरीबों को न्यूनतम पोषण की उपलब्धता** - संविधान के अनुच्छेद 21 में जीवन का अधिकार दिया गया है। अर्थात सरकार किसी भी व्यक्ति को कुपोषण या भूखमरी से मरने नहीं देगी। सरकार का यह दायित्व है कि वह कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए पोषण की कमी से जूझ रहे लोगों को पोषण की गांरटी दे जिससे भारत 2030 तक सतत् विकास लक्ष्य संख्या 'शून्य भुखमरी' को प्राप्त कर सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *रैपिड सर्वे ऑन चिल्ड्रन (आरएसओसी) 2013–14 नेशनल रिपोर्ट, मिनिस्ट्री ऑफ वुमन एण्ड चाइल्ड डवलपमेंट।*
2. *नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे (एनएफएचएस–4) 2015–16, मिनिस्ट्री ऑफ हेल्थ एण्ड फैमिली वेलफेयर।*
3. *वार्षिक रिपोर्ट 2017–18, खाद्य और सार्वजनिक वितरण विभाग उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय भारत सरकार।*
4. *नेशनल फूड सिक्यूरिटी एक्ट 2013 एंड रिफॉर्मस इन पब्लिक डिस्ट्रीब्यूशन सिस्टम'' 2017, डिपार्टमेंट ऑफ फूड एंड पब्लिक डिस्ट्रीब्यूशन*
5. *नेशनल न्यूट्रीशन स्ट्रेटजी 2017, नीति आयोग*
6. *देवी, महाश्वेता और अरूण कुमार त्रिपाटी (25009), खाद्य संकट की चुनौती, वाणी प्रकाशन, 2009 नई दिल्ली।*
7. *स्वामीनाथन, एम एस (2009), ''भूख–मुक्त विश्व'' प्रभात प्रकाशन (2009) नई दिल्ली*
8. *सेन, अमर्त्य (2013), ''गरीबी और अकाल'' राजपाल एण्ड संस (2013) नई दिल्ली*
9. *वैश्विक भुखमरी सूचकांक 2019*
10. *आर्थिक समीक्षा 2018–19*

नीतिग्रन्थों में कर्मोपदेश

डॉ. नितेश व्यास
सहायक आचार्य, महिला पी.जी. महाविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध - सारांश

गीता में भगवान् कृष्ण ने कर्म की महत्ता और उसकी प्रत्येक प्राणी के लिए अवश्यम्भाविता को अपने इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है –

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

अर्थात् संसार का कोई भी प्राणी क्षण भर भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता।

इस का निदर्शन हम सूक्ष्म एवं स्थूल जगत् में क्षण–क्षण अनुभव कर सकते हैं। कर्म को देवता की संज्ञा दी गयी है। ईशोपनिषद् में कहा गया है–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः।

इस संसार में कर्म करते हुए ही मनुष्य को सौ वर्ष जीने की इच्छा करनी चाहिये।

जिस कर्म का वेद में उपदेश किया गया है उसी कर्म की उत्तरवर्ती ग्रन्थकारों, कवियों, नीतिशास्त्रकारों ने पदे–पदे प्रशंसा की है और केवल प्रशंसा ही नहीं की अपितु कर्म के द्वारा जीवन को कैसे उन्नत बनाया जा सकता है, उसका पूरा विवरण अपने महनीय ग्रन्थों में लिपिबद्ध किया है। विदुरनीति, चाणक्यनीति, नीतिशतकम् आदि ग्रन्थों की एक महनीय परम्परा संस्कृत साहित्य में रही है जिनमें किसी न किसी व्यक्ति विशेष को कर्मोपदेश के माध्यम से लोक–संग्रह का विनियोग किया गया है। मेरे द्वारा इस शोध–आलेख में नीतिग्रन्थों में कर्म के विषय में जो उपदेश दिये गये हैं, वे आज भी मनुष्य के जीवन का किस प्रकार उन्नयन कर सकते हैं, इस विषय मे किञ्चित् प्रयास किया गया है।

संकेताक्षर : *सृष्ट्युत्पत्यन्तकर्म, वाङ्मय, विपथगामी, कर्त्व्याकर्त्तव्य, मनुदेह, लोकापवाद, विजयाकांक्षा, उपशमन।*

कर्म मनुष्य के ही नहीं प्रत्युत प्रत्येक प्राणी के जीवनका एक महनीय अंग है। सम्पूर्ण सृष्टि ही इस कर्म चक्र के अधीन है। कर्म–चक्र के अन्तर्गत ही सूर्य–चन्द्रमा उदितास्त होते हैं, वायु प्रवाहित होती है, वृक्ष फल देते हैं, नदियाँ बहती हैं, ब्रह्मादि देवता भी इसी कर्मचक्र के अधीन होकर सृष्ट्युत्पत्तिस्थित्यन्तकर्मों में प्रवृत्त होते हैं।

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतार गहने क्षिप्तो महासंकटे।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे।।[1]

भर्तृहरि के इस श्लोक से कर्म की महत्ता अनायास ही सिद्ध हो जाती है। संपूर्ण भारतीय वाङ्मय कर्म को एक प्रत्यक्ष देवता के रूप में स्थापित किया गया है। कर्म हीन मनुष्य की तुलना ऐसे शुष्क वृक्ष से की गयी है जो न तो फल देता है एवं न ही उसके तले किसी को छाया ही उपलब्ध होती है।

इसी कर्म सिद्धान्त की चर्चा भारतीय वाङ्मय में षड्दर्शनों, इतिहासपुराणादि ग्रन्थों, वेदों में तो की ही गयी है साथ ही

साथ नीति ग्रन्थों की एक महनीय परम्परा भारतीय ज्ञान–निधि में उपलब्ध होती है जो मुक्तकों के माध्यम से मनुष्य को कर्मोपदेश, कर्म–फल, कर्महीन मनुष्य की गति आदि विविध विषयों पर प्रकाश डालती हुई सतत् प्रेरित करती है। नीति ग्रन्थों में चाणक्य नीति सर्वाधिक प्राचीन मानी जाती है हालांकि अन्य साक्ष्यों के आधार पर विदुर नीति तत्पूर्ववर्ती सिद्ध होती है इन दोनों नीतिग्रंथों में कर्म के जिन विविध रूपों तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्य का जो विवेचन उपलब्ध होता है उसी को भर्तृहरिकृत् नीतिशतक के साथ रखकर प्रस्तुत करने का यह अल्पायास किया गया है। इन सुभाषितों की इतनी महिमा है कि विपथगामी मनुष्य को भी यह सन्मार्ग पर प्रेरित करने में सहायक होते हैं। किन्तु कालान्तर में पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण करने से मनुष्य अपने नैतिक कर्मों को भूलता ही जा रहा है। इसका मुख्य कारण मनुष्य की अनावश्यक स्वार्थपरता है। आज मनुष्य, दूसरों को सन्मार्ग पर प्रेरित करना तो दूर रहा उसे विपथगामी होने से रोकने का प्रयास भी नहीं करता, इसी कारण समाज–व्यवस्था के सामंजस्य का अभाव दृष्टिगोचर होता है। भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है–

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्के सुभाषितम्।।[2]

इसके उपरान्त भी सुभाषितो का महत्व आज भी उतना ही है जितना की विदुर, चाणक्य व भर्तृहरि के काल में था। ये नीति–ग्रन्थ मनुष्य को नीच कर्मों से रोककर श्रेष्ठ कर्मों में प्रवृत्त कराने का उत्तम साधन है। मनुष्य का व्यवहार कैसा होना चाहिये, उसका आचरण किस प्रकार शुद्ध हो, प्रत्येक प्राणी के साथ उसका व्यवहार कैसा हो, राजा व प्रजा के मध्य श्रेष्ठ सम्बन्ध किस प्रकार रह सकता है आदि विषयों को आधार बनाकर यहाँ कर्म को तीन विभागों में विभक्त करने का प्रयास किया गया है। पहला नैतिक कर्म, दूसरा व्यावहारिक कर्म तथा तृतीय राजनैतिक कर्म।

नैतिक कर्म :– कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक ही नीति है अर्थात् मनुष्य को ऐसे कर्म करने चाहिये जो नीति–नियमों की सीमा में आबद्ध हो। नीति का उल्लंघन कर कर्म करने का समर्थन भारतीय कवि नहीं करता। धर्म भारतीय जीवन पद्धति में आत्मक्त् अवस्थित है। अतः धर्म के द्वारा ही मनुष्य का नैतिक उत्थान हो सकता है। धर्म को धारण करने वाले मनुष्य का आभूषण 'क्षमा' होता है। वह ज्ञान–चक्षु से ही देखता है, अहिंसा से ही उसे सुख की प्राप्ति होती है–

एको धर्मः परं श्रेयः समैका शन्तिरुत्तमा।
विद्यैका परमादृष्टिरहिंसैका सुखावहा।।[3]

मनु ने भी अपने धर्म लक्षण को प्रस्तुत करते हुए कहा है –

धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।[4]

अर्थात् धैर्य, क्षमा, संयम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, सत्यकर्मपरायण बुद्धि, विद्या, सत्य एवं अक्रोध धर्म के यही लक्षण बताये हैं। इनका सम्यक् आचरण करके मनुष्य इह लोक में सुख तथा परलोक में शान्ति प्राप्त कर सकता है।

नीति ग्रन्थों में सदैव मनुष्य के नैतिक उत्थान की कामना की गयी है। क्योंकि नीतियुक्त आचरण करके ही मनुष्य को कीर्ति की प्राप्ति होती है। मनुष्य की वेश–भूषा, खान–पान एवं व्यवहार से उसका व्यक्तित्व परिलक्षित होता है। शास्त्रवचन है कि जो व्यक्ति सदा ही सद्वेश में रहता है, गंवार–वेश धारण नहीं करता, दुसरों के सामने अपने पराक्रम की शलाघा नहीं करता, क्रोध से व्याकुल भी जो कटुवचन नहीं बोलता, ऐसे नीतिज्ञ मनुष्य से सभी लोग सदा ही प्रेम करते हैं।

यो नोद्धतं कुरुते जातु वेशं
न पौरुषेणापि विकथ्यतेऽन्यात्।
न मूर्छितः कटुकान्याह कञ्चित्
प्रियं सदा तं कुरुते जनो हि।।[5]

इसके विपरीत जो क्रोधी स्वभाव वाले मनुष्य नीति विरुद्ध आचरण करते हैं, कटुभाषण करते हैं, श्वान् की भांति अपनों से ही वैर रखते हैं, कुलहीनों की सेवा करते हैं उनके लिये यह मनुदेह ही नरक बन जाती है। उक्तञ्च –

अत्यन्त कोपः कटुका च
वाणी दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम्।
नीच प्रसङ्गः कुलहीन सेवा
चिह्नानि देहे नरकस्थितानि।।[6]

मनुष्य को जिस नीति से अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाने का यत्न करना चाहिये उसका उपदेश हमें नीतिशतक में भी मिलता है। नीतिशतक जिसका प्रत्येक मुक्तक एक–एक पुस्तक के समान गम्भीरार्थ को लिये हुए है। वह श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा अपनायी जाने वाली नैतिक जीवन पद्धति को नमन किया गया है, ऐसे मनुष्य सदैव सत्संगति की कामना करते हैं, दुसरों के गुणों से प्रीति करते हैं, विद्या जिसका व्यसन है, स्व–स्त्री से प्रेम, लोकापवाद से भय, शिव की भक्ति, इच्छाओं के दमन की शक्ति, इन सभी गुणों से युक्त मनुष्य सभी के द्वारा नमन योग्य है–

वाञ्छा सज्जनसंगमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता,
विद्यायां व्यसनं स्क्योषितिरतिर्लोकापवादात्दभयम्।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्ग मुक्तिः खले,
एते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः।।[7]

इस तरह के नीति–वाक्यों के भारतीय वाङ्मय भरा पड़ा है जो मनुष्य को नीतिपूर्ण कर्मों का सतत् उपदेश कर उसे सन्मार्ग पर प्रेरित करने हेतु पदे–पदे उसे प्रेरित करते हैं। नीति के श्रेष्ठ प्रयोग से ही मनुष्य का व्यवहार (स्वभाव) निर्मित होता है। अतः द्वितीय पक्ष व्यावहारिक कर्मों को लेकर यहाँ प्रस्तुत होता है।

व्यावहारिक कर्म :- हमारे नीति ग्रन्थों में मनुष्य–व्यवहार पर गहन चिन्तन उपलब्ध होता है। यदि मनुष्य का कर्म विवेकपूर्ण होता है तो उसका सभी प्रकार से उत्थान होता है तथा यदि विवेकशून्य होकर वह व्यवहार करता है तो सौ प्रकार से उसका पतन होता है। इस तथ्य को भर्तृहरि ने एक सुन्दर मुक्तक में गैंा के प्रसैं में उपस्थित किया है–

शिरः शार्वं स्वर्गात्पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं,
महिघ्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम्।
अधोऽधो गङ्गेयं पदमुपगता स्तोकमथवा
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।।[8]

इसी प्रकार विवेकपूर्वक कर्म करने से तथा कर्म के फलाफल का चिन्तन करके ही कर्म में प्रवृत्त होना चाहिये। विदुर–नीति में भी धृतराष्ट्र को उपदेश करते हुए विदुर विवेक की महिमा को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं–

अनुबन्धानवेक्षेत सानुबन्धेषु कर्मसु।
सम्प्रधार्य च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत्।।
अनुबन्धं च सम्प्रेक्ष्य विपाकांश्चैव कर्मणाम्।
उत्थानमात्मनश्चैव धीरः कुर्वीत वा न वा।।[9]

अच्छी प्रकार से विचार करके, कर्म के फल का विवेकपूर्वक चिन्तन कर, उसके परिणामों को सोचकर ही व्यवहार करना चाहिये। धैर्यशील पुरुष प्रथमतः कर्म के प्रयोजन व फल का विचार करते हैं क्योंकि अविवेक आपत्तियों का घर होता है– 'अविवेकः परमापदा पदम्'।

नीतिग्रंथों में मनुष्य के चरित्र–निर्माण के लिये केवल बाहरी शत्रुओं से ही नहीं अपितु क्रोध, मोहादि आन्तरिक शत्रुओं तथा ऐन्द्रिक शत्रुओं से विजय प्राप्ति रूप कर्म का भी उपदेश मिलता है। जो मनुष्य मन के भीतर रहने वाले शत्रुओं को जीते बिना बाहरी रिपुओं से विजयाकांक्षा करता है वह बाह्य शत्रुओं से परास्त हो जाता है–

यः पञ्चाभ्यन्तराञ्थत्रूनवजित्य मनोमयान्।
जिगीषति रिपूनन्यान् रिपवोऽभिभवन्ति तम्।।[10]

ज्ञानपूर्वक किया गया कर्म ही मनुष्य की मुक्ति का कारण होता है। जैसा कि कहा गया है कि कोई एक क्षण भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता अर्थात् 'कुछ न करना भी' कर्म की श्रेणी में ही आता है। अतः साक्षी भाव से किया गया कर्म बन्धन का कारण नहीं होता। कामक्रोधादि के वशीभूत होकर किया गया कर्म व्यावहारिक कर्म नहीं होता, वह क्लेश को बढाने वाला ही होता है। जैसा कि चाणक्यनीति में कहा गया है–

नास्तिकाम समो व्याधिर्नाऽस्ति मोह समो रिपुः।
नास्ति कोप समो वह्निर्नाऽस्ति ज्ञानात् परं सुखम्।।[11]

मनुष्य के किये गये प्रत्येक कर्म का फल वह स्वयं ही भोगता है। अतः ज्ञानपूर्वक किये गये शुभ कर्मों से ही मनुष्य को मुक्ति अर्थात् सुख की प्राप्ति होती है इसके विपरीत अशुभ कर्मों का कर्त्ता नरकगामी होता है–

जन्ममृत्यू हि यात्येको भुनक्त्येकः शुभाऽशुभम्।
नरकेषु पतत्येक एको याति परां गतिम्।।[12]

आज के युग में कर्म सिद्धान्त के व्यावहारिक पक्ष को देखकर भी नीतिकारों ने मनुष्य को उचित व्यवहार की शिक्षा दी है। आज मनुष्य थोड़ी से असफलता पाकर ही कर्म से पराङ्मुख हो जाता है तथा प्रत्येक व्यक्ति के आगे अपने भाग्यहीन होने की दुहाई देता है किन्तु इस प्रकार से अपने दुःख को सार्वजनिक करने की शिक्षा हमारे नीतिग्रन्थ नहीं देते। भर्तृहरि चातक पक्षी के माध्यम से मनुष्य को सन्देश देते हैं कि हर कोई व्यक्ति दूसरे के दुःखों का निवारक नहीं होता कुछ ही ऐसे श्रेष्ठ मनुष्य होते हैं जो परदुःख के उपशमन का उपाय करते हैं लेकिन अधिकांशतः तो उपहास करने वाले ही होते हैं–

रे रे चातक सावधान मनसा मित्र क्षणं श्रूयतां
अम्भोदः बहतो वसन्ति गगने सर्वेऽपि नेतादृशाः।
केचितद् वृष्टिभिर्राद्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद् वृथा,
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः।।[13]

इसी तथ्य का समर्थन चाणक्य नीति में भी किया गया है। वे कहते हैं बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वह धन का नाश, मन का सन्ताप, घर के दोष, किसी के द्वारा ठगा जाना एवं अपमानित होना इन बातों को किसी के समक्ष न कहे–

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च।
वञ्चनं चापमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत्।।[14]

राजनैतिक कर्म :- प्राचीन काल से ही

वर्णव्यवस्थानुसारी शिक्षा पद्धति के अनुसार क्षत्रियों हेतु राजनैतिक शिक्षा की पृथक् से व्यवस्था होती थी। राजनैतिक सिद्धान्तों को जाने बिना न ही वह युवराज पद प्राप्त करने का अधिकारी होता था तथा न ही सम्राट होने का। भारतीय नीतिग्रन्थों की परम्परा में मंत्रियों–कवियों आदि द्वारा उपदेशरूप में दी गयी शिक्षा का स्थान–स्थान पर दर्शन होता है। जहाँ विदुर ने धृतराष्ट्र व युधिष्ठिरादि को नीति के ज्ञानार्थ विदुरनीति का उपदेश किया वहीं चाणक्य ने चन्द्रगुप्त हेतु चाणक्य नीति का। पंचतन्त्र, हितोपदेश प्रभृति ग्रन्थ भी राजपुत्रों को जीवनोपयोगी राजनैतिक उपदेश देने हेतु ही रचे गये हैं।

राजा के कर्मों के उपदेश से पूर्व उसके चरित्र के बारे में प्रथमतः विचार किया गया है। अर्थात् राजा कैसा होना चाहिये। राजा को चाहिये कि वह काम, क्रोधादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला हो, पात्र परीक्षण करके जिसमें दान देने का सामर्थ्य हो, शास्त्रों को जानने वाले तथा दीर्घ सूत्री न होने वाले शासक को ही सभी लोग प्रमाण मानते हैं–

यः काममन्यू प्रजहाति राजा,
पात्रे प्रतिष्ठापयते धनं च।
विशेषवित् श्रुतवान् क्षिप्रकारी,
तं सर्वलोकः कुरुते प्रमाणम्।।[15]

राजा को चाहिये कि वह नीतिज्ञ हो, धर्माधर्म की परीक्षा करके ही दण्ड देने वाला हो, सभी को विश्वास में लेने का सामर्थ्य उसमें होना चाहिये। अपराध की गम्भीरता व सामान्यता को देखकर जो दण्ड के न्यूनाधिक्य का निर्धारण कर सकने वाला राजा ही श्रेष्ठ होता है।

जानाति विश्वासयितुं मनुष्यान्,
विजात दोषेषु ददाति दण्डम्।
जानाति मात्रं च तथा क्षमां च,
तं तादृशं श्रीर्जुषते समग्रा।।[16]

राजाओं के व्यवहार एवं स्वभाव को निर्देशित करने के उपरान्त उनके द्वारा निषिद्ध कर्मों का उपदेश किया गया है। राजकार्य में मन्त्रणा का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मन्त्रणा से ही राज्यशासन का नीतिनिर्धारण होता है। राजा को कभी भी वह मूर्खों, विचारशून्यों तथा भाटों के साथ विचार विमर्श न करें अर्थात् शास्त्रज्ञान से मुक्त मंत्रियों व आमात्यों से ही विचार विमर्श करें। यह शिक्षा आज की भारतीय राजनीति की दृष्टि से सर्वथा प्रासंगिक प्रतीत होती है–

चत्वारि राज्ञा तु महाबलेन ,
वर्ज्यान्याहुः पण्डितस्तानि विद्यात्।
अल्पप्रज्ञैः सह मन्त्रं न कुर्यान्न
दीर्घसूत्रैरभसैश्चारणैश्च।।[17]

इसके अतिरिक्त विदुरनीति में सात प्रकार के दोषों का परिगणन किया गया है जिनके रहते दृढ़ीभूत साम्राज्य वाला शासक भी नष्ट हो जाता है।

सप्तदोषा सदाराज्ञा हातव्या व्यसनोदया।
प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूला अपीश्वरा।।
स्त्र्योऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यं च प   चमम्।
तथा च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमेव च।।[18]

इन सभी कर्मों को यदि आज का नेता जो की राजा तुल्य ही है धारण कर ले तो देशोत्थान के साथ आत्मोत्थान का मार्ग भी प्रशस्त हो सकता है।

इस प्रकार नीतिग्रन्थों में हमें पदे–पदे कर्मसिद्धान्त दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त आश्रम व्यवस्थानुसारी कर्म, वर्ण–धर्म, स्त्रियों के कर्म, सज्जनों हेतु उपदिष्ट कर्म अनेक प्रकार के कर्मोपदेशों से हमारा वाङ्मय भरापूरा है। आवश्यकता उन्हें धारण करने की है तभी हमारा कर्म मोक्ष का साधन बनेगा, अभिवन्दनीय व अनुकरणीय बनेगा–

तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये।[19]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नीतिशतकम्, 96
2. नीतिशतकम्, 2
3. विदुरनीति, 1.50
4. मनुस्मृति, 6.91
5. विदुरनीति, 1.108
6. चाणक्यनीति, 7.17
7. नीतिशतकम्, 62
8. नीतिशतकम्, 10
9. विदुरनीति, 2/8,9
10. विदुरनीति, 2.68
11. चाणक्यनीति, 5.72
12. चाणक्यनीति, 5.13
13. नीतिशतकम्, 51
14. चाणक्यनीति, 7.1
15. विदुरनीति, 1.101
16. विदुरनीति, 1.102
17. विदुरनीति, 1.67
18. विदुरनीति, 89, 90
19. विष्णुपुराण, 1.19.41

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की काव्य चेतना

डॉ. दविंदर कौर
सहायक प्रोफेसर, राजकीय महेंद्रा कॉलेज, पटियाला (पंजाब)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

छायावाद साहित्य जगत में सन् 1935 तक रहा। सन् 1936 में लखनऊ में प्रगतिवाद लेखक सम्मेलन का अधिवेशन प्रेमचंद की अध्यक्षता में हुआ। उसमें जो उपयोगितावाद और जीवन के यथार्थ को साहित्य के ध्येय के रूप में प्रतिष्ठा मिली, उसने छायावादी कल्पना के स्थान पर प्रगतिवादी ठोस यथार्थ को अपनाने की पहल की। यह साहित्य में साम्यवादी विचारधारा के प्रवेश का प्रारम्भ था। हिन्दी साहित्य में सुमित्रानन्दन पंत, नरेश शर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला तथा रामधारी सिंह दिनकर आदि कवियों ने प्रगतिवादी कविताएं लिखनी प्रारम्भ कर दी थी। रूस की राज्य क्रांति के पश्चात् कवियों को इस बात के लिए प्रेरित किया गया कि मार्क्सवाद के प्रसार के लिए कविताएं लिखें। साम्यवाद के इसी प्रचारक साहित्य का नाम प्रगतिवाद है। प्रगतिवादी साहित्य में किसान और जमीदार, पूँजीवादी और मजदूर तथा अमीर और गरीब आदि के संघर्ष और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाना ही प्रगतिवादी द्वन्द्वात्मकता है।

संकेताक्षर : *सूर्यकान्त त्रिपाठी, छायावाद, उपयोगितावाद, साम्यवाद।*

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला हिन्दी साहित्य जगत के श्रेष्ठ रचनाकार हुए हैं। छायावादी युग के चार महान कवियों में निराला का नाम भाामिल है। उनकी महान रचनाओं के कारण उन्हें बहुत ख्याति प्राप्त हुई। आधुनिक हिन्दी साहित्य के वह चेतना सम्पन्न रचनाकार हुए हैं जिनकी रचनाओं में समाज के प्रत्येक पक्ष की अभिव्यक्ति हुई है। निराला का जीवन दुहरे संघर्ष का रहा है सामाजिक स्तर पर भी और व्यक्तिगत स्तर पर भी। निराला का साहित्यिक चिन्तन बहुत विस्तारित है। प्रगतिवादी कवियों में निराला का प्रगतिवादी दृष्टिकोण एकदम खरा है। उनका साहित्य समाज के प्रति जुड़ाव और व्यक्तिगत संघर्ष से प्रभावित और अनुप्रमाणित है, इसलिए उनके साहित्य में स्वाभाविक तीखापन है। "प्रगतिवादी चेतना से व्याप्त उनका साहित्य एक ओर जहां उन्हें सामाजिक भूमिकाओं की सतहों को भेदने वाली दृष्टि देता है। वहीं अन्य काव्य रूपों में उनके प्रखर पांडित्य, कलामर्मज्ञता तथा गहरी सूझ–बूझ का पता चलता है। निराला में बौद्धिकता अतिशयता थी। प्रखर कल्पना भाक्ति को उन्होंने बौद्धिकता का सबल आधार दिया है।"[1]

वर्तमान समय में उभर रहे अर्थिक उदारतावाद, भूमंडलीकरण व वैश्वीकरण तथा उत्तर आधुनिकता की अवधारणाओं से विश्व सचेत हो रहा है जिनकी छटा निराला के काव्य में दिखाई देती है। उनकी रचनाओं में राजनीति और संस्कृति का अनूठा सुमेल है। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला कहते हैं कि,"भारतीय राजनीति में आज एक ही रास्ता साफ है, क्रांतिपथ और अंत में समाजवाद का पथ उनकी कविता का भी यही पथ है।"[2] निराला अपनी राजनीतिक मान्यताओं और विश्वासों को संस्कृति के अंग के रूप में लेकर चले हैं। राजनीति और संस्कृति का ऐसा मिश्रण और कहीं नहीं मिलता।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का जन्म का मेदिनीपुर जिले के महिषदल रियासत में संवत् 1955 को हुआ। निराला के पिता का नाम रामसहाय त्रिपाठी और माता का नाम रुकिमणी देवी था। निराला जी का पालन पोषण बड़े अच्छे ढंग से किया गया लेकिन उनके भाग्य में मातृ प्रेम नहीं लिखा था। यही कारण है कि वह उन्हें ढाई वर्ष की अल्पायु में

छोड़कर चली गई। निराला दिखने में सुंदर स्वस्थ थे। उनका विवाह रायबरेली जिले के डलमऊ गांव के पंडित रामदयाल दूबे की पुत्री मनोहरा देवी के साथ सम्पन्न हुआ। सन् 1918 में मनोहरा देवी एक पुत्र और एक कन्या को अपने पीछे छोड़ कर चल बसी। स्वतन्त्र लेखन से परिवार का खर्चा चलाना असम्भव था। तभी सौभाग्य से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की कृपा से उन्हें कलकत्ते के रामकृष्ण मिशन द्वारा संचालित समन्वय मासिक पत्रिका के सम्पादन का कार्य मिल गया। हिन्दी में उनका काव्य सृजन सन् 1916 में ही प्रारम्भ हो चुका था और वह जूही की कली जैसी सफल रचना लिख चुके थे। उनके आगमन पर हिन्दी जगत में जितना विरोध उनका हुआ उतना कदाचित ही किसी साहित्यकार का हुआ होगा। परन्तु विरोध को सहने और विरोधियों को उत्तर देने की भाक्ति भी जितनी उनमें थी उतनी किसी अन्य साहित्यकार में नहीं होगी।

निराला के द्वारा असंख्य ही कविताएं लिखी गई जो उनके काव्य संग्रहों में संकलित हैं– अनामिका (1928), परिमल(1929), गीतिका (1936), तुलसीदास (1938), कुकुरमुत्ता (1942), नए पत्ते(1940), अराधना (1953) इत्यादि। निराला जी ने इन कविताओं में अपने सम्पूर्ण जीवन को अभिव्यक्त किया है। "निराला का कृतित्व विपुल,वैविध्यपूर्ण और साथ ही युगातिक्रामी निरंतर प्रासंगिक सिद्ध हुआ है।"[3] उनकी कविताओं में जीवन का सर्वाधिक वैविध्य सिमट आया है। उनकी बहुत सारी कविताएं प्रगतिवादी चेतना को अभिव्यक्त करती हैं। उनकी कविता जागो फिर एक बार मे भारतवासियों को अपना अतीत याद कर पुनः जागृत होने का सुझाव दिया है। दासता के विष से मूर्छित यह देश शताब्दियों तक अपनी ज्ञानराशि को भूलाकर दुःख भोगता रहा और पद ललित होता रहा। कवि ने स्मरण दिलाया है कि योग्य ही संसार में जीवित रहता है का सिद्धांत यूरोप का नही, भारत का है–

योग्य जन जीता है
पश्चिम की उचित नहीं
गीता है, योग्य है
स्मरण करो बार बार।[4]

नामवर सिंह लिखते हैं, "भारतवासियों ने वर्तमान पराधीनता के अपमान को भूलने के लिए अतीत के स्वर्ण युग का सहारा लिया। वर्तमान की हार का उत्तर उन्होंने अतीत की जीत से दिया। हीनता का भाव दूर हुआ। जो जाति वर्तमान में विभाजित थी, वह अतीत की पृष्ठभूमि पर एक हो उठी।"[5]

निराला द्वारा रचित सरोज स्मृति हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ शोक गीत माना जाता है। जिस कारण सरोज स्मृति का ऐतिहासिक महत्व है। रजनी शिखरे लिखती है,"सरोज स्मृति में निराला की भावनाओं का चित्रण है। कवि की स्मृति में सरोज के जीवन और स्वयं के संघर्षशील जीवन के सारे प्रसंग उभरते हैं। अपनी पुत्री सरोज की मृत्यु के बाद निराला ने इस काव्य को लिखा। इसमें सरोज की बाल्यावस्था और किशोरावस्था का सुंदर चित्रण किया है। पिता द्वारा पुत्री के तारुण्य और सौन्दर्य का वर्णन पवित्र और सुंदर है।''[6] यही नहीं इस कविता में कवि ने अपने जीवन के समस्त संघर्ष, करुणा और विद्रोह को इस तरह समाहित कर दिया है कि उनके मार्ग की कठिनाइयों से हम अवगत हो जाते हैं। उनकी पुत्री को मातृ प्रेम से वंचित हो नानी के घर पर पालना पड़ा। वहां वह किन अभावों में पली होगी, इसकी कल्पना कर ही कवि कांप उठता। लेकिन तब भी वह हिन्दी की सेवा से विरत नही हुआ। वह लिखता है–

तब भी मैं इसी तरह समस्त
कवि जीवन में व्यर्थ भी व्यस्त
लिखता अबाध गति मुक्त छन्द
पर सम्पादकरण निरानन्द
वापस कर देते पढ़ सत्वर
दे एक पंकित दो में उत्तर।[7]

निराला जी की कविताओं को लेकर उनकी आलोचना होती रही परन्तु वह निरंतर अपने कार्य में संलग्न रहे। राम की भाक्ति पूजा उनके काव्य संग्रह अनामिका की सबसे अधिक सशक्त रचना है जिसमें एक ओर काव्य शिल्प का चर्मोत्कर्ष भी प्रदर्शित हुआ है। राम के अन्तद्वन्द्व के चित्रण में कवि को पूर्ण सफलता मिली है। राम के आत्म चिंतन में मानो निराला ही बोल रहे हैं

धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध
जानकी! हाय उद्धार प्रिया का हो न सका।[8]

अश्रुपूरित नयनों से राम का यह सोचना और फिर कमल के स्थान पर अपने नयन को ही भाक्ति समर्पित कर अनुष्ठान पूरा करने का संकल्प मानो काव्य और साहित्य के लिए निराला का अपने सर्वस्व समर्पण का ही संकल्प है। तत्कालीन व्याप्त विभिन्न समस्याएं

पराधीनता, गरीब, आर्थिक विषमता, उच्च वर्ग का आधिपत्य और निम्न वर्ग का शोषण इत्यादि ने सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का मन विचलित हो उठा और उन्होंने व्यंग्य के सहारे पूँजीवाद की खिल्ली उड़ाने के लिए कुकुरमुत्ता की रचना की। उस समय प्रगतिशीलता का द्वन्द्व भी चल रहा था। निराला ने इस कविता में गुलाब को पूँजीवादी वर्ग का प्रतीक माना है तो कुकुरमुत्ता को सर्वहारा वर्ग का। इस कविता में एक नवाब ने पेरिस से गुलाब मंगाकर अपने बाग में लगवाया। उसके पास ही गंदी जगह में कुकुरमुत्ता उग आया। एक दिन गुलाब को इठलाते देखकर कुकुरमुत्ता को ताव आ गया और कहने लगा :

अबे, सुन बे गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू, रंगोआब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतराता है केपीटलिस्ट
कितनों को तूने बनाया गुलाम।[9]

यह कहकर वह गुलाब की बुराइआँ बताता है कि जो भी तुझे अपनाता है वही रण क्षेत्र छोड़कर तेरी ओर भागता है तू अमीरों और राजा नवाबों का प्यारा है इसी कारण सर्व साधारण से दूर रहा है। इस कविता में निराला की यथार्थोन्मुखता का परिचय मिलता है।

अनामिका मे तोड़ती पत्थर शीर्षक रचना में इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ती हुई मजदूर औरत का चित्र है। चिलचिलाती धूप में वह हथौड़े से पत्थर तोड़ रही है। वह जहां बैठी है, वहां कोई छायादार पेड़ नही है और लू से भूमि रूई की तरह झुलस रही है। वह कवि की सहानुभूति जगाती है और कवि लिखता है–

देखते देखा मुझे एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार
देखकर कोई नहीं,
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोयी नहीं।[10]

इन दीन हीन और दलित पीड़ितों की दुर्दशा से दुखी होकर कवि का मन विद्रोही हो उठता है और वह क्रांति का आवाहन करता है। निराला ने प्रगतिशील आन्दोलन के बहुत पहले ही धनी और निर्धन के भेद का कारण जान लिया था। आगे चलकर जब वह प्रगतिशील आन्दोलन के प्रति सहानुभूतिशील हुए और 'अणिमा', 'कुकुरमुत्ता', 'बेला' तथा 'नये पत्ते' में उन्होंने राजनीति की हलचलों को व्यंग्य–विनोद के माध्यम से अथवा सीधे ही अभिव्यक्त किया तब कोई आश्चर्य नही हुआ। निराला ने अपने काव्य में सामाजिक यथार्थ को अपनी कविताओं का विषय बनाया है। उनकी कविता जन साधारण की कविता है। नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं,"निराला को हम लोक जीवन या सामान्य मानव जीवन की भूमिका पर भारतीय उच्चादर्शों को लेकर चलते और दुहरे आशय की पूर्ति करते देखते हैं।"[11] सच तो यह है कि उन्होंने भारतीय लोगों की दीन हीन अवस्था को अपनी आँखों से देखा थां। इसीलिए वह उनकी मुक्ति के लिए क्रांति का आवाहन करने को तत्पर हुए। 'भिक्षुक', 'विधवा', 'दान' भी इसी कोटि की कविताएं हैं। इस संदर्भ में डॉ सरजू प्रसाद लिखते हैं, "नव जागरण की कविता में कवि जन सामान्य के सीधे संपर्क में हैं। वह उनसे दूर मंच पर खड़े होकर उनका उद्धार करने वाले मसीहा की मुद्रा में नहीं दिखाई देता है अपितु वह जन सामान्य का ही एक अंग दिखाई पड़ता है।"[12] राष्ट्रीयता का स्वर निराला की कविताओं में मुखरित हुआ है। देश के नव निर्माण में उनको बहुत विश्वास है। देश की सम्पत्ति के समाजीकरण के लिए वह क्रंति की अकांक्षा करते हैं। इस क्रांति का मुख्य उद्देश्य देश को विदेशी पराधीनता से मुक्ति और जन साधारण के सामाजिक जीवन में सुधार व परिवर्तन लाना है। राम विलास शर्मा का कहना है कि, "क्रांति वह करते हैं जो दुखी हैं, दूसरों के दुख को पहचानते हैं। क्रांति की मूल प्रेरणा मानव करुणा है जो मनुष्य का दुख दूर करना चाहती है। क्रांति का विनाशात्मक उद्देश्य तात्कालिक और अस्थायी हैः उसका मूल उद्देश्य रचनात्मक और स्थायी है।"[13]

धार कविता में निराला कहते हैं

'आज हो गए ढीले सारे बंधन
मुक्त हो गए प्राण
रुका है सारा करुणा क्रंदन।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला हिन्दी साहित्य जगत में एक चमकते सितारे की भांति है। जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से जन साधारण में एक क्रांति पैदा की। हिन्दी कविता को उन्होंने नया रुप देने का कार्य किया। उनका काव्य प्रत्येक दृष्टि से हिन्दी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 विजय बहादुर सिंह, प्रसाद निराला और पंत (छायावाद और उसकी वृहत्रयी), स्वरज प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण–2002, पृ.सं.–12

2 डॉ बच्चन सिंह, निराला का काव्य (औपनिवेशिक और उत्तर–औपनिवेशिक समय)

आधार प्रकाशन पंचकूला, प्रथम संस्करण–2005, पृ. सं.–14

3 रमेशचन्द्र भाह,निराला संचयिता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2001, पृ.सं.–1

4 रामविलास भार्मा, रागविराग : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–2006, पृ.सं.–61

5 उद्धृत, रजनी शिखरे, निराला और दिनकर की काव्य चेतना, विद्या प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण–2008, पृ.सं.–35

6 रजनी शिखरे, निराला और दिनकर की काव्य चेतना, विद्या प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण–2008, पृ.सं. –43

7 रामविलास भार्मा, रागविराग : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला',लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–2006, पृ.सं.–96

8 वही, पृ.सं.–113

9 वही, पृ.सं.–167

10 वही, पृ.सं.–167

11 नन्ददुलारे वाजपेयी, कमल प्रकाशन, जबलपुर, प्रथम संस्करण–2006, पृ.सं.–96

12 सरजू प्रसाद मिश्र, आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्तित्व अंकन, किताब घर नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2008, पृ.सं.–150

13 सं. नन्दकिशोर नवल, निराला रचनावली खंड–2, राधाकृश्ण प्रकाशन नयी दिल्ली, पृ.सं.–56

सुशासन के लिए भ्रष्टाचार को दूर करने की आवश्यकता

सुमित्रा सारण
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

आजादी के बाद देश ने तरक्की के कई सोपानों को पार नहीं किया है बल्कि आर्थिक, औद्योगिक, तकनीकी, सूचना क्रान्ति के रूप में सुदृढ होकर उभरा है। राष्ट्र आतंकवाद, नक्सलवाद, भ्रष्टाचार, जातिवाद, क्षेत्रवाद, मंहगाई की चुनौतियों से जूझता नजर आता है, वहीं स्वार्थ की राजनीति कोढ़ में खाज का काम कर रही है। कालाबाजारियों, दलालों, बाहुबलियों का दबदबा बढता जा रहा है। ऐसे में हम सबका दायित्व है कि चुनौतियों का सामना करने में मददगार बनें।

संकेताक्षर : *सुशासन, भ्रष्टाचार, औद्योगिक, स्वतंत्रता।*

आजादी के अवसर पर महात्मा गांधी ने सत्ता और भ्रश्टाचार के खतरों से सावधान रहने की चेतावनी दी।[1]

भ्रष्टाचार पर चर्चा करने से पूर्व यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि भ्रष्टाचार का आशय क्या है? वस्तुतः भ्रष्टाचार को आज सामान्यतः जिन आर्थिक सन्दर्भो के परिप्रेक्ष्य में जाना और समझा जाता है, वह मात्र इसके एक पक्ष को ही उजागर करता है, जो संकीर्ण दृष्टिकोण का परिचायक है। इसे व्यापक अर्थो में समझने के लिए सामाजिक, आर्थिक, वैधानिक एवं राजनीतिक आदि सन्दर्भों को ध्यान में रखते हुए इसके आशय और परिधि को ढूँढने का प्रयास करना ज्यादा समीचीन होगा।

भ्रष्टाचार का अर्थ– भ्रष्टाचार का शााब्दिक अर्थ भ्रष्ट अथवा बिगडे हुए आचरण से लिया जाता है। सरल शब्दों में भ्रश्टाचार को ''रिश्वत का कार्य'' कहा जाता है। दूसरे शब्दों में इसे "निजी लाभ के लिए सार्वजनिक शक्ति का इस प्रकार प्रयोग करना जिसमें कानून तोडना भाामिल हो या जिससे समाज के मानदण्डों का विचलन हुआ हो'' भी कहा जाता है। विद्वान एन्ड्रिसकी ने कहा है कि "ऐसे तरीकों में सार्वजनिक भाक्ति का निजी लाभ के लिए प्रयोग जो कानून का उल्लंघन करता हो।''[2]

''राजनीति में भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद, सत्ता की लालसा, मुनाफाखोरी और कालाबाजारी ने हाल के दौर में देश की धवल छवि को दागदार बना दिया है। हम लोग जब तक इनका नाश नहीं करते, इन्हें जड समेत नहीं उखाड फेंकते, तब तक जीवनोपयोगी वस्तुओं के उत्पादन और वितरण के साथ–साथ प्रशासन में कार्यकुशलता का स्तर बढाने में हम सक्षम नहीं हो पाएंगे।''

67 साल पहल राष्ट्र की स्वतंत्रता की पूर्व संध्या पर 14 अगस्त 1947 को दार्शनिक राजनेता डाक्टर एस. राधाकृष्णन ने 'उच्च पदों पर भ्रष्टाचार' के खिलाफ राष्ट्र को उपरोक्त शब्दों में चेतावनी दी थी। उन्होंने यह भी कहा था, 'कल से आज आधी रात से हम अंग्रेजो को दोष नहीं दे सकेंगे। हमारे लिए संभावनाऐं बहुत ज्यादा हैं, लेकिन मैं आपको चेतावनी दे रहा हूँ कि जब सत्ता, योग्यता की सीमा पार करेगी तो हमारे बुरे दिन शुरू हो जाएंगे।[3] आज हमारे देश की गणना विश्व के दस प्रमुख भ्रष्ट देशों में होती है, पूर्व राष्ट्रपति की दी उक्त 'चेतावनी को यदि हम ठीक से समझ लेते तो राष्ट्र की यह दशा न होती।

इसी संदर्भ में कंफ्यूशियस का कथन, "देश पर शत्रु का आक्रमण राजा के सिंहासन को हिला देता है, देश पर अकाल का आक्रमण प्रजा के विश्वास को नष्ट कर देता है, किन्तु भ्रष्टाचार का आक्रमण राजा और प्रजा दोनों को ही किसी दिन का नहीं रखता'',[4] भी हमारी बदतर होती स्थिति को स्पष्ट करता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रारंम्भिक दशकों में हमारा देश न तो खाद्यान्न में आत्मनिर्भर था और न ही वैज्ञानिक तकनीक, व्यापारिक क्षेत्र में आत्मनिर्भरता थी। कालान्तर में देश ने चहूँ दिशा में उन्नति की एवं एक महाशक्ति, महाबाजार के रूप में उभरा किन्तु इस प्रगति के साथ भ्रष्टाचार, नैतिक मूल्यों का पतन जैसी विसंगतियां भी जुड गयी, वर्तमान में भ्रष्टाचार की सर्वग्राही वृत्ति हमारे समाज पर अपने गहरे असर दिखा रही है। आज राजनीति हो, संस्कृति हो या समाज का अन्य कोई अवयव हो सब भ्रष्टाचार के चंगुल में है और हम निरन्तर एक पतनोन्मुखी संस्कृति के वारिस बनते जा रहे है। भ्रष्टाचार एक तरह से हमारे जीवन का हिस्सा बन चुका है।[5]

भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए लोकपाल नियुक्ति करने को लेकर देशभर में बवाल मचा था अन्ना हजारे की अगुवाई में हजारों लोगो ने कई आन्दोलन किये।

केवल कानून ही काफी नहीं - आज व्यक्ति अपना जीवन स्तर सुधारने के लिए कोई भी जोखिम लेने को तैयार है। यहीं से भ्रष्टाचार का जन्म होता है। समाज में नैतिक मूल्यों का स्तर तेजी से गिरता जा रहा है। उपर से लेकर नीचे तक भ्रष्टाचार का बोलबाला है। राजनीति पार्टियों के तमाम वादों और दावों के बावजूद भ्रष्टाचार पर कोई भी रोक नहीं लग सकी है। हमें यह सोचना होगा कि आखिर कहां कमी रह जा रही है? हमारे देश में भ्रष्टाचार को रोकने के लिए क्या कानून नहीं है या है तो नाकाफी है ? क्या उन कानूनों का जमीनी स्तर पर ठीक ढंग से क्रियान्वयन नहीं हो पा रहा है ? अगर हम इन सब सवालों का जवाब ढूंढ़ेगे तो पाएंगे कि हमारे देश में भ्रष्टाचार रोकने के लिए कानून तो पहले से ही मौजूद है। लेकिन उनका कई तरह के दबाव के कारण सही उपयोग नहीं हो पाता है।

जनता हो जागरूक - जो लोग सख्त कानून बनाकर भ्रष्टाचार रोकने की बात कर रहे है, वे यह भूल जाते है कि दुनिया में ऐसे कई उदाहरण है, जब सख्त कानूनों का विपरीत असर पड़ा है। केवल सख्त कानून बनाने देने भर से स्थिति अगर बदल जाती तो कोई भी देश इसमें पीछे नहीं रहता। देश में मौजूद कानून में ही एक क्लर्क से लेकर प्रधानमंत्री तक को पकड़ने की क्षमता है। अगर उसका पूरा इस्तेमाल नहीं हुआ, तो कानून की कमी के कारण नहीं, बल्कि उसको लागू करने वालों की प्रवृति के कारण हुआ। सिर्फ नए कानून बनाकर यह परिस्थिति बदलने वाली नहीं है, क्योंकि लोग तो वहीं रहेगे। जब तक जनता स्वाभिमानी नहीं होगी, तब तक बहुत ज्यादा सुधार नहीं होने वाला है।[6]

लोगो में कानून का हो डर - आज निचले स्तर पर भ्रष्टाचार के मामले ज्यादा आते है। जनता का काम बिना सुविधा शुल्क दिए होना मुश्किल हो गया है। लेकिन यह भी तो देखे कि इसकी आदत किसने डाली? आज लोगों में कानून का डर पैदा करने की जरूरत है। लोगों को यह एहसास कराने की जरूरत है कि अगर वे कुछ गलत करेंगे तो कानून उन्हें छोड़ेगा नहीं। जहां तक ताकतवर लोगों के भ्रष्टाचार में लिप्त होने का सवाल है जिसे हम व्हाईट कॉलर क्राईम भी कहते है। आखिर क्यों बच जाते है कानून के शिकन्जे से ? इसका सीधा सा जवाब है कि उनकी राजनैतिक पकड़ इतनी मजबूत होती है कि कोई भी इन पर हाथ डालने से डरता है।

जजों के पद भरे तो बने बात - भ्रष्टाचार के मामलों का सालों साल लंबित रहना भी समस्या का एक प्रमुख कारण है। हमारे देश में भ्रष्टाचार के मामले 10 से 15 सालों तक लंबित रहते है। इन केसों की सुनवाई करने के लिए कई बार फास्ट ट्रेक कोर्ट की मांग की जाती है। लेकिन हम किसी भी राज्य में दो या तीन ही तो फास्ट ट्रेक कोर्ट बना सकते है जो लंबित मामलों की तुलना में काफी कम है। फिर न्यायालयों में जजों की जो कमी है उसने भी समस्या को गंभीर कर दिया है। इस मामले में सुप्रीम कोर्ट जरूर कुछ कर सकता है। आज देश मे सुप्रीम कोर्ट के पास भी लंबित मामले काफी संख्या में है। अमरीका में बहुत ज्यादा जरूरी केसों को ही सुप्रीम कोर्ट मे ले जाया जाता है लेकिन हमारे यहां तो यह आम बात है। इस दिशा में भी काम करने की जरूरत है।[7]

पूर्व राष्ट्रपति ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने कहा था कि बहुत जरूरी है कि लोकतंत्र के तीनो स्तम्भ विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका बेहद मजबूत, शुद्ध, भ्रष्टाचार से मुक्त और बेदाग आचरण वाले होने चाहिए।

आज हम कही भी चले जाएं कोई भी व्यक्ति अपने दिल पर हाथ रखकर यह कसम नहीं खा सकता कि उसने किसी न किसी तरह का भ्रष्टाचार की नहीं किया।

भ्रष्टाचार के विरुद्धजन चेतना जाग्रत करने के लिए हमे हर नागरिक को यह संकल्प लेना होगा कि न तो हम भ्रष्टाचार करेगे और न ही भ्रष्टाचार को बढ़ावा देगे। तभी हम आने वाली पीढ़ियों को भ्रष्टाचार मुक्त सुशासन समाज दे सकेगें।यह कार्य दृढ़ इच्छा शक्ति से ही हो सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *नारायण, इकबाल : राजनीति शास्त्र के सिद्धांत पृष्ठ 61।*
2. *गुन्नार मिर्डल, एशियन ड्रामाःएन इन्क्वायरी इनटू पावर्टी ऑफ नेहरू, 1972 पृष्ठ 116*
3. *द टाइम्स ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 15 अगस्त 1947*
4. *ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल रिपोर्ट, 2007*
5. *डॉ. वासुदेव चावला, डॉ.विरेन्द्र वर्मा–भारतीय राजनीति में भ्रश्टाचार के बदलते आयाम पृष्ठ 167*
6. *आर.के.राघवन, सीबीआई के पूर्व निदेशक– राजस्थान पत्रिका जोधपुर शनिवार दिनांक–02.08.2014*
7. *आर.के.राघवन, सीबीआई के पूर्व निदेशक– राजस्थान पत्रिका जोधपुर शनिवार दिनांक– 02.08.2014*

महिलाओं का सामाजिक व आर्थिक सशक्तिकरण

डॉ. चित्रा जादौन
जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

सशक्तिकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसमें जीवन में महिला सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्र में अपनी शक्ति व पहचान महसुस कर सके। महिला योजना बनाने, निर्णय निर्माण और जीवन के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में अपनी भूमिका निभा सके। सशक्तिकरण एक सक्रिय प्रक्रिया है जो महिलाओं को स्वयं की पहचान देती है। समाज के किसी वर्ग के सशक्तिकरण की प्रक्रिया से तात्पर्य व्यवस्था में निहित कारणों को परिवर्तित करने से है जो विकास की प्रक्रिया में उस वर्ग विशेष (महिला) को उत्तरोत्तर पीछे छोड़ देते हैं।

संकेताक्षर : *सशक्तिकरण, गरीबी उन्मूलन, निर्णय प्रक्रिया, आर्थिक अन्तर्राष्ट्रीयकरण, स्त्रीकरण, आधारभूत, संरक्षण, संवेदनशीलता*

सार्वभैमिककरण तथा आर्थिक संरचनात्मक सुधारों के कारण यद्यपि आर्थिक वृद्धि हुई है किन्तु उसी के साथ–साथ विभिन्न प्रकार की विषमताऐं भी उत्पन्न हुई है जैसे पर्यावरण का ह्रास तथा विश्व स्तर पर अनिश्चितता के वातावरण के कारण विकासशील देशों की सरकारों की अपनी जनसंख्या की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता में कमी हुई है। विश्व में जो आर्थिक परिवर्तन आ रहे हैं, उनके फलस्वरूप सामाजिक विकास के मानकों में परिवर्तन हो रहे हैं। इन सबमें एक महत्त्वपूर्ण रुझान यह भी है कि महिलाओं की गरीबी में वृद्धि हुई है जिसका अनुपात अलग–अलग देशों में भिन्न है। आर्थिक शक्ति की साझेधारी में स्त्री–पुरुष की विषमता ने महिलाओं की गरीबी में वृद्धि करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। गाँवों से बाहर पलायन और उसके कारण परिवार की संरचना में परिवर्तन के कारण महिलाओं पर भार बढ़ा है। विशेष तौर से उन पर निर्भर परिवार के बहुत से सदस्य है। वृहत स्तर पर आर्थिक नीति निर्धारकों को इन बातों पर ध्यान देना चाहिए किन्तु ज्यादातर नीतियाँ केवल औपचारिक क्षेत्र पर ही ध्यान देती है। इस प्रकार की नीतियाँ महिलाओं की पहल शक्ति को बाधित करती हैं और वे इस तथ्य पर विचार करना भूल जाती है कि ये महिलाओं और पुरुषों पर भिन्न–भिन्न प्रभाव डालती हैं। इसलिए विविध प्रकार नीतियों और कार्यक्रमों में लिंग विश्लेषण व्यापक रूप से किया जाना आवश्यक है तब ही वे गरीबी निवारण में सफल हों। अतः गरीबी निवारण तथा टिकाऊ विकास के उद्देश्य की पूर्ति हेतु यह अनिवार्य है कि गरीबी उन्मूलन हेतु महिलाएं और पुरुष आर्थिक तथा सामाजिक नीतियों के निरुपण में समान रूप से भाग लें। गरीबी उन्मूलन केवल गरीबी निवारण कार्यक्रमों से दूर नहीं होगी वरन् इसके लिए आर्थिक संरचना में महिलाओं की जनतांत्रिक भागीदारी और परिवर्तन आवश्यक है ताकि महिलाओं को सभी संसाधनों, अवसरों तथा सरकारी सेवाओं/सुविधाओं में सुगम पहुँच मिल सके।

यहाँ इस बात पर बल देना अति आवश्यक है कि विशेषकर विकासशील देशों में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाली स्त्रियों की संख्या में, पुरुषों की अपेक्षा अधिक वृद्धि हुई है। गरीबी का स्त्रीकरण (feminisation) ऐसे देशों में अधिक बढ़ा है जहाँ राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक परिवर्तन तेजी से हो रहे हैं। आर्थिक कारकों के अतिरिक्त स्त्रियों के लिए समाज द्वारा आरोपित (ascribed) कार्यों की कड़ाई के कारण उनकी शक्ति, शिक्षा, प्रशिक्षण तथा उत्पादक संसाधनों में सीमित पहुँच रह पाई है।

महिलाएँ अपना योगदान अर्थव्यवस्था तथा गरीबी निवारण में घर, समाज, कार्यस्थल में वैतनिक तथा अवैतनिक कार्य करके देती हैं। इसलिए गरीबी उन्मूलन हेतु महिलाओं का सशक्तिकरण अपरिहार्य है यद्यपि गरीबी के कारण पूरा परिवार ही त्रस्त होता है किन्तु स्त्रियों को पूरे परिवार के उत्पादन तथा उपभोग को दुर्लभ होने के बावजूद देखना होता है। इसके अतिरिक्त उनकी आर्थिक संसाधनों जैसे ऋण, भूमि का स्वामित्व तथा विरासत न होना और निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी न्यूनतम भूमिका के कारण वे दिन प्रतिदिन अपनी स्थिति सुधारने में असमर्थ होती है।

भारतवर्ष में ही यदि प्रदेशवार स्थिति देखी जाए तो कुछ प्रदेश जैसे बिहार (33.87), उत्तर प्रदेश (42.60) तथा राजस्थान (44.34) में स्थिति और भी खराब है। रोजगार के मामले में भी पुरुषों की तुलना में उनकी भागीदारी बहुत कम है। जबकि पुरुषों में लगभग 46 प्रतिशत भागीदारी दर स्त्रियों में यह 96.8 प्रतिशत है। इसी प्रकार मुख्य कार्य करने वाले मेन वर्कर्स में पुरुषों का प्रतिशत 36 है जबकि स्त्रियों का केवल 6.4 है। यदि कृषि तथा घरेलू उद्योगों में रोजगार की स्थिति को देखा जाए तो कृषकों में स्त्रियों का प्रतिशत 36 पुरुषों (42) की तुलना में कम है। हाँ कृषक मजदूरी के मामले में स्त्रियों का 36 प्रतिशत पुरुषों (20) की अपेक्षा अधिक है। घरेलू उद्योग में भी महिलाएँ अधिक कार्यरत हैं। अन्य (उद्योग/व्यवसाय) जिसमें बहुत से महत्त्वपूर्ण क्षेत्र शामिल हैं, में महिलाओं की भागीदारी पुरुषों की अपेक्षा बहुत कम हैं। आँकड़े दर्शाते हैं कि भारत की 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं पशुपालन के कार्य में अपनी आजीविका अर्जित करती है और कार्य करने वाली कुल महिलाओं का 84 प्रतिशत कृषि एवं पशुपालन में संलग्न है। किन्तु सरकार की कृषि नीति तथा कार्यक्रमों में पुरुष ही प्रधान माना जाता है।

यह भी स्पष्ट है कि ये कार्यरत स्त्रियाँ ऐसी पृष्ठभूमि से आती हैं, जहाँ इनके पास कोई उत्पादक परिसम्पत्ति नहीं हैं और न ही उनके पास कोई कौशल है कि वे कृषि के बाहर रोजगार पा सकें। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतर स्त्रियाँ केवल मौसमी (seasonal) कार्य करने वाली है। चूँकि इन्हें पूरे वर्ष रोजगार नहीं मिल पाता और वर्ष के अधिकांश समय में वे बेरोजगार ही रहती हैं। निरक्षरता, अज्ञानता, सामाजिक बन्धनों व समाज में उनकी नीची स्थिति के कारण उनके भीतर अधिक कमाने की आकांक्षा भी नहीं है। उनमें परिवार के जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने हेतु आवश्यक आत्मविश्वास भी नहीं हैं। आधारभूत सेवाओं और सुविधाओं के कारण समाज में नीची स्थिति और भी दुःखदायी हो जाती है। भारतवर्ष में ग्रामीण क्षेत्रों में 9000 परिवारों में 682 परिवारों के पास अभी भी स्वच्छ शौचालय नहीं है और मात्र 95 प्रतिशत परिवारों के पास सुरक्षित पेयजल उपलब्ध है। इसी के साथ-साथ 45 प्रतिशत घरों में अभी भी जलाऊ लकड़ी, 97 प्रतिशत फसलों का अवशेष तथा 25 प्रतिशत गोबर खाना पकाने के लिए ईंधन के रूप में प्रयोग होता है। इन सभी कारणों से स्त्रियों की दशा शोचनीय हो जाती हैं। चूँकि ईंधन तथा पेयजल लाने का कार्य स्त्रियों का ही है और कतिपय क्षेत्रों में इस कार्य में लम्बा समय लता है और उनके स्वास्थ्य पर भी इसका दुष्प्रभाव पड़ता है। घर के बाहर शौच जाने के कारण असुरक्षा, बीमारी तथा अन्य समस्याएं पैदा हो जाती हैं।

महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण

क गरीबी उन्मूलन

चूँकि ज्यादातर महिलाऐं गरीबी रेखा से नीचे या उनमें से बहुत सी अत्यन्त गरीब की श्रेणी में आती हैं, इसके कारण घर के अन्दर तथा समाज में वह भेदभाव की शिकार होती है। ऐसी महिलाओं की आवश्यकताओं तथा समस्याओं को ध्यान में रखते हुए गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम चलाने की आवश्यकता है। वर्तमान गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम जो महिला लाभार्थी को प्रोत्साहित करते हैं, के क्रियान्वयन में सुधार लाया जाय।

ख सूक्ष्म ऋण (माइक्रोक्रेडिट)

महिलाओं की पहुँच संस्थागत ऋण स्त्रोतों से उनके उपभोग तथा उत्पादन हेतु ऋण आवश्यकता की पूर्ति करना। सूक्ष्म ऋण संस्थाओं को सूक्ष्म ऋण प्रदान करने हेतु चुस्त एवं दुरुस्त करना ताकि वृहद स्तर से महिलाओं की ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकें।

ग वृहद स्तर पर अर्थव्यवस्था

आर्थिक विकास के सन्दर्भ में उच्च स्तर पर आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों को महिलाओं के हित के परिप्रेक्ष्य में जाना जायेगा तथा आर्थिक प्रक्रिया में उनकी सहभागिता सुनिश्चित की जायेगी। सामाजिक और आर्थिक विकास के क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका उत्पादक तथा कार्यकर्त्ता के रूप में (औपचारिक तथा अनौपचारिक) को उभारा जायेगा। साथ ही उनके रोजगार तथा कारखानों की विषम परिस्थितियों को सुविधाजनक बनाने हेतु आवश्यक नीतियों का निर्धारण किया जायेगा। आर्थिक क्षेत्र में बढ़ते हुए अन्तर्राष्ट्रीयकरण का असर महिलाओं के रोजगार तथा

रोजगार के गुणात्मक पक्षों पर सीधा प्रभाव डालती है। इस परिप्रेक्ष्य में रोजगार सम्बन्धी नीतियों में आवश्यक सुधार लाने की आवश्यकता है। आर्थिक अन्तर्राष्ट्रीयकरण सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव से निपटने हेतु महिलाओं की क्षमता में विकास तथा सशक्तिकरण हेतु नीति बनाई जायेगी।

घ कृषि एवं महिलाएं

चूँकि कृषि के क्षेत्र में उत्पादक के रूप में महिला की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, अतः यह आवश्यक है कि वे प्रशिक्षण, कृषि विकास एवं अन्य कार्यक्रमों का समुचित लाभ उठा सकें। कृषि के क्षेत्र में जैसे भूमि संरक्षण, सामाजिक वनीकरण, दुग्ध विकास, मुर्गी पालन, मछली पालन इत्यादि में प्रशिक्षण तथा इसी क्षेत्र से जुड़ी योजनाओं को महिलाओं हेतु विस्तारित करना।

ङ उद्योग एवं महिलाएं

उद्योग जैसे इलेक्ट्रोनिक्स, इन्फोर्मेशन टेक्नोलॉजी, खाद्य प्रसंस्करण, कपड़ा तथा कृषि आधारित उद्योगों के विकास में महिलाओं की महत्त्वपूर्ण भागीदारी रही है। विभिन्न उद्योगों के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने हेतु सरकार समर्थनकारी सहयोग देने पर विचार कर रही है जैसे सामाजिक संरक्षण, श्रमिक कानून इत्यादि।

च समर्थन कार्य/सेवाएं

सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने हेतु सरकार समर्थनकारी सेवाओं का विस्तार करेगी जैसे बाल विकास सेवाएं, कार्यस्थल पर शिशु गृह की व्यवस्था तथा शैक्षिक संस्थाओं में शिशु पालन केन्द्र (क्रेंच) की व्यवस्था।

छ महिलाओं का सामाजिक सशक्तिकरण

1. शिक्षा

समानता के आधार पर समस्त महिलाएं एवं बालिकाओं की पहुँच शैक्षिक संस्थाओं में स्थापित करना। महिलाओं के प्रति भेदभाव, अशिक्षा की समाप्ति तथा जेण्डर संवेदनशीलता पर आधारित शैक्षिक तंत्र के निर्माण हेतु विशेष प्रयास किये जायें। साथ ही बालिकाओं के नामांकन एवं ठहराव, शिक्षा की गुणवत्ता में बेहतरी के भी प्रयास किये जायें, जिससे जीवनपर्यन्त शिक्षा हेतु वातावरण तैयार किया जा सके तथा उनमें तकनीकी कौशल का विकास सम्भव हो सके। उच्च प्राथमिक तथा उच्च शिक्षा में जेण्डर भेद तथा सामाजिक भेद को समाप्त करने हेतु प्रयास करना तथा जेण्डर संवेदीकरण पर आधारित पाठ्यक्रम सभी शैक्षिक स्तरों पर लागू करना।

2. स्वास्थ्य

स्वास्थ्य का तात्पर्य समग्र स्वास्थ्य से है। इसमें न केवल शारीरिक व मानसिक वरन् सामाजिक पहलू भी शामिल है और इसमें सम्पूर्ण जीवनकाल, भ्रूण अवस्था से वृद्धावस्था तक स्वास्थ्य का माना जाता है। महिला के स्वास्थ्य को मातृत्व मृत्यु दर के लक्ष्यों को प्राप्त करने पर सरकार समुचित बल देगी। स्वास्थ्य से सम्बन्धित राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 में वर्णित विभिन्न रणनीतियों का प्रभावी रूप से क्रियान्वयन करने हेतु सरकार ठोस कदम उठायेगी।

3. कुपोषण

चूँकि महिलाओं में कुपोषण की समस्याएं शिशु, बालिका स्तर, किशोरावस्था तथा गर्भावस्था में अत्यन्त गम्भीर होती है। अतः सूक्ष्म तथा वृहद स्तर पर गर्भावस्था मातृत्वकाल में कुपोषण की समस्याओं को दूर करने हेतु कदम उठाए जायेगें। गृह स्तर पर पोषण सम्बन्धी महिलाओं एवं बालिकाओं के प्रति भेदभाव को दूर करने हेतु विशेष रणनीति बनाई जाए। साथ ही पोषण, शिक्षा का भी विस्तार किया जायेगा।

3. जल एवं स्वछता

ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में महिलाओं की स्वच्छ पेयजल की आवश्यकता, शौचालय एवं स्वच्छता इत्यादि को ध्यान में रखते हुए इन सुविधाओं का विस्तार इस प्रकार किया जायेगा ताकि ये सुविधाएँ महिलाओं की पहुँच के अन्दर हों और वे इन सुविधाओं का भरपूर लाभ उठा सकें।

5. आवास/आश्रय

शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में आवास नीतियों, आवासीय योजनाओं को विकसित करते समय महिला परिप्रेक्ष्य का ध्यान रखा जायेगा। अकेली महिला, महिला मुखिया वाले परिवार, कामकाजी महिला, छात्राओं हेतु सुरक्षित आवास की व्यवस्था करने पर विशेष ध्यान दिया जायेगा।

6. पर्यावरण

पर्यावरण संरक्षण तथा पर्यावरण विकास में महिलाओं की स्थिति पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। पर्यावरण के विकास तथा संरक्षण में महिलाओं की सहभागिता सुनिश्चित की जायेगी। गैर व्यवसायिक ऊर्जा के स्त्रोतों पर जैसे गोबर, जलावन की लकड़ी, फसलों की जड़ें इत्यादि पर ऊर्जा हेतु महिलाओं की निर्भरता को कम करने हेतु सरकार महिलाओं के लिए गैर पारम्परिक ऊर्जा स्त्रोतों के विकास पर बल देगी।

7. विज्ञान एवं तकनीकी

सरकार विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने का प्रयास करेगी। बालिकाओं को विज्ञान एवं तकनीकी उच्च शिक्षा में पढ़ाने हेतु भी उन्हें प्रोत्साहित किया जायेगा। महिलाओं की आवश्यकता के अनुसार उनके कामकाज के बोझ को कम करने हेतु उपयुक्त विकास को भी बढ़ावा दिया जायेगा।

8. महिला एवं विषम परिस्थितियाँ

विषम परिस्थितियों में रहने वाली महिलाएं जैसे अत्यन्त गरीबी की स्थिति, निस्सहाय महिलाएं, अपाहिज महिलाएं, वृद्ध महिलाएं, अकेली महिलाएं, बाढ़ तथा सूखे से प्रभावित महिलाएं, परित्यक्ता, नौकरी से निष्कासित महिलाएं, विस्थापित महिलाएं तथा वेश्याओं की सहायतार्थ सरकार विशेष सहायता योजनाएं बनाएगी तथा वर्तमान में चल रही योजनाओं को प्रभावी क्रियान्वयन हेतु प्रयास किया जायेगा।

9. हिंसा

सरकार महिला जिसमें कन्या भ्रूण से लेकर वृद्ध भी शामिल है, के जन्म तथा अस्तित्व, अधिकारों के लिए वचनबद्ध है। देश में एक ऐसे वातवरण का सृजन किया जायेगा जिसमें महिलाओं के प्रति किसी भी प्रकार की हिंसा पर कड़ी रोक लाई जायेगी ताकि महिलाएं अपने निजी तथा सार्वजनिक जीवन में भयमुक्त जीवन का अधिकार प्राप्त कर सकें।

हिंसा के अन्तर्गत न केवल शारीरिक बल्कि मानसिक, यौनिक, आर्थिक दमन, शोषण एवं वंचना भी शामिल हैं। साथ ही किसी भी प्रकार की धमकी देने व अधिकारों के हनन को भी हिंसा में शामिल किया जायेगा। देहेज, कार्यस्थल पर यौन प्रताड़ना तथा महिलाओं पर हिंसा करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध कठोर कार्यवाही की जायेगी।

10. बालिकाओं के अधिकार

बालिकाओं के प्रति किसी भी प्रकार की हिंसा या उनके अधिकारों का हनन, परिवार में या समाज में समाप्त करने हेतु तथा इसकी रोकथाम हेतु सरकार प्रभावी कदम उठायेगी। बाल विवाह, बालिका भ्रूण हत्या, बाल वेश्यावृत्ति के विरुद्ध कठोर कानूनी कदम उठाये जायेंगे। बालिकाओं के पोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा आदि के लिए योजनाबद्ध तरीके से कार्य किये जायेंगे। बाल मजदूरी को समाप्त करने से सम्बन्धित कार्यक्रमों को भी गति प्रदान की जायेगी।

11. संचार माध्यम

संचार माध्यमों को बालिकाओं एवं महिलाओं का मानवीय सम्मान एवं आदर पर आधारित छवि प्रदर्शित करने हेतु उत्साहित किया जायेगा।

सारांश

बदलती हुई वैश्विक स्थिति व आर्थिक संरचनाओं के कारण महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति में परिवर्तन हो रहे हैं। महिलाओं में आर्थिक निर्भरता व स्थिर विकास के लिए महिलाऐं व पुरुष नीतियों के निरूपण में समान रूप से भाग लें। विकासशील देशों में जहां सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिवर्तन तेजी से हो रहे हैं। वहाँ महिला का आर्थिक स्तर में तेजी से परिवर्तन हुआ है।

महिलाएँ अर्थव्यवस्था के विकास में अपना योगदान देने के बावजूद आर्थिक अधिकार वास्तविक रूप में प्राप्त न होने के कारण, निर्णय प्रक्रिया में न्यूनतम भागीदारी के कारण अपनी सामाजिक व आर्थिक स्थिति को सक्षम बनाने में असमर्थ रही है।

महिलाओं के सामाजिक व आर्थिक सशक्तिकरण हेतु शैक्षिक भेदभाव, स्वास्थ्य के मानकों, कुपोषण, स्वच्छता आदि तत्वों की प्राप्ति को सुनिश्चित किया जाये। आर्थिक प्रक्रिया में महिला भागीदारी को सुनिश्चित करके ही महिला सशक्तिकरण के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। महिलाओं को विषम परिस्थितियों में राहत योजनाऐं, बाल अधिकारों की क्रियान्विति, हिंसा से मुक्ति व संचार माध्यमों का उपयोग महिला सशक्तिकरण की दिशा में सकारात्मक कदम है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *गरीबी उन्मूलन एवं महिला सशक्तिकरण–प्रेमनारायण शर्मा, वाणी विनायक*
2. *महिला सशक्तिकरण एवं लिंगभेद–डॉ. ऋचा राज सक्सेना, डॉ. ऋचा साहनी*
3. *महिला सशक्तिकरण एवं समग्र विकास–प्रेम नारायण शर्मा*
4. *शिक्षा एवं महिला सशक्तिकरण–वी. विनायक, प्रेमनारायण शर्मा*
5. *महिला साक्षरता एवं सशक्तिकरण–डॉ. मंजु शुक्ला*

विज्ञान एवं अध्यात्मवाद का समन्वय

shodhshree@gmail.com

मिथिलेश कवर
शोधार्थी,मेवाड़ विश्वविद्यालय,चित्तौड़गढ़
सुशील शर्मा
प्रोफेसर, मेवाड़ विशविद्यालय,चित्तौड़गढ़

शोध सारांश

वैज्ञानिक आध्यात्मवाद को समझने के लिए हमें इस तथ्य पर ध्यान देना होगा कि हमारे समक्ष जो विश्व ब्रह्माण्ड है, वह मूलतः दो सत्ताओं से मिलकर बना है– एक जड़ व दूसरा चेतन। जड़ सत्ता अर्थात् पदार्थ का अध्ययन विज्ञान का विषय है जबकि चेतन सत्ता आत्मा–परमात्मा का अध्ययन अध्यात्म का विषय है। अतः इस ब्रह्माण्ड को पूरे तौर से समझने के लिए हमें इन दोनों ही सत्ताओं को ध्यान में रखना होगा। भारतवर्ष में अध्यात्म और विज्ञान का सदा से समन्वय रहा है। वेद एवं वैदिक वाग्म्य विज्ञान और अध्यात्म को साथ–साथ लेकर चलते हैं, फिर चाहे आयुर्वेद हो अथवा वास्तु। पश्चिमी देशों में भी एक लम्बे अर्से तक विज्ञान एवं अध्यात्म साथ–साथ रहे। प्रत्येक वैज्ञानिक ग्रन्थ में परमात्मा की चर्चा पाई जाती थी।

संकेताक्षर : *विज्ञान, अध्यात्मवाद, अध्ययन, वेद, आयुर्वेद, पदार्थ।*

स सर आइजेक न्यूटन ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्रिन्सपिया' में परमात्मा की चर्चा करते हुए लिखा है कि परमात्मा ने इस ब्रह्माण्ड की रचना की और इसे एक संवेग प्रदान किया, जिसके कारण वह गतिशील है। उन्होंने यह भी लिखा कि ब्रह्माण्डरूपी नाटक के मंच पर जब कोई विकृति पैदा होती है, तो परमात्मा स्वयं उसे ठीक करता है। यह भाव कुछ इसी तरह का है जैसा की गीता में कहा गया है–

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधुनां विनाशय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।'

अध्यात्म का अर्थ एवं स्वरूप- आत्मनि अधि–विग्रह, अव्ययी भाव समास के द्वारा अध्यात्म शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है–आत्मा का है आधार जिसका अथवा आत्मा के आधार से जो होता है उसे अध्यात्म कहते हैं।

इस प्रकार मुख्यतः आत्म द्रव्य, आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सूख आदि स्वभाव, आत्मा के स्वाभाविक एवं वैभाविक परिणाम (पर्यायें) तथा गौण रूप से आत्मा के साथ संयोग रूप में रहने वाले शरीरादि अचेतन पदार्थ, गतियाँ, इन्द्रियाँ, द्रव्य प्राण, कर्म आदि का आधार आत्मा भी होने से ये सब अध्यात्म के अन्तर्गत अध्ययन के विषय हैं।

देखा जाये तो अध्यात्म शब्द, दो शब्दों से मिलकर बना हैः

अध्यात्म = अधि + आत्म

'अधि' शब्द का साहित्य में निम्न तीन अर्थो में प्रयोग हआ है। जैसे अधि अर्थात्

1. जानना जैसे अध्ययन,
2. महत्वपूर्ण होना जैसे अधिक और
3. निकटवर्ती होना जैसे अध्यग्नि अर्थात विवाह संस्कार की अग्नि के निकट।

आत्म या आत्मा अर्थात् जानने–देखने वाला, सुख–दुख का अनुभव करने वाला चेतन पदार्थ।

अब अधि शब्द के तीनों अर्थों को आत्मा शब्द के साथ लगाकर देखने पर अध्यात्म शब्द के तीन अर्थ होते हैं जो निम्न प्रकार हैं।

1. अध्यात्म = अधि + आत्म = जानना + आत्मा अर्थात् आत्मा का ज्ञान या आत्मा को जानना

अतः अध्यात्म शब्द का प्रथम अर्थ होगा – आत्मा को सम्पूर्णतः एवं यथार्थतः जानना, द्रव्य–गुण–पर्याय रूप से जानना, विभिन्न दृष्टिकोणों से जानना।

2. अध्यात्म = अधि+आत्म = आत्मा का महत्वपूर्ण होना/लगना। अर्थात् अन्य समस्त सांसारिक जड़–चेतन वस्तुओं की तुलना में आत्मा का (अपने आत्मा का) अधिक या महत्वपूर्ण लगना। फलतः निज आत्मा के प्रति रुचि उत्पन्न होना।

3. अध्यात्म = अधि+आत्म =आत्मा के निकटवर्ती होना। अर्थात आत्मा को आत्मपने से जानना, अनुभव करना, उसमें लीन होना।

उक्त तीनों अर्थों को समेकित रूप से देखा जाये तो अध्यात्म शब्द का अर्थ व प्रयोजन दोनों स्पष्ट हो जाते हैं।

अध्यात्म एक विज्ञान हैः- किसी भी वस्तु या वस्तुओं से सम्बन्धित सत्य, क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित ज्ञान विज्ञान कहलाता है। साथ ही विज्ञान के अन्तर्गत खोजे गये नियम या सिद्धान्त सार्वभौमिक एव सार्वकालिक होते हैं। यह भी सुविदित तथ्य है कि सभी वस्तुओं में कुछ सामान्य गुण होते हैं और कुछ विशेष गुण होते हैं। भौतिक विज्ञान की दृष्टि से पदार्थों में पाये जाने वाले द्रव्यमान, जड़त्व, गुरुत्व, घनत्व आदि सामान्य गुण हैं तथा प्रत्येक द्रव्य में उसके अपने विशेष गुण भी होते हैं जिनसे वह अन्य द्रव्यों से पृथक जानने में आता है। जैसे सोने व लोहे के, नमक व शक्कर के विशेष गुण स्पष्ट ही भिन्न भिन्न होते हैं। प्रयोगशालाओं में प्रयोग करने पर वे वैज्ञानिक सिद्धान्त तथा गुण सत्य सिद्ध होते हैं, जो वैज्ञानिक सिद्धान्तों की प्रामाणिकता का समर्थन करते हैं। यदि अध्यात्म को भी विज्ञान की कसौटी पर कसा जाय तो अध्यात्म भी एक विज्ञान है ऐसा सिद्ध होता है क्योंकि सभी द्रव्यों में सामान्य व विशेष गुण पाये जाते हैं जैसे सभी जीवों में पाये जाने वाले दर्शन, ज्ञान व सुख आदि जीव के विशेष गुण हैं तथा अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व आदि चेतन–अचेतन सभी द्रव्यों में पाये जाने से सामान्य गुण हैं। विभिन्न पदार्थों के सम्बन्ध में, अध्यात्म के सिद्धान्त यथा – स्वतन्त्र परिवर्तनशीलता, निमित्त–नैमित्तिक सम्बन्ध, कर्म सिद्धान्त आदि अनेक सिद्धान्त सार्वकालिक व सार्वभौमिक सिद्धान्त हैं, जो लौकिक जीवन का गहन विशलेषण करने पर अथवा अनुभव की कसौटी पर कसने पर सत्य सिद्ध होते हैं। जिस प्रकार आधुनिक विज्ञान तर्क, अनुमान, प्रयोग एवं अनुभव के आधार पर लक्ष्य की ओर बढ़ता है तथा उसका उद्देश्य मानव जीवन को सरल, सहज व आनन्दमय बनाना है। उसी प्रकार अध्यात्म भी तर्क, अनुमान प्रयोग व अनुभव के आधार पर अपने आत्महित रूप लक्ष्य (सच्चे सुख की प्राप्ति) की ओर बढ़ता है तथा उसका उद्देश्य भी आत्मा की पूर्ण शुद्ध निर्विकार सच्चिदानन्दमय दशा की उपलब्धि करना है।

हमारे मनीषियों ने अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोषों की विवेचना की है। सम्प्रति इसकी विवेचना का अवकाश नहीं है। हमारा मंतव्य यह प्रतिपादित करना है कि धर्म–दर्शन एवं विज्ञान के सम्बन्ध की चर्चा के समय मनोमय कोष की उपेक्षा करना सम्भव नहीं है। हम केवल यह कहना चाहते हैं कि विज्ञान एवं अध्यात्म के बीच सामरस्य का मार्ग स्थापित करने में मनोविज्ञान का अध्ययन भी सहायक हो सकता है। इस प्रकार का गहन अध्ययन अध्यात्म एवं विज्ञान के मध्य सेतु का काम कर सकता है।

अध्यात्म और धर्म के बीच संबंधों की उपेक्षा का पहला उदाहरण फ्रांस में मिलता है जब वहा के प्रख्यात गणितज्ञ पियरे साइमन डी लाप्लास जो की सम्राट नेपोलियन के एक वैज्ञानिक सलाहकार थे, उन्होने एक ग्रंथ लिखा जिसका नाम था, 'सेलेशियल मिकैनिक्स'। न्यूटन के नियमों का हवाला देते हुए, इस ग्रन्थ में उन्होने लिखा कि भविष्य की घटनाओं को हम उतनी ही परिशुद्धता से जान सकते हैं, जितनी परिशुद्धता से हम भूतकाल की घटनाओं को जानते हैं। उन्होंने लिखा कि यदि कोई व्यक्ति ब्रह्माण्ड के सभी कणो की स्थिति और वेग को जान सके, तो उसके लिये कुछ भी अनिश्चित नहीं रह जायेगा और उसकी आंखों के सामने भविष्य उसी तरह उपस्थित हो जायेगा जैसा कि भूतकाल। उन्होंने नेपोलियन को इस ग्रन्थ की एक प्रति भेट की, जिसे पढ़ने के बाद सम्राट ने लाप्लास से कहा कि आपने आकाशीय पिण्डों पर इतना विशाल ग्रन्थ लिखा है किन्तु इसमें एक बार भी परमात्मा की चर्चा नहीं की है। लाप्लास का उत्तर था, 'श्रीमन् मुझे इस परिकल्पना की कोई आवश्यकता महसूस नहीं हुई।' विज्ञान और अध्यात्म दोनों के लिए यह एक ऐसी घटना थी, जिसने उनके बीच एक दीवार खड़ी कर दी। जहां एक ओर इससे पूर्व दोनों एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य कर रहे थे, अब एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी हो गए। यद्यपि दोनों ही मानवता के हित में कार्यरत थे, किन्तु एक

दूसरे पर प्रहार करने लगे। परिणाम यह हुआ कि विज्ञान पर अध्यात्म का अंकुश नहीं रहा और वह स्वतंत्र रूप से इस प्रकार कार्य करने लगा कि नैतिक मूल्यों के प्रति उदासीन हो गया। दूसरी ओर विज्ञान से पृथक होने पर अध्यात्म अवैज्ञानिक मार्ग पर चल पड़ा और उसमें रूढ़िवादिता एवं अंधविश्वास का बाहुल्य हो गया। स्वाभाविक है कि समाज पर इसका कुप्रभाव पड़ा। आध्यात्मिक लोग विज्ञान के उपकरणों– जैसे लाउडस्पीकर, मोटर कार, रेलगाड़ी, वायुयान आदि का उपयोग तो करते थे किन्तु विज्ञान को जी भरकर कोसते थे। उनका उद्घोष था कि समाज के पतन के लिए विज्ञान ही उत्तरदायी है। दूसरी ओर वैज्ञानिक जगत के लोगों ने अध्यात्म को पागल पन्थी एवं ढोंगी करार देना प्रारम्भ कर दिया। यह अत्यन्त ही दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति थी। दोनों ही सत्य के अन्वेषी होते हुए भी एक दूसरे पर कीचड़ उछालने लगे और इस द्वन्द्व की चरम परिणति उस समय हुई, जब दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के क्षणों में जापान के दो नगर, हिरोशिमा और नागासाकी पर अमेरिका ने परमाणु बम गिराए। इसकी विभीषिका से सभी परिचित है। आज तक भी पीढ़ी दर पीढ़ी पर इन बमों के विस्फोट से उत्पन्न रेडियों धर्मिता विद्यमान है और मानव, जीव–जन्तु एवं वनस्पतियां उसके दुष्प्रभाव का शिकार बनी हुई है। सम्पूर्ण विश्व में इस घटना के कारण एक बहस छिड़ गई कि अन्तरात्मा के बिना विज्ञान सभी राष्ट्रों का सर्वनाश कर देगा। स्कूल, कालेज और प्रतियोग परीक्षाओं में भी इस विषय पर निबन्ध लिखे जाने लगे। आइन्सटाइन बहुत ही गम्भीर हो गए थे और उन्होंने कहा कि 'धर्म के बिना विज्ञान अन्धा है और विज्ञान के बिना धर्म लगड़ा।'

पदार्थ जगत की क्षमताओं का स्वरूप और उपयोग समझने की विद्या को विज्ञान कहते हैं, और चेतना को प्रगति एवं प्रसन्नता प्रदान करने वाली विद्या को अध्यात्म कहते है। मानवी सत्ता को दोनों क्षेत्रों के साथ तालमेल बिठाना पड़ता है। प्राण चेतना का सुसन्तुलन अध्यात्म तथ्यों पर अवलम्बित है। काया पदार्थ विनिर्मित होने से उसका कामवस्तुओं के सहारे चलता है। जीवन को सुखी समुन्नता रखने में दोनों की समान रूप से आवश्यकता पड़ती है। अस्तु अध्यात्म और विज्ञान का परस्पर सहयोग समन्वय रहने पर व्यक्ति तथा समाज की सुविधा तथा प्रसन्नता को बनाये रहना तथा बढाते चलना संभव हो सकता है। देव संस्कृति के दो प्रमख आधार है। एक गायत्री, दूसरा यज्ञ। गायत्री महाविद्या और शब्द विज्ञान मन्त्र विज्ञान परस्पर गुंथी विधाएँ हैं। मन्त्र विद्या में शब्द शक्ति के आधार पर उदभूत प्राण ऊर्जा का प्रयोग होता है। परब्रह्म को शब्दब्रह्म एवं नादब्रह्म भी कहा गया है। गायत्री का शब्द गुंथन एवं उपासना विधान इसी पर आधारित है। मन्त्र विद्या से व्यक्ति विशेष की क्षमता का उभार दूसरों पर उसका उपयोगी प्रयोग एवं वातावरण पर उसका प्रभाव किस तरह होता है। गायत्री के सम्बन्ध में प्रचलित मान्यतायें परीक्षणकी कसौटी पर कितनी खरी–खोटी सिद्ध होती हैं. इसकी खोजबीन गम्भीरता पूर्वक की जा रही है और पाया जा रहा है कि इन 24 अक्षरों के गुंथन में से सूक्ष्मशरीर की रहस्यमय परतों को उभारने की विशिष्ट क्षमता विद्यमान है।

इसे मानवता का सौभाग्य ही कहेंगे कि विनोभा भावे जैसे सन्त ने विज्ञान एवं अध्यात्म के संगम तथा सहयोग की और मानवता का ध्यान आकृष्ट किया। इसी के साथ बीसवीं सदी में एक ऐसे महामानव का जन्म हुआ जो भारत के स्वतंत्रता संग्राम में जान की बाजी लगाते हुऐ,अन्ततोगत्वा आध्यात्मिक जगत की ओर उन्मुख हुऐ और उन्होंने विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय करते हुऐ, एक नई विद्या को जन्म दिया, जिसका नाम है 'वैज्ञानिक आध्यात्मवाद'। यह महामानव थे, युग ऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी जिन्होंने गायत्री और यज्ञ को जन–जन तक पंहुचाने का कार्य किया। इसके अतिरिक्त शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान जैसी वैज्ञानिक अनुसंधान प्रयोगशाला के निर्माण के साथ–साथ 'युग निर्माण योजना' जैसे महत्त्वाकांक्षी आन्दोलन को जन्म दिया। इसके लिए उन्होंने 'अखण्ड ज्योति' जैसी अध्यात्म परक मासिक पत्रिका को सन् 1936 से प्रारम्भ किया, जो आजतक अनवरत रूप से साधकों का मार्गदर्शन कर रही है। 12 सितम्बर सन् 1946 ई. को उनके जीवन में अति महत्वपूर्ण घटना घटी। ब्रह्ममुहूर्त का समय था, जो कि उनके लिए सदा विशिष्ट रहा था। युग ऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी की चेतना–चिन्तन में निमज्जित थी। पर यह दिन कुछ विशेष था। हिमालय की ऋषि सत्ताओं एवं सद्गुरूदेव स्वामी सर्वेश्वरानन्द की सूक्ष्म अनुभूतियों की श्रृंखला के साथ उनके चिदाकाश में दो शब्द– 'वैज्ञानिक अध्यात्म' महामंत्र की तरह ध्वनित हुए। यह वैज्ञानिक अध्यात्म के महामंत्र का प्रथम साक्षात्कार था। ऐसा साक्षात्कार कराने वाली दिव्य अनुभूतियों के बाद हमेशा ही उनके अंतर्जगत एवं बाह्य जगत में घटनाओं का एक क्रम चल पड़ता था। उन दिनों डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी शान्तिनिकेतन में हिन्दी प्राध्यापक के रूप में कार्यरत थे। उन्हें अखण्ड ज्योति पत्रिका एक परिजन ने भेंट की। अखण्ड ज्योति के उद्देश्य, लेखनशैली की नवीनता तथा प्रस्तुतीकरण ने,

उन्हें बहुत प्रभावित किया। द्विवेदी जी ने पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी को शान्तिनिकेतन में पधारने का आमंत्रण दिया। जब वे शान्तिनिकेतन पहुंचे, तो संयोगवश उसी दिन वहां भारत के प्रख्यात् वैज्ञानिक एवं नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो. सी.वी. रमन का व्याख्यान आयोजित किया गया था। द्विवेदी जी के साथ आचार्यश्री भी प्रो. सी.वी. रमन का व्याख्यान सुनने के लिए व्याख्यान कक्ष में पहुंचे। प्रो. रमन ने अपने उद्बोधन में कहा, "बीसवीं सदी विज्ञान की सदी बन चुकी है। कोई देश इसके चमत्कारों के प्रभाव से अछूता नहीं है। जो आज हैं, वे कल नहीं रहेंगे। परन्तु विज्ञान का प्रयोग मानव हित में हो, यह चुनौती न केवल समूचे विज्ञान के सामने, बल्कि समूची मानवता के सामने है। वैज्ञानिकता, विज्ञान एवं वैज्ञानिकों को हृदयहीन व संवेदनहीन नहीं होना चाहिए। वे हृदयवान हों, संवेदनशील हों, इसके लिए उन्हें अध्यात्म का सहचर्य चाहिए।'' प्रो. सी.वी. रमन का प्रत्येक शब्द मर्मस्पर्शी था। आचार्यश्री ने प्रो. रमन का उनके उत्तम व्याख्यान के लिए आभार व्यक्त किया। प्रो. रमन ने कहा, 'बात आभार को नहीं, बात क्रियान्वयन की है।' इस पर आचार्यश्री बोले, क्रियान्वयन तो अध्यात्म–क्षेत्र में भी होना है। उसे भी विज्ञान का सहचर्य चाहिए। विज्ञान के प्रयोग ही उसे मूढ़ताओं, भ्रांतियों एवं अधपरम्पराओं से मुक्त करेंगे।'' इस बात का वहां उपस्थित सभी ने समवेत समर्थन किया। तब प्रो. रमन ने कहा,"बीसवीं सदी भले ही विज्ञान की सदी हो पर इक्कीसवीं सदी वैज्ञानिक आध्यात्मवाद की सदी होगी।'' 'वैज्ञानिक अध्यात्म' इसी का साक्षात्कार तो तरुण तपोनिष्ठ आचार्यश्री ने अपने समाधि–शिखरों पर किया था। उस दिन इस पर सभी मनीषियों की व्यापक परिचर्चा हुई और वहां से वापस आने पर वैज्ञानिक अध्यात्म के मंत्रदृष्टा आचार्यश्री ने जनवरी, सन् 1947 में वैज्ञानिक अध्यात्म पर एक विशेषांक प्रकाशित किया, जिसके प्रथम पृष्ठ की अंतिम पंक्ति में उन्होंने लिखा था, ''अखण्ड ज्योति के पाठकों! स्मरण रखो, सबसे पहले जिसे पढ़ने और हृदयंगम करने की आवश्यकता है, वह वैज्ञानिक आध्यात्मवाद ही है। यही ऋषियों का विज्ञान है।''

वैज्ञानिक आध्यात्मवाद को समझने के लिए हमें इस तथ्य पर ध्यान देना होगा कि हमारे समक्ष जो विश्व ब्रह्माण्ड है, वह मूलतः दो सत्ताओं से मिलकर बना है– एक जड़ व दूसरा चेतन। जड़ सत्ता अर्थात् पदार्थ का अध्ययन विज्ञान का विषय है जबकि चेतन सत्ता आत्मा–परमात्माश् का अध्ययन अध्यात्म का विषय है। अतः इस ब्रह्माण्ड को पूरे तौर से समझने के लिए हमें इन दोनों ही सत्ताओं को ध्यान में रखना होगा। सामान्यतः किसी भी विषय का अध्ययन न तो केवल भौतिक है और न ही केवल आध्यात्मिक। सत्य की खोज के लिए हमें, विज्ञान एवं अध्यात्म दोनों पर विचार करना होगा और यही वैज्ञानिक आध्यात्मवाद का मूल है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *वैज्ञानिक अध्यात्म – पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य*
2. *अखंड ज्योति – शांतिकुंज हरिद्वार*
3. *अध्यात्म एवं संस्कृति ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान*
4. *कैसे होगा समन्वय विज्ञान और अध्यात्म – पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य*
5. *सच्चा अध्यात्म आखिर क्या है? – गायत्री तपोभूमि मथुरा*
6. *Literature.awgp.org*
7. *Http://www.goodreads.com*
8. *Http://hi.m.wikipedia.org*

नामवर सिंह की आलोचना दृष्टि

रघुवीर कुमार
शोधार्थी,तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय,भागलपुर(बिहार)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

नामवर सिंह हिन्दी के प्रगतिवादी/मार्क्सवादी समालोचक, भाषा–चिंतक एवं आलोचना की मौखिक परंपरा के सबसे बड़े समीक्षक हुए। मार्क्सवाद की कसौटी पर प्रतिबद्ध आलोचना को अंजाम देने वाले समीक्षकों में सर्वाधिक क्षमतावान् सिद्ध हुए। हिन्दी प्रतिबद्ध आलोचना को तत्त्वतः विकसित करने में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। उनकी आलोचना–दृष्टि में मार्क्सवादी–दर्शन की मूल संकल्पना दिखाई देती है तो आलोचना–कर्म में भारतीय साहित्य, साहित्य की प्रवृत्तियाँ, इतिहास, भाषा तथा समाज। वे मौखिक परंपरा के आलोचक थे, परंतु 'कविता के नए प्रतिमान', 'छायावाद', 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ' इत्यादि लिखित आलोचना की अमूल्य निधियाँ हैं।

संकेताक्षर : *नामवरसिंह, चिंतक, आलोचक, आधुनिक साहित्य, प्रवृत्तियां।*

प्रतिबद्ध आलोचना को हिन्दी में शिखर से साक्षात्कार कराने वाले समीक्षकों में नामवर सिंह दूसरे बड़े आलोचक हुए। मार्क्सवादी आलोचना की सैद्धांतिकी को तत्त्वतः विकसित तथा उसी कसौटी पर मूल्यांकन करने वाले समीक्षकों में प्रथम पांक्तेय समीक्षक कहलाए। रामविलास शर्मा शुक्ल की आलोचना–परम्परा के वैज्ञानिक प्रस्तोता सिद्ध हुए, जबकि नामवर सिंह हजारीप्रसाद द्विवेदी की परम्परा को। नामवर सिंह मौखिक परम्परा के प्रथम आलोचक माने गए, परंतु लिखित आलोचक के मानक पर भी गुणात्मक रूप से खरे उतरते हैं। लिखित नामवर से कहीं ज्याद वाचिक नामवर की प्रसिद्धि मिली, परंतु इसका मतलब यह नहीं कि वे प्रतिबद्ध आलोचना को लिखित रुप में विकसित करने में असफल रहे। सफलता की दृष्टि से 'छायावाद', 'आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ', 'कहानी : नई काहनी', 'इतिहास और आलोचना' इत्यादि प्रतिबद्ध आलोचना के मूल धरोहर हैं, जबकि वाचिक नामवर में कहीं–कहीं वैचारिक विचलन की दिखाई देते हैं। समग्रता में देंखे तो नामवर सिंह मार्क्सवादी आलोचना के आधार–स्तंभ सिद्ध होते हैं।

प्रगतिवादी आलोचना–सिद्धांतों की कसौटी पर आलोचना करने का श्रेय नामवर सिंह को ही जाता है। रामविलास भार्मा ने मार्क्सवादी आलोचना–सिद्धांत का हिन्दी संस्करण तैयार कर रचना–परीक्षण की कसौटी निर्मित की थी, जबकि नामवर सिंह ने शुद्ध मार्क्सवादी सिद्धांत के आधार पर आलोचनाएँ कीं। रामविलास शर्मा भारतीय एवं पाश्चात्य आलोचना–सिद्धांत के समन्वित रूप से अपनी आलोचना–दृष्टि विकसित करते हैं, जबकि नामवर सिंह की आलोचना–दृष्टि शुद्ध मार्क्सवाद के मूल सिद्धांतों की कसौटी पर निर्मित हुई है और उसी के अनुरूप समीक्षकीय कार्य भी करते हैं।

हिन्दी में प्रगतिशील/प्रगतिवादी आलोचकों की दो सारणियाँ हैं–पहले वर्ग के अन्तर्गत वैसे आलोचकों की गणना होती हैं, जिन्होंने आलोचना के लिए विशुद्ध मार्क्सवादी सिद्धांतों का अनुपालन किया। दूसरे वर्ग ने अन्तर्गत वैसे आलोचक हुए, जिन्होंने आलोचना के लिए सिद्धांत तो मार्क्सवाद से ग्रहण किया, परंतु प्राच्य आलोचना सिद्धांतों के साथ। पहले वर्ग के अन्तर्गत आलोचकों की विशेषता यह मानी जाती है कि उन्होंने आलोचना के लिए सिद्धांतिक समझौता नहीं किया। दूसरे वर्ग के आलोचकों ने तर्क एवं नजरिये को लेकर सिद्धांत में थोड़ी ढ़ील ले रखी थी। परंतु, इसका आशय

यह नहीं कि इस वर्ग के समीक्षक समझौतावादी थे। ये उदार वृत्ति के आलोचना थे। इसलिए, पाश्चात्य एवं भारतीय आलोचना–शास्त्र के आधार पर जो मान्य दृष्टि तय होती है, वही स्वीकार्य थी। जो हो, पहले वर्ग के सबसे बड़े आलोचक के रूप में नामवर सिंह सर्वज्ञात हैं।

नामवर सिंह ने प्रतिबद्ध आलोचना के विकास में न सिर्फ महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, बल्कि अपनी आलोचना–दृष्टि की प्रासंगिकता को भी सिद्ध किया। भले ही उनकी आलोचना कहीं–कहीं कठोर सिद्धांत के गिरफ्त में दिखाई देती हो, परंतु शेष कार्य आलोचना को नई दिशा देने में सार्थक सिद्ध हुई।

डॉ. शशिभूशण 'शीतांशु' के अनुसार मार्क्सवाद के तीन संस्करण : मार्क्सवाद, नव्य–मार्क्सवाद तथा उत्तर–मार्क्सवाद है। मार्क्सवादी दर्शन का विकास नव्य–मार्क्सवाद तथा उत्तर–मार्क्सवाद है, जिसे क्रमशः गोल्डमान, लूकाच, गाम्शी, अल्यूसर प्रभृति ने विकसित किया था। परंतु ''भारतीय मार्क्सवादी चिन्तन की यह विडम्बनात्मक स्थिति है कि जिस देश में समय–समय पर धर्म की मान्यताओं का संशोधन और परिवर्तन किया गया, जीवन और जगत के विषय में अनेक दार्शनिक प्रतिपत्तियाँ सामने रखी गई, वहाँ आज मार्क्सवादी विश्व–दर्शन को हिन्दी के चिन्तकों नें जड़ बना दिया।''[1]

डॉ. 'शीतांशु' की चिंता यह है कि जिस मार्क्सवादी आलोचना को उत्तर–मार्क्सवादी आलोचना ने वैचारिक रूप से और समृद्ध किया, इस दृष्टि से हिन्दी के किसी मार्क्सवादी आलोचकों ने नहीं किया। उनकी इस चिंता का मुख्यार्थ–समकालीन आलोचकों द्वारा मार्क्सवादी दर्शन/सिद्धांत तथा व्यवहार को विकसित करने से कहीं ज्यादा आलोचकों के आलोचना–कर्म पर कहीं ज्यादा रूचि लेना है। रामविलास शर्मा ने इस ओर काम किया था, परंतु उसे भी उपेक्षा मिली थी।

दूसरी तरफ नामवर सिंह को उत्तर–मार्क्सवादी आलोचना के समीक्षक कहे जाते हैं। कहा जाता है कि मार्क्सवादी–दर्शन के स्वरूप–परिवर्तन में जो काम उत्तर–मार्क्सवादी आलोचक लूकाच, अल्यूसर, ग्राम्शी प्रभृति कर रहे थे, उसी के प्रभावस्वरूप नामवर सिंह हिन्दी में मार्क्सवादी आलोचना के स्वरूप को विकसित कर रहे थे।

बहरहाल, नामवर सिंह मार्क्सवादी आलोचना के बड़े नाम हैं और उनकी आलोचना–दृष्टि भी व्यापक है। भले ही उनका वास्ता विचारों को लेकर विवादों से रहा हो, परंतु मार्क्सवाद आलोचना उनकी आलोचना के बगैर सूनी दिखाई देती है। मार्क्सवाद की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह कला, साहित्य तथा संस्कृति के मूल्य को समाज सापेक्ष जाँचता है। रामविलास भार्मा की तरह नामवर सिंह भी समाज को सामने रखकर ही आलोचना–कर्म में प्रवृत्त होते हैं। रचना–कर्म में उनकी दृष्टि युगबोध तथा इतिहासबोध की प्रत्येक आयम पर टिकी होती है। वे हरेक चीजों को पहले अपने नजरिये से देखते हैं, फिर मार्क्सीस सिद्धांत पर उतारते हैं। चाहे समाज हो राजनीति हो, साहित्य कला हो, आर्थिक व्यवस्था हो, सामाजिक संस्कृति हो, धर्म हो या अन्य; सब पर उनकी दृष्टि टिकी होती है। एक आलोचक के लिए समीक्षा की गहराई में उतरने के लिए जो मूलभूत तत्त्व (हथियार) होने चाहिए, वे सभी–के–सभी नामवर सिंह के पास थीं। जिस युग के वे साहित्यकार हैं या आलोचक हैं, उस युग की छवि उनकी आलोचना में दिखाई देती है। इससे भी आगे निकलकर इतिहास का भी अतिक्रमण करते हैं। अर्थात् नामवर सिंह व्यापक युगबोध तथा इतिहासबोध सम्पन्न साहित्यकार थे।

नामवर सिंह का आलोचना फलक व्यापक है। स्वभावतः आलोचना–दृष्टि भी व्यापक रही होगी। इसलिए अध्ययन की सुविधा के लिए उनकी आलोचना–दृष्टि को बिन्दुबार विवेचित/विश्लेषित किया जाएगा।

आलोचना का मूलधर्म रचना का सम्यक् परीक्षण करणा है। परीक्षण की पहली बशर्त 'दृष्टि' एवं विचार है। 'दृष्टि' का आशय रचना को देखने/परखने के तरीकों से है और 'विचार' का आशय जिससे प्रेरित होकर रचना–कर्म करता हैं। परंतु, एक बात गौरतलब है कि एक ही विचारधारा से प्रेरित आलोचक की दृष्टि भी भिन्न–भिन्न होती है। क्योंकि दृष्टि का संबंध व्यक्ति से है, जबकि विचार का संबंध सिद्धांत से। बगैर दृष्टि के आलोचना संभव नहीं है, जबकि बगैर युगबोध के भी दृष्टि विकसित नहीं हो सकती है। इसलिए, आलोचना के लिए युगबोध आवश्यक है।

प्रत्येक आलोचक अपनी क्षमता के अनुरूप युग विशेष की परिस्थिति को समझने और समझकर उसमें आवश्यकतानुसार बदलाव लाने की कोशिश करता है। वह युग के प्रत्येक आयाम को अपनी दृष्टि से गुजारकर जाँचता–परखता है, तब जाकर उसका साहित्य–रूप निर्मित करता है। आलोचक की युग की परिस्थिति परिवेश का अन्वेषण करता है और उसी के अनुरूप आलोचना–कर्म करता है। अर्थात् वह युग विशेष के सत्य, समाज, कला, साहित्य, राजनीति, अर्थनीति, धर्म, दर्शन इत्यादि प्रवृत्तियाँ को अपने नजरिये से परखता है। इन सभी चीजों से रुबरू होकर उसकी अभिव्यक्ति युगबोध कहलाता है। कुल मिलाकर,

''समाज, राजनीति, धर्म, दर्शन, संस्कृति आदि का स्वरूप जिस युग में जैसा रहता है, उसी रूप में ग्रहण कर अभिव्यक्त करना युग बोध कहलाता है।''[2]

अतः, नामवर सिंह ने किस रूप युग के आयाम को देखने की कोशिश की है, उसी की पड़ताल बिन्दु वार की जाएगी।

साहित्य समाज का चित्तबिंब है और कला उसक मूर्त्त रूप/कला एवं साहित्य का समाज से गहरा संबंध होता है। समाज से अलग साहित्य और कला का मूल्य कुछ भी नहीं। कला अपनी सम्पूर्णता में समाज की रुचि का छव्यांकन करती है, जबकि साहित्य युग की प्रवृत्ति का। अतः साहित्य और कला का संबंध समाज से है। साहित्य और कला समाज की पैदावार है। इन दोनों प्रकार के सामाजिक क्रियाकालापों के बारे में समाज विज्ञान की विकासशील और गतिमान अवधारणाओं को दरकिनारकर समालोचना की किसी भी पद्धति की कल्पना नहीं की जा सकती। इसमें सामाजिक यथार्थ और राजनीतिक सत्य की अभिव्यक्ति होती है–''इस स्थापना को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है, लेकिन साहित्य और कला में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति की प्रक्रिया की पहचान सरल भी नहीं है। साहित्य और कला के प्रतिबिम्बात्मक स्वरूप के साथ–साथ उसके सर्जनात्मक स्वरूप के विश्लेषण में ही आलोचना की सार्थकता प्रकट होती है।''[3]

नामवर सिंह साहित्य और कला को समाज सापेक्ष देखने के पक्षपाती थे। समाज से इतर कला एवं साहित्य का यथार्थमूलक आकलन असंभव है; क्योंकि साहित्य एवं कला में समाज की प्रवृत्ति अन्तर्भूक्त होती है। इसमें एक बात और जो नामवर सिंह ने लिखी है कि कला साहित्य और समाज के बीच की कड़ी साहित्यकार है। देखिए–'मार्क्सवादी समीक्षा और उसकी कम्यूनिष्ट परिणति' के अनुसार समाज और साहित्य के बीच की महत्त्वपूर्ण कड़ी है लेखक का व्यक्तित्व। साहित्य के रूप में समाज की जो छाया प्रकट होती है वह लेखक के व्यक्तित्व के ही माध्यम से आती है। साहित्य के निर्माण में इस बीच की कड़ी–लेखक के व्यक्तित्व का बहुत महत्त्व है और यह महत्त्व इस बात में है कि एक ओर इसका संबंध समाज से है तो दूसरी ओर साहित्य से। साहित्य रचना की प्रक्रिया में समाज, लेखक और साहित्य परस्पर एक दूसरे को इस तरह प्रभावित होता रहता है–समाज से लेखक, लेखक से साहित्य और साहित्य से पुनः समाज।''[4]

नामवर सिंह पूर्व प्रभावित मत का खंडन करते हैं और लेखक के व्यक्तित्व एक सिरे से खारिज करते हैं। उनका मानना है कि लेखक के व्यक्तित्व के साथ 'प्रतिभा' जुड़ी होती है और प्रतिभा का संबंध जन्मजात एवं ईश्वरप्रदत्त माना जाता है। जिसका मार्क्सवाद घोर खंडन करता है या विरोध करता है। इस लिहाज से प्रतिभा जड़ एवं स्थिर वस्तु है। दूसरी ओर वे व्यक्तित्व को प्रगतिशील तत्त्व मानते हुए उसके स्वरूप को द्वंद्ववाद से जोड़ते हैं। देखिए–''मनुष्य की उपार्जित शक्ति का ऐसा घोर अपमान और फिर भी व्यक्तित्व की तरफदारी करने का स्वाँग। जो मनुष्य की अपनी शक्ति में विश्वास नहीं करता, वह चाहे दैवी शक्ति का ही विश्वासी क्यों न हो, वस्तुतः मानव–विरोधी है।''[5]

इस तथ्य से एक बात उभरकर सामने आती है कि साहित्य में समाज की जो छवि दिखाई देती है, वह हद तक साहित्यकार की दृष्टि का ही परिणाम होता है। अब देख यह होता है कि साहित्यकार के नजरिये में समाज ने किन चिजों को अभिव्यक्ति मिली है और किन–चीजों की नहीं, यह उनकी दृष्टि के आधार तत्त्व पर निर्धारित होता है। अर्थात् चीजों को देखते किस रूप में हैं और उसका नजरिया क्या है ?

मार्क्सवादी समीक्षा प्रणाली की पहली शर्त युगबोध हैं और युग के पहला आयाम समाज है, जिसका बोध आवश्यक माना जाता है। नामवर सिंह की यह धारणा रही है कि साहित्य के मूल्यांकन के लिए सामाजिक परिवेश का ज्ञान आवश्यक है। बगैर इसके साहित्य की नब्ज टटोली ही नहीं जा सकती। उनका मानना था कि युग के अनुसार साहित्य को परखने का प्रतिमान विकसित होना चाहिए। पुराने प्रतिमान के आधार पर नए साहित्य का मूल्यांकन नए–नए मूलों को उदघाटित नहीं कर पाता है। आधुनिक कविता को पुराने प्रतिमानों से मूल्यांकित करने में उसकी छवि बिगड़ जाती है। इसलिए नई कविता के मूल्यांकन के लिए नए–प्रतिमान गढ़ने चाहिए, जिसका की प्रगतिवादी समालोचकों में घोर अभाव है। वे लिखते हैं–''नई कविता की आलोचना में प्रायः पुराने प्रतिमान क्यों इस्तेमाल किए गए, यदि इसकी जाँच की जाए तो साफ मालूम होगा कि जिन्हें हम 'पुराने प्रतिमान कहते हैं, वे वस्तुतः पुराने 'संस्कार' हैं। इसलिए नए प्रतिमान की चर्चा करने से पहले इन संस्कारों का विश्लेषण करना बहुत जरूरी है। जब तक इन संस्कारों को न तोड़ा जाएगा, नए प्रतिमानों के प्रस्तुत होने पर भी वास्तविक मूल्यांकन में वे परोक्ष रूप से दखल देते रहेंगे।''[6] अतः पुराने प्रतिमान नए मूल्यांकन प्रस्तुत करने में असफल सिद्ध होते हैं।

कविता के संबंध में नामवर सिंह की जो

धारणा थी, अर्थात् कविता के संबंध में नामवर सिंह की जो दृष्टि थी, वह छायावादी काव्य–विवेचन के संदर्भ में उभरती है। चूँकि, कविता सामाजिक सत्य की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति है, इसलिए कविता की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं–''कविता राजनीतिक और सामाजिक घटनाओं का अविकल अनुवादक नहीं है। विविध राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक घटनाएँ मानव–व्यक्तित्व के मन पर जो सम्मिलित प्रभाव डालती है, कविता उसकी भावात्मक प्रतिक्रिया है। काव्य में अभिव्यक्ति अनुभूति इतनी संश्लिष्ट होती है कि उसमें से राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक आदि तत्त्वों का विश्लेषण सरलता से नहीं किया जा सकता साहित्य अंततः साहित्य ही है–वह परिस्थितियों के सहित अथवा सम्मिलित प्रभाव की अभिव्यंजना है।''[5]

आलोचना के दायित्वपूर्ण कार्य के निर्वहण के लिए समाज के साथ–साथ साहित्यिक–संस्कृति की समझ की आवश्यकता है; क्योंकि ''साहित्यिक संस्कृति साहित्य में सक्रिय शक्तियों और दृष्टियों के बीच संवाद का भील निरूपण करती है, सीमाएँ निर्धारित करती हैं।''[7] आलोचना के लिए संस्कृति की व्यापक समझ के साथ उपयोग की आवश्यकता इसलिए होती है कि साहित्य एवं कला संबंधी अराजकता को नियंत्रित कर सके। अतः, ''संस्कृति का यह सामाजिक उपयोग स्वभावतः उन ऐतिहासिक परिस्थितियों की पड़ताल करने को प्रेरित करता है, जिसमें 'संस्कृति' की यह अवधारणा पैदा हुई। हाट–बाजार का वह धुआँ, झगड़ा–फसाद, अभिजात वर्ग की सत्ता को चुनौती देने वाली तथाकथित अराजकता आदि घटनाएँ सहज ही उस औद्योगिक क्रांति की ओर संकेत करती है, जिससे निपटने के लिए संतुलन और सामंजस्य के नारे के साथ 'संस्कृति' का विकास किया गया।''[8]

नामवर सिंह साहित्य, कला के साथ–साथ राजनीति का भी मूल्यांकन करते हैं और देखते हैं कि तत्कालीन राजनीति साहित्य सृजन को किस रूप में प्रभावी करता है। एक साहित्यकार के लिए, विशेषकर आलोचना–कर्म के लिए राजनीतिक समझ की आवश्यकताओं पर विचार करते हैं। उनकी दृष्टि में ''किसी साहित्यिक कृति के मूल्यांकन में राजनीति विचार हमेशा निर्णायक नहीं होता। लेखक की राजनीति, उसकी सम्पूर्ण जीवन–दृष्टि या विश्व–दृष्टि नहीं है, वह उस विश्व–दृष्टि का एक अंश है, जिससे लेखक का सौन्दर्यबोध निर्धारित होता है और जिसकी अभिव्यक्ति स्वयं साहित्यिक कृति है।''[9] अर्थात् वे राजनीति को साहित्य के केन्द्र में नहीं, बल्कि एक अंग के रूप में स्वीकार है।

साहित्य यदि जन अभिरूचियाँ का बिम्बन है तो उसमें तत्कालीन राजनीति की प्रतिछवि भी मुखर होती है। साहित्य के साथ–साथ कला के क्षेत्र में राजनीति अभिरूचियों का शैल्पिक रूप दिखाई देता है। बकौल मुक्तिबोध–''एक कला–सिद्धांत के पीछे एक जीवन–दृष्टि होती है और उस जीवन–दृष्टि के पीछे एक जीवन–दर्शन होता है और उस जीवन–दर्शन के पीछे आज के जमाने में एक राजनीतिक–दृष्टि भी लगी होती है।''[10] अतः राजनीति कला सिद्धांत के पीछे जो जीवन–दर्शन एवं समाज दर्शन की भूमिक होती है, उतनी भी महत्त्वपूर्ण भूमिक राजनीति की भी होती है। मार्क्सवाद साहित्य, समाज और राजनीति पर व्यापक एवं गंभीर रूप से विवेचन प्रस्तुत करता है। इस साहित्यकार का 'स्वघर्म' यह है कि वह समाज और राजनीति की धारा के परीपाक को समझकर रचनाकर्म में प्रवृत्त हो, परंतु राजनीति को साहित्य से जोड़कर, बल्कि साहित्य का राजनीतिक रूपांतरण कर बैठना रचनाधर्मिता का नष्ट करना है। हालाँकि, ''एक निष्ठावन् लेखक से उसकी राजनीति की साहित्यिक अर्न्तवस्तु की माँग तो की ही जा सकती है। क्योंकि एक लेखक वे नाते उसका अपना कर्म क्षेत्र तो साहित्य ही है।''[11] (और) साहित्य को राजनीति चेतना सम्पन्न बनाने का अर्थ साहित्य–सृजन और चिंतन में राजनीतिक संघर्ष की रणनीति और कार्यनीति का अमल नहीं है।''[12]

नामवर सिंह की यह विशेषता ही मानी जा सकती है कि व्यापक इतिहासबोध के कारण कला संबंधी वैश्विक दृष्टि एवं राजनीति में परंपरा तालमेल बैठाकर चलते हैं। जैसा कि हिन्दी साहित्य में मुक्तिबोध के काव्य–सृजन में इस विशिष्टता को सरलता से खोजा जा सकता है। इस कार्य के निमित्त में वे प्रतिशील आंदोलन की ऐतिहासिक भूमिका को स्वीकार करते हुए जन–लेखकों के निर्माण की दीर्घ प्रक्रिया को आवश्यक मानते है। इस संदर्भ में वे लिखते हैं–''जागरुक कवि अपने कवि–कर्म के दौरान सार्थकता के साथ राजनीति संदर्भ को परिभाषित करते चलते हैं और इस प्रकार सीधे–सीधे राजनीतिक विषयों पर कविता न लिखते हुए भी अपनी प्रत्येक रचना को एक निश्चित राजनीतिक अर्थ दे देते हैं। महत्त्वपूर्ण है राजनीति संदर्भ का गहरा और सही बोध। जरूरी नहीं कि कवि इस राजनीतिक के संदर्भ के बारे में लिखे ही, क्योंकि संदर्भ तो कविता में व्यंग्य होता हैं, लेकिन इस संदर्भ को व्यंजित करने के लिए उसका वास्तविक बोध जरूरी हे। इस संदर्भ–बोध के बिना अराजनीतिक तो क्या, राजनीतिक कविता भी अर्थशून्य है।''[13]

नामवर सिंह का भाषा–विषयक अध्ययन एक आलोचक की दृष्टि से सम्पन्न हुआ है न कि भाषाविद् के रूप में। इस अध्ययन के क्रम भाषा–विषयक कई स्थापनाएँ हैं, जिसके मूल में उनकी मार्क्सवादी आलोचना पद्धति के दर्शन होते हैं। बकौल भरत यायावर : ''अपभ्रंश साहित्य पर विचार करते हुए बीच–बीच में नामवर जी ने टिप्पणियाँ दी हैं, वे विचारपूर्ण और सुचिन्तित हैं, वे सूक्ष्मदर्शीता और सहृदयता के साथ मार्क्सवादी आलोचना–पद्धति का रूप प्रस्तुत करती हैं। हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग में अपभ्रंश साहित्य नामक अध्याय में अपभ्रंश साहित्य के कतिपय महत्त्वपूर्ण रचनाओं का परिचय देते हुए उनके सौन्दर्य–पक्षों का उद्घाटन किया गया है।''[14]

समासतः, नामवर सिंह हिन्दी के बड़े आलोचक इसलिए नहीं हुए कि इन्होंने हिन्दी आलोचना को वैचारिक रूप से समृद्धि किया, बल्कि उन्होंने आलोचकों तथा साहित्यकारों के समक्ष एक नई दृष्टि का परिचय देते हुए रचना–परीक्षण की विकसित पद्धति से अवगत कराया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *शीतांशु, डॉ. शशि भूषण(2015). पाश्चात्य प्रगामी आलोचना. दिल्ली, भारत पुस्तक भंडार. पृ.सं.–39*
2. *रामचंद्र त्रिपाठी, पृ.सं.–30*
3. *सिंह, नामवर(2014). इतिहास और आलोचना. नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन. पृ.सं.–38*
4. *चन्द्र, डॉ. कृष्णकांत(2006). नामवर सिंह और हिन्दी मीनाक्षी. अनुपम प्रकाशन. पृ.सं.–45*
5. *सिंह, नामवर(2014). इतिहास और आलोचना. नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन. पृ.सं. : 37–38*
6. *सिंह, नामवर(2010). कविता के नए प्रतिमान. नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन. पृ.सं.–28*
7. *सिंह, नामवर (2006) छायावाद. नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन. पृ.सं.–71*
8. *सिंह, नामवर (2011). वाद विवाद संवाद. नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन. पृ.सं.–41*
9. *वही–42*
10. *वही–81*
11. *वही–82*
12. *वही–82*
13. *वही–82–83*
14. *यायावर, भरत (2013). नामवर सिंह का आलोचना कर्म. नई दिल्ली, किताबघर प्रकाशन. पृ.सं.–137*

Dante Gabriel Rossetti: Poet and Painter

Monika
Assistant professor, Govt. P. G. College, Dholpur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Dante Gabriel Rossetti is known for his achievements as a poet and a painter as well. He carried on the artistic and poetic qualities of the group "the Pre-Raphaelite".The group was a response to the "mannerist movement" Rossetti is known as an illustrator for his "doublework ". Rossetti wrote more than 300 poems and dozens of the poems he illustrated. " The Blessed Demozil ", "Baeta Beatrix", " Proserpine "and " Parted love "are some the best examples of his work. Some critics found his work inappropriate to the society because of its evocation of erotic emotions. Robert Buchanan attacked him by calling a " fleshly school of poetry ".Though Rossetti replied and stated for that a"stealthy school of criticism".The group was also considered as 'YBAs of their generation' by an art historian Jason Rosenfield.

Key words : *Mannerist movement-movement, Doublework, YBAs, Fleshly school of Poetry, Stealthy school of Criticsm, Italian Risorginento.*

Dante Gabriel Rossetti (1828-1882) one of the founding members of the Pre -Raphaelite brotherhood. Rossetti was a prolific poet as well as painter, illustrator and translator. The Pre-Raphaelite group was founded in response to the 'Mannerist Movement' in 1848. Rossetti founded the group with two other members artist William Holman Hunt and John Everett Millias. Subsequently the group was joined by the critic William Michael Rossetti, the painter James Collins, the painter and critic Fredric George Stephens and the sculpture Thomas Woolner by invitation. The group was treating religious, moral and medieval subjects in a non academic manner. All seven members in the group aimed at "truth to the nature" Which according to them could be achieved by minutes of detail and paintings from nature outdoor. The aim of the group by painting, poetry and social idealism. He he also interpreted the term Pre-Raphaelite as synonymous with a romanticized pastpast1.

Founders of the group were the students of the Royal Academy of Arts. In particular the group of artists objected the influence of sir Joshua Reynolds, founder of the English Royal Academy of the Art. The group members called him " Sir Sloshua ". According to William Michael Rossetti, "sloshy" meat " anything lax or scrapped in the process of painting and hence... anything or person of commonplace or conventional kind"2.

They were inspired by Italian art of the fourteenth and fifteenth centuries and their adoption of the name Pre-Raphaelite expressed their admiration for what observed in Italian paintings before high Renaissance and particularly before the time of Raphael.

The group was attacked by the Exoriating review entitled "The Fleshly School of Poetry" by Buchanan3. Oscar Wilde also put his views about Pre-Raphaelite with words-" Three things the English public never forgets:youth, power and enthusiasm ". Pre-raphaelite found itself paradoxically poised between nostalgia for the past and excitement about the future4.

D. G. Rossetti: A Painter

Rossetti after his general education hesitated between poetry and painting as a vacation. After joining a drawing school in his fourteen he became a student of art. Meanwhile, he was reading romantic and poetic literature, William Shakespeare, Lord Byron, Sir Walter Scott and gothic tales. American writer Edger Allen Poe had a great influence on him. By the time of his 20s he had translated a number of Italian poets and had composed some of original verses.

Rossetti's first two paintings-'The Girlhood of Marry (1849) and 'Ecce Ancilla Domini (The Annunciation;1850) we're simple in style and elaborated in symbolism. Some other well known paintings are -Proserpine(1874), thr roman goddess who lives in underworld during winter. He wrote sonnet with same titlein Italian. The same sonnet in English is inscribed on the frame5.Another prominent painting was "Baeta Beatrix", the painting which was completed in several versions. In English the painting named 'Blessed Baetrice'. 'The Blessed Damozel' is considered his all time prominent work. The painting was made after ten years of the poem. An admirer of Rossetti and painter L. S. Lowry founded " Rossetti Society " in 1966. He was an enthusiastic admirer and collector of Rossetti's work. He was fascinated with Rossetti's vision of female beauty. He stated that "I don't like his women at all, but they fascinate me, like a snake. " An art historian Jason Rosenfield described Pre-Raphaelite as" YBA's of their generation ".

Scottish poet and artist William Bell Scott saw Rossetti's works in Hunt's studio and remarked on young Rossetti's techniques. In his opinion "He was painting in oils with water colors on canvas which he had primed with white till the surface was a smooth as cardboard, and every tint remained transparent. I saw at once that he was not an orthodox boy, but acting purely from the aesthetic motive6.

D. G. Rossetti: A Poet

As a prolific poet Dante Gabriel Rossetti wrote in Italian and English as well.He wrote more than 320 poems during his 53 years of life. Almost two dozens of his poems complemented by some sort of visual elements as a drawing and painting. This art of illustrating poems through painting called Rossetti's 'Doublework'.

The details in Rossetti's poetry is subordinated to intensity of emotion and is employed to evoke a mood. Rossetti in his poetry had the influence of romantic and Victorian poets. The effect of Sir Thomas Malory's "Morte D' Arthur" and Alford Lord Tennyson's "Idylls of the King"is found in his paintings to evoke an imaginary Arthurian epoch. His exploration of new themes and his break with academic convention established him as a great literary figure. His eminent literary poetic work includes-'House of Life', and 'poems' collections of poetry and his one of the best poem of Rossetti is 'The Blessed Demozel'. In his poem " My Sister's Sleep "the very silence of the sick room is heard." The Wood Spurg"and the lyric "I have been here before"shows his mastery of similar effects.Rossetti was the natural master of the sonnet. His finest achievement " The House of Life " is a sonnet sequence, unique in the intensity of its evocation of the mysteries of physical and spiritual. With an effective way of expression his sonnet is full of magnificent lines with simplicity of diction:

"Oh! clasp we are to our hearts,
for deathless dower,
This close company owed inarticulate hour
When twofold silence was the song of love."
" Silent Moon " The House of Life, sonnet six7.

Rossetti's poetic art had other less subjective aspects. "The Last Confession", a tragic episode set against a background of the Italian Risorginento, is a powerful dramatic monologue that can beat comparison with those of Robert Browning. With these feelings of medieval subjects Rossetti also caught the spirit of the ballad. In 1847-1848 Rossetti began several important early poems such as-" My Sister's Sleep ", " The Blessed Demozil", "The Bride's Prelude", " On Mary' Portraits", "The Last Confession" and several sonnets in which he eventually became expert. Rossetti shaped the literary taste of the whole group. The literary journal of the the group "Germ"was founded by him and published a number of poems in it.

In 1871, contemporary review with an article by Robert Buchanan attacked the Pre-Raphaelite school of poetry. He wrote "Rossetti as a leader of a school of poets of lust. He is fleshly all over from the roots of his hair to the top of his toes. "Rossetti got depressed and replied in Athenaeum, and criticized them as a " Stealthy school of criticism". Eventually Buchanan expanded his views for publication under his own name in the spring of 1872 as "The Fleshly School of Poetry and Other Phenomena of the Day. " In the article Buchanan Castigated the poetry of Rossetti and colleagues.

Rossetti: Impression of poetry on his art

Rossetti in his poetry had the influence of romantic and Victorian poets. The effect of Sir Thomas Malory's "Morte D' Arthur" and Alford Lord Tennyson's "Idylls of the King"is found in his paintings to evoke an imaginary Arthurian epoch. This is not limited to his poetry only but the paintings that did or illustrated. Rossetti's 'Double work' is the result of his poetic and artistic genius.

Rossetti as a member of Pre-Raphaelite group followed the objective 'Truth to the Nature'. His paintings are full of natural scenes and the same detailed depiction of a painting he followed in his poems. 'The Blessed Demozel' is one of the finest example of his " doublework". The first four stanzas if the poem are illustrated in the painting. The minute detailing of the nature is also Similar as the poem. Three are some differences between the poem and the painting as poem says-"the stars in her hair, (yellow ripe corn) we're seven" While the painting shows only six stars in her hair. This was a response to Edger Allen Poe's "The Raven". Rossetti explained that " I saw that Poe had done the utmost it was possible to do with the grief of the lovers on earth and so I determined to reverse the conditions, and give utterance to the yearning of the loved one in heaven8.

Some other works, he illustrated includes-" Proserpine ",also an Italian sonnet. An English sonnet with the same title is inscribed on the frame." Parted love ", " The Portrait "," Baeta Beatrix" etc. are the other examples of the doublework of D. G. Rossetti.

Later nineteenth-century Victorian poetry and art can't be untouched by the influence of Rossetti of the Pre-Raphaelite brotherhood. Rossetti writings can perhaps best be viewed as an unusually acute expression of uncertainity of Victorian society and loss of faith. No poet of his period conveyed more profoundly, Victorian anxiety, social anxiety and fear of time.

References

1. *Https://Www.Britannica.com/biography/Dante Gabriel Rossetti.*
2. *Hilton,Timothy, The Pre-Raphaelite (1960), p. 46,Oxford University Press.*
3. *Https://www.bl.uk/romantics and Victorian/article/The Pre-Raphaelite s.*
4. *Wilde, Oscar. 'The English Renaissance of art:Essays and Lectures Oscar Wilde (London, Methuen 1908) p. 120.*
5. *Riggs,Terry, Proserpine 1874Tate collection Retrieved 14 feb 2012.*
6. *Marsh, Jan, The Pre-Raphaelite:Their Lives in letters and Diaries, 1996l.p.17.Collins and Brown.*
7. *Https://www.Britannica.com/biography/Dante-Gabriel Rossetti.*
8. *https://wiki.uio.edu/display/vicwik/DGRossetti %27+poems and paintings.*

Effect of Sez on India's Export

Madhulika Soni
Research scholar, Jai Narain Vyas University, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Abstract
The three important objective of the SEZ Act, 2005, are generate employment opportunities, encourage investment (both private and foreign) and increase India's share in global export. The SEZ scheme had its origin in Export Processing Zones (EPZ) scheme which was introduced in 1965. The progress of EPZ were satisfactory. So the government of India launched the new scheme of Special Economic Zone (SEZ) in April, 2000. The main difference between SEZ and EPZ is that SEZ is an integrated township with fully developed infrastructure of international standard but EPZ is just an industrial enclave.The prevailing development strategy places emphasis upon the 'outward orientation' of countries, with particular emphasis on exports. Export promotion is now seen as an important policy for economic growth in developing countries including Indian economy. Various measures are being adopted to promote export competitiveness by governments in these countries. In this scenario, export processing zones (EPZs) have become rather popular trade policy instruments due to their catalytic role in imparting outward orientation to the economies.

Keywords : *Sq2, India, Export, Development, Employment.*

The export performance of the EPZs established during the period 1965 -2005, which is divided into four phases. There has been a little growth in exports during the first phase (1965-1980) and it accelerated towards the end of the period when average annual exports raised to Rs.187 million from just Rs. 4 million during the first half of 1970s. In phase II we could not notice a remarkable growth of exports. Although the Phase III (1990-2000) witnessed a big changes in the government policies towards exports due to economic liberalization but the growth in exports remained almost static during this period. In the Phase IV it is registered a quantum jump in average annual exports of Rs.120278 million (2000-05). The overall growth rate of exports during the period 1966-2005 is estimated at 45 percent. The exports from SEZs aswell as from India increased rapidly during the period 2000 to 2010.However, exports from SEZs increased at higher rate than the totalexports from India. We have explain the share of central government SEZs exports to total export. State-wise exports from SEZs of India and sector wise export from Indian SEZs has also been discussed in this paper.

The three important objective of the SEZ Act, 2005, are generate employment opportunities, encourage investment (both private and foreign) and increase India's share in global export. The SEZ scheme had its origin in Export Processing Zones (EPZ) scheme which was introduced in 1965. The progress of EPZ were satisfactory. So the government of India launched the new scheme of Special Economic Zone (SEZ) in April, 2000. The main difference between SEZ and EPZ is that SEZ is an integrated township with fully developed infrastructure of international standard but EPZ is just an industrial enclave.

The prevailing development strategy places emphasis upon the 'outward orientation' of countries, with particular emphasis on exports. Export promotion is now seen as an important policy for economic growth in developing countries including Indian economy. Various measures are being adopted to promote export competitiveness by governments in these countries. In this scenario, export processing zones (EPZs) have become rather popular trade policy instruments due to their catalytic role in imparting outward orientation to the economies.

Exports from SEZs:

The basic objective of setting up EPZs in India is to promote exports and earn foreign exchange. Though the objectives of EPZs were not clearly spelt out in India until the late 1980s, in actual practice the predominant condition in selecting EPZ units had been the expected value addition component of exports. This indicator was also used to assess the performance of the units. In 1989, a report of the 'Comptroller and Auditor General of India' clarified that EPZs were meant for earning foreign exchange, develop export oriented industries, stimulate investment and generate employment opportunities beside creating an internationally competitive environment for export production at low cost. Subsequent policy documents have however, reiterated that EPZs are meant to provide an internationally competitive environment for export production at low cost. The 'Draft SEZ Bill 2004' also considers 'promotion of foreign trade in goods and services' the most important objective of SEZs.

Economic Rationale for a better export performance of the zones

EPZs are special enclaves, separated from the Domestic Tariff Area (DTA) by fiscal barriers and are intended to provide an internationally competitive duty free environment for export production at low cost. EPZs are benefited usually from the following:

- Modern and efficient infrastructure,
- General fiscal and non-fiscal concessions to firms,
- Better governance due to single window facilities to ensure corruption and red tape free business environment.

These cost reducing factors are likely to impinge on the export performance of zone units.

Exporting entails costs and risks above those incurred in supplying the domestic market. For example, exporting involves additional transport, distribution and marketing costs and additional financial and legal risks. While some of these additional costs vary with the volume exported (e.g. production and transport costs), others are 'fixed' costs. Some fixed costs can be recovered if the firm does not succeed internationally (e.g. by selling fixed assets). However, others are 'sunk costs' in the sense that, once incurred, they cannot be recovered if exporting turns out to be unsuccessful (e.g. the time and money spent on international market research and advertising).

The theoretical literature argues that many of these costs are likely to be significant. To export successfully, therefore, firms need to possess a competitive advantage to overcome the advantages typically enjoyed by rival firms located in the country into which they export (e.g. greater familiarity with local laws and customs and lower transport costs, greater familiarity with local tastes). The source of competitive advantage is primarily the result of firm's own efforts and vision. But the source of this advantage can arise outside the firm also. These could be a result of the overall institutional and policy environment that constitutes 'investment climate'. The term 'investment climate' includes factors such as better infrastructure facilities, better geo-strategic location, hassle free production operations and government policy incentives. These factors help in reducing the costs of producing and exporting and enhance competitive advantages of firms. EPZs that make up for infrastructural deficiencies and procedural complexities offer a more conducive investment climate and are therefore expected to be instruments for boosting export performance in general and developing countries in particular. Trade related infrastructure and institutional framework are generally deficient in these countries. Besides, too many windows in the administrative set up, barriers raised by monetary, trade, fiscal, taxation, tariff and labour policies further increase production and transaction costs of exports. Since country-wide development of infrastructure is expensive and implementation of structural reforms require time due to socio-economic and political realities, export processing zones (EPZs) are considered an strategic tool for the promotion of exports in these countries.

The most significant specific export promotion effort was made in 2000 when Government of India introduced a new chapter in EXIM policy i.e. SEZ Policy 2000, which was an attempt to deal with various procedural complexities, barriers raised by various taxation, labour and monetary policies. The provisions of Indian export policy, which facilitated growth of SEZ and export promotion of Indian goods, are as follows:

- Duty-free import of spare, raw materials, capital goods, and consumables are offered as per the requirements of the approved business activity.
- Exemption of duties on Indian capital goods and inputs are offered as per the requirements of the approved business activity.
- Taxes are either exempted or waived and even reimbursed in case they are paid in advanced to the concerned authority.
- Preferential treatment of these units to the Indian market for easy dissemination of their products and/or services.
- Tax waiver of dividends and profits for repatriates, without any application of repartition tax.
- Easy and automatic acceptance system for use of existing trademarks, brand name and technological know-how.
- Facilitated with out-sourcing of sub-contract capacities for export production against orders secured by other SME units.
- Total exemption of duties/taxes on scrap or waste or remnants in case the said scrap or waste remnants are destroyed as per the approval of the customs authorities of India.
- Facilitated with out-sourcing of sub-contract of production or part of production process to Indian or any foreign units.
- All EOU/EHTP/STP units may sell their finished products or services (excluding pepper and pepper products and marble) units manufacturing electronics hardware and software, the Net Foreign Exchange (NFE) and Direct Tariff Area (DTA) sale entitlement shall be judge separately for its hardware and software products.
- Sale to direct tariff agreement is subject to mandatory requirement of registration for pharmaceutical products and inclusive of bulk drugs.
- Facilities with out-sourcing of sub-contract capacities for export production against orders secured by other units.

Export Performace of Epz Up to Four Phases of Development of Sez

The export performance of the EPZs established during the period 1965 -2005, which is divided into four phases. Phase wise export performance is analyzed in the following Table 1. The following table shows that there has been a little growth in exports during the first phase (1965-1980) and it accelerated towards the end of the period when average annual exports raised to Rs.187 million from just Rs. 4 million during the first half of 1970s. In phase II we could not notice a remarkable growth of exports. Although the Phase III (1990-2000) witnessed a big change in the government policies towards exports due to economic liberalization the growth in exports remained almost static during this period.

In the Phase IV it is registered a quantum jump in average annual exports of Rs.120278 million (2000-05). The overall growth rate of exports during the period 1966-2005 is estimated at 45 percent. Thus it can be conclude that export from the old EPZs is increasing since Phase I. But as compare to other countries growth the following figures clearly revealed that the average annual export of EPZs from 1960 onwards to 2005 is increasing meaningfully.

Table 1:Export Performance of phase wise EPZs in India (Rs. in Millions)

Phase	Year	Average Total Export per year from EPZ
I (1965-80)	1966-70	4
	1971-75	18
	1976-80	187
	Average	69
II (1980-90)	1980-85	2318
	1986-90	5830
	Average	4074
III (1990-2000)	1991-95	20849
	1996-00	59185
	Average	40018
IV (2000-05)	2001-03	93252
	2003-04	138544
	2004-05	183090
	Average	120278

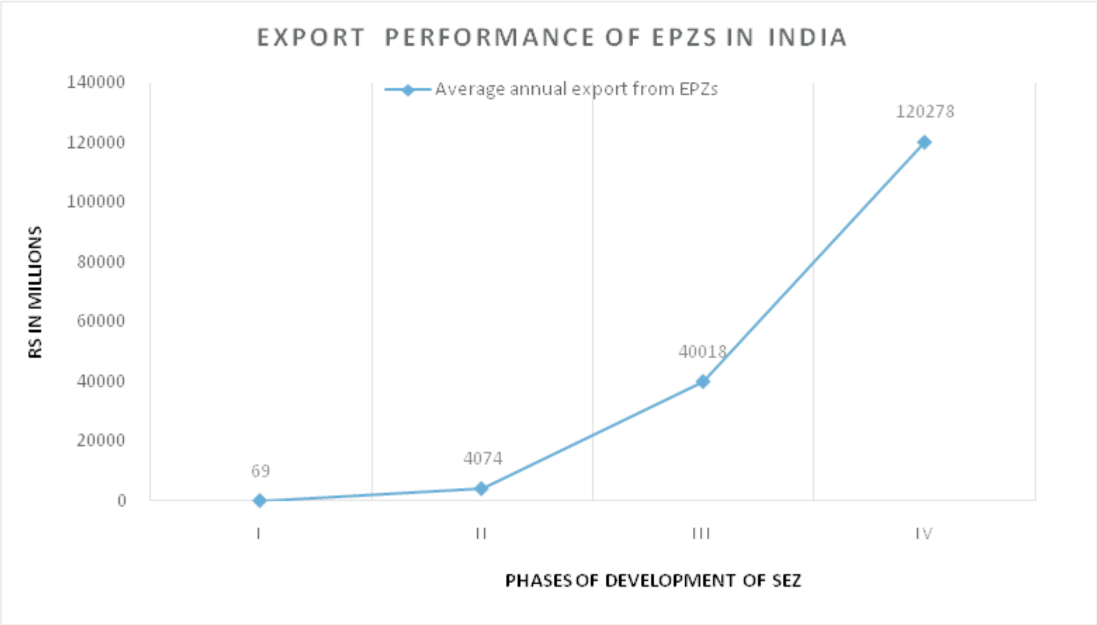

The main objective of the SEZs is to increase export. The export performance of SEZs is examined. The indicators used for this purpose includes Comparison of India's Export, Year wise SEZs exports.It is seen from the Table 2 that the exports from SEZs as well as from India increased rapidly during the period 2000-01 to 2009-10. However, exports from SEZs increased at higher rate than the total exports from India. The above table also reveals that the exports from India increased from Rs. 203571 crores in 2000-01 to Rs.845533 crores in 2009-10. The export from SEZs, on the other hand, increased from Rs. 8552 crores to Rs. 220711 crores in 2009-10. Exports from the SEZs have increased from Rs.220711 Crore in 2009- 10 to Rs. 315868 crore in 2010-2011, registering a growth of 43.11% in rupee terms. The exports from SEZ reached to 523637 crore in year 2016-17. The following table shows that the SEZs exports as well as Indian exports from 2000-01 to 2016-17.

TABLE -2: Share of SEZs Export in Indian's Total Exports

Year	India's Exports (Rs. Crores)	Annual Growth Rate (%)	Export From SEZs (Rs. Crores)	Annual Growth Rate (%)	SEZ Export contribution to total Export (in %)
2000-01	203571	-	8552	-	4.2
2001-02	209018	2.68	9190	7.46	4.4
2002-03	255137	22.06	10053	9.39	3.9
2003-04	293367	14.98	13854	37.80	4.7
2004-05	375340	27.94	18309	32.16	4.9
2005-06	456418	21.68	22840	24.75	5.0
2006-07	571779	25.27	34615	51.55	6.1
2007-08	655864	14.71	66338	91.64	10.1
2008-09	840755	28.19	99689	50.27	11.8
2009-10	845533	0.6	220711	121.40	26.1
2010-11	1142922	35.2	315868	43.11	27.6
2011-12	1468969	28.5	364478	15.39	24.8
2012-13	1634318	11.3	476159	31.0	29.1
2013-14	1905011	16.6	494077	4.0	25.9
2014-15	1896445	-0.45	463770	-6.13	24.5
2015-16	1716378	-9.49	467337	0.77	27.2
2016-17	1849429	7.75	523637	12.09	28.3

Source : DGCIS, Kolkata, Department of Commerce (SEZ Division)

Table 2 shows the exports from India. The highest growth rate of total export is 35.2 % in 2010-2011 followed by 28.5 % in 2011-12and 28.19% in 2008-09. The lowest growth rate is 0.6% in 2009-10 followed by 2.68 % in 2001-2002 and 7.07% in 2017-18. The negative growth rate is 2014-2016 years. The highest exports in SEZ Units are 121.40% in 2009-10 followed by 91.64% in 2007-08 and 51.55% in 2006-07. The exports from SEZs as well as from India increased rapidly during the period 2000 to 2010. Than after the rate of growth of exports from SEZs has been reduced. The reasons for decline in SEZs exports seems to be reduction in the tax concessions.

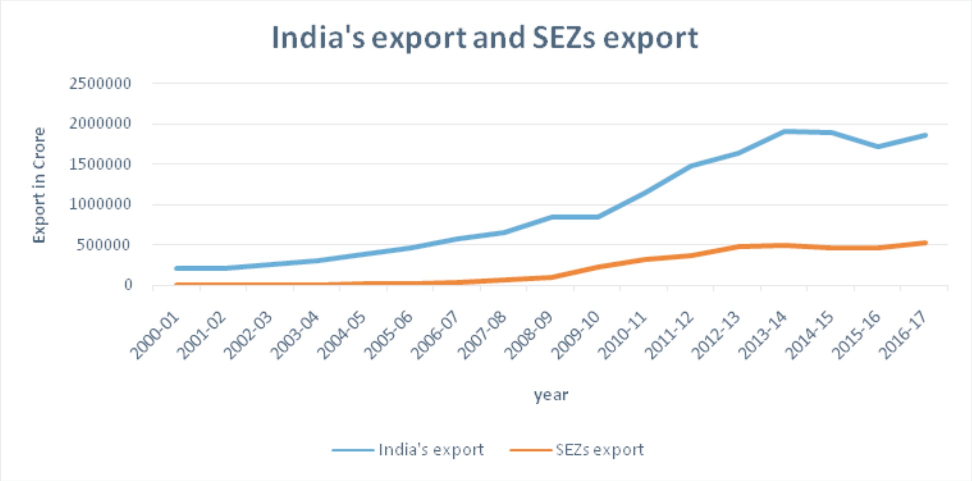

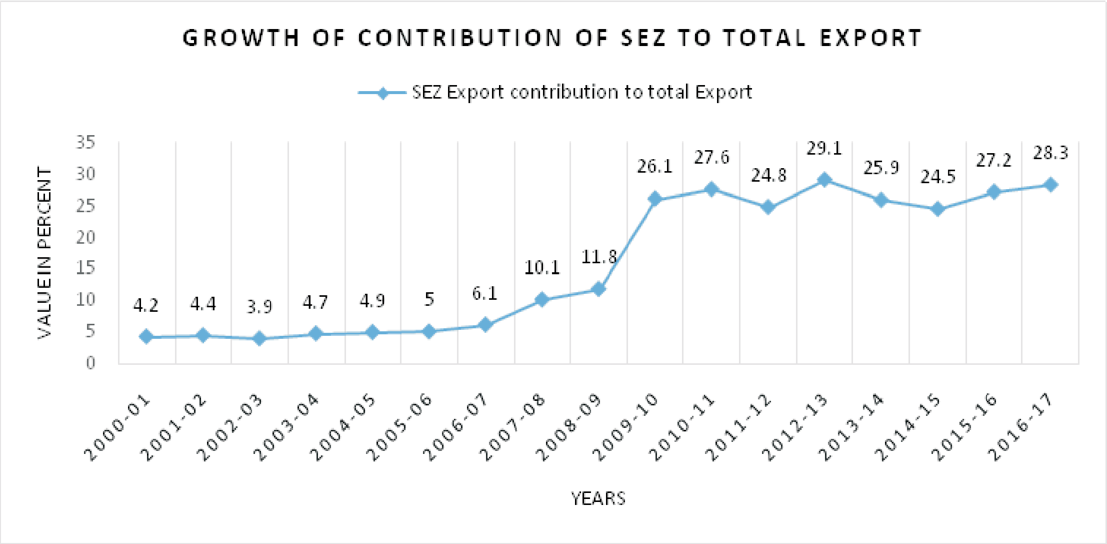

We tried to establish the relationship between total export of India and export from SEZs during the year 2000-01 to 2016-17. For the purpose we used the correlation analysis. We find that it has a positive (high degree) of correlation between total exports of India and export from SEZs. The value of correlation coefficient is r = 0.982. It explains a high degree of correlation between these two, i.e. SEZ has a positive contribution in increasing exports of India.

Table 3: Share of Central SEZs to total SEZ export (In percent)

Central SEZ	2008-09	2009-10	2010-2011	2011-2012	2012-13
VSEZ	1.0	0.5	0.5	0.7	0.7
Kandala SEZ	2.7	1.1	0.9	0.9	0.6
Falta SEZ	NA	0.6	0.5	0.4	0.2
MEPZ	4.5	2.9	3.0	3.2	2.2
NSEZ	18.5	4.2	3.2	3.3	1.7
SEEPZ	11.5	5.0	3.9	3.8	3.0
All central SEZ excluding CSEZ	38.3	14.2	11.9	12.3	8.5

Source: Data received from the DC offices of the respective zones

Note: After than DC offices stopped publishing this types of information.

Table 3 shows share of export of central govt. SEZ to total SEZ export in percentage form. In the year 2008-09 Noida SEZ (NSEZ) attended the highest percentage share in total SEZ export i.e. 18.5% and SEEPZ followed it. But in 2009-10 NSEZ could not maintain the tempo and SEEPZ attend the highest position i.e. 5%, followed by NSEZ. The same picture is in 2010-11, 2011-12 and 2012-13. It means SEEPZ is the most important SEZ in contribution of exports.

State Wise Exports from SEZs:

Table 4: State-wise Exports from SEZs during 2008-09 to 2013-14

	At current prices						At 2004-05 prices*					
Name of the states	Export value (crore) 2008-09	% to Total	Export value (crore) 2009-10	% to Total	Export value (crore) 2010-11	% to Total	Export value (crore) 2011-12	% to Total	Export value (crore) 2012-13	% to Total	Export value (crore) 2013-14	% to Total
Gujarat	23932.50	24.0	101747.21	46.1	146877.73	46.5	1140.68	50	1325.08	48	1233.81	46
Karnataka	2549.58	2.55	21337.13	9.6	46717.99	14.8	137.61	6	229.84	8	281.66	10
Tamilnadu	23022.32	23.0	27914.13	12.6	43704.60	13.8	313.62	14	394.82	14	391.55	14
Maharashtra	12811.68	12.8	15414.01	6.9	19480.05	6.2	151.32	7	250.85	9	309.21	11
Kerala	11942.01	11.9	17122.86	7.6	18750.65	5.9	196.18	9	197.50	7	43.88	2
Andhra Pradesh	3121.80	3.1	5663.66	2.6	13359.17	4.2	113.58	5	161.67	6	182.52	7
Uttar Pradesh	4581.37	4.6	5931.69	2.7	10883.57	3.4	85.28	4	73.52	3	89.27	3
West Bengal	16655.00	16.7	22966.47	10.4	10703.17	3.4	92.99	4	87.88	3	88.84	3
Haryana	277.92	0.2	1018.78	0.5	2807.01	0.9	21.53	1	29.08	1	47.92	2
Madhya Pradesh	430.49	0.4	494.41	0.2	1242.65	0.4	10.24	0	11.31	0	16.36	1
Rajasthan	331.74	0.3	735.41	0.3	899.39	0.3	8.25	0	8.75	0	11.17	0
Chandigarh	26.57	0.1	289.97	0.1	318.00	0.1	6.90	0	7.84	0	9.75	0
Orissa	6.02	0	75.65	0	123.87	0	0.99	0	1.27	0	2.12	0
Total	99689.00	100	220711.38	100	315867.85	100	2279.17	100	2780.27	100	2708.81	100

Source: *SEZ Division of the Department of commerce, Ministry of Commerce and Industry, Government of India*

Note: * The data has been converted to 2004-05 prices

1. Data on state wise export from SEZ are not available after 2013-14.
2. State wise data are not available after this period.

Table4 exhibits state wise exports from SEZ during 2008-09 to 2013-14. Among the states Gujarat secure highest percentage (24.0%) in 2008-09 at current prices, which increased to 46.5% in the year 2010-11. Tamil Nadu ranked the second (23.0%) in export in 2008-09at current prices. But it could not maintain the pace and declined from 23% to 13.8% in the year 2010-11 at current prices. If we look at the west Bengal its performance was satisfactory (16.7%) in 2008-09 at current prices but decline continuously and lastly in 2010-11 it reached to its lowest level (3.4%). So was the case with Maharashtra and Kerala. Maharashtra exported from SEZ 12.8% in 2008-09 at current prices but declined continuously and reached the level of 6.2% in the year 2010-11 at the current prices. Kerala also repeat the same story. It goes on declining in 2010-11. Other states are not significant worth mentioning because their share is very low.

If we compare it with 2004-05 prices we notice that share of export of Gujarat was 50% in total export from SEZ in 2011-12 but it registered a marginal decline in the year 2012-13, 2013-14. In the order of hierarchy Tamil Nadu maintained in all the three years, i.e. 14% in the all three years. In this way we come on a conclusion that Gujarat and Tamil Nadu maintained their position i.e. current prices or 2004-05 prices. If we look at the absolute value figure we find that exports from all states increased from 99689 crore in the year 2008-09 to 315867.85 crore in the year 2010-11. At 2004-04 prices the scenario is more or less same. In 2011-12 total value of export at 2004-05 prices was 227917 crore, which increased to 270881 crore in 2013-14.

Sector Wise Exports from SEZs:

Table 5: Composition of SEZ exports by sectors in India

	2007-08		2008-09		2009-10		2010-11		
Sector	Export (in Rs billion)	Percentage of total export	Export (in Rs billion)	Percentage of total export	Export (in Rs billion)	Percentage of total export	export (in Rs billion)	Percentage of total export	CAGR (2007-08 to 2010-11) percentage
Biotech	1.59	0.2	8.33	0.8	4.56	0.2	4.66	0.1	42.9
Computer/ electronic software	39.85	6.0	162.28	16.3	457.84	20.7	847.00	26.8	177.0
Electronics hardware	111.21	16.7	130.36	13.1	174.17	7.9	210.50	6.7	23.7
Electronics	5.19	0.8	3.38	0.3	9.31	0.4	11.25	0.4	29.5
Engineering	16.52	2.5	30.89	3.1	41.84	1.9	22.25	0.7	10.4
Gems and Jewelry	230.06	34.5	334.36	33.5	438.29	19.9	478.49	15.1	27.6
Pharmaceuticals /Chemical	14.23	2.1	63.86	6.4	739.72	33.5	1065.58	33.7	321.5
Handicraft	0.30	0.0	0.38	0.0	0.50	0.0	0.77	0.0	36.5
Plastic and rubber	6.58	1.0	3.43	0.3	6.88	0.3	13.59	0.4	27.4
Footwear / Leather and sports goods	2.37	0.4	2.81	0.3	4.50	0.2	4.26	0.1	21.5
Food and agro industry	6.46	1.0	3.01	0.3	3.69	0.2	6.21	0.2	-1.3
Non-conventional energy	1.26	0.2	2.31	0.2	13.98	0.6	16.07	0.5	133.6
Textile/Apparel/	13.17	2.0	29.52	3.0	33.13	1.5	21.86	0.7	18.4
Trading and services	208.67	31.3	188.04	18.9	248.84	11.3	358.67	11.4	19.8
Miscellaneous	8.92	1.3	33.94	3.4	29.86	1.4	97.53	3.1	122.0
Total	666.38	100	996.89	100	2207.11	100	3158.68	100	68.0

Source : SEZ, Division of the Department of Commerce, Ministry of Commerce and Industry, Government of India

Note : State wise export from SEZ data are not available after 2010-11

Table 5 explain the composition of sector wise exports from SEZs. Among all the sector Gems and Jewelry had a pride place. The value of export of Gems and jewelry in 2007-08 was 230.06 billion ₹, which increased continuously and came at the level of 478.49 billion ₹ in 2010-11. However, in percentage term it could not maintain its position. The share of Gems and Jewelry in total export was 34.5% in 2007-08 but declined continuously and came to a level of 15.1% in 2010-11. After Gems and jewelry the trading and services records its second position. The value of export of trading and services was 208.67 billion₹ in 2007-08, which increased to 358.67 billion ₹in 2010-11. But percentage share of trading and services was 31.3% in the year 2007-08, which declined continuously and came to a level of 11.4% in the year 2010-11. Very promising sectors are two: (1) Computer/electronics software (2) Pharmaceutical/ chemicals. The value of export of computer/electronic software was 39.85 billion₹ in the year 2007-08, which recorded a continuous growth and reached to a level of 847.00 billion₹ in 2010-11. Its share was only 6% in 2007-08 but increased to a level of 26.8% in 2010-11. Pharmaceutical/chemical industries signs a very bright future. The value of export of pharmaceutical/ chemicals was 14.23 billion ₹in 2007-08. But to our utmost surprise it reached a level of 1065.58 billion ₹in 2010-11 and similarly its share in total export were only 2.1% but attend a highest level of 33.7% in 2010-11. Value of export of electronic and hardware was 111.2 billion₹ in 2007-08, but its value approximately doubled in the year 2010-11 and reached a level of 210.50 billion₹. But its share in total export is continuously declining. It was 16.7% in 2007-08 and came to a level of 6.7% in the year 2010-11. Other sectors are insignificant. In this way sector wise total export was 666.38 billion₹ in the year 2007-08 which increased continuously and reached to a level of 3158.68 billion₹ in 2010-11.

SEZ were created with a basic objective to promote exports and earn foreign exchange. For this purpose a number of concession and incentives have been granted for establishment and development of SEZs from time to time. But due to changes in the government and government policy the various incentives and concession have been continuously reduced and that adversely affected the rate of growth of exports from SEZ. We are of the opinion that if government wants to obtain positive results from SEZ, she should rethink over towards the concession and incentives in favour of SEZs.

References

1. *Kumar, R. (1989). 'Indian Export Processing Zones: An Evaluation', New Delhi: Oxford University Press.*
2. *Mondal A.H. (2001) Role of the Export Processing Zones in the Industrialization Process of Bangladesh: Lessons for the Future" (published as Chapter 6, in Rushidan Islam Rahman (ed.), Performance of the Bangladesh Economy: Selected Issues, Bangladesh Institute of Development Studies, Dhaka, 2003, pp. 93 122*
3. *Baldwin, R.E. and Krugman, P.R. (1989), 'Persistent trade effects of large exchange rate shocks', Quarterly Journal of Economics, vol. 104, no. 4, pp. 63554.*
4. *M. Soundarapandian, (2012), Development of Special Economic Zones in India: Impact and Implication, Concept Publishing Company, Delhi, pp.96*

Human Resource Development and Practices in Indian Banks

shodhshree@gmail.com

Dr. Rekha Chouhan
Assistant Professor, G.D.Memorial College, Jodhpur

Abstract

Human Resource Development (HRD) has assumed considerable importance in the recent years. Human Resource Development plays vital role in every organisations because it is now considered as a part of modern management system. In Banks HRD is a must for the overall development of employees.

Todays increasing complex, and volatile business environment characterized by globalisation, liberalisation and transnational invasion ensures that managing would not be the same again.

As we are in 21st century competitiveness is global market place presents the ultimate challenges to policy makers, business leaders and entrepreneur's in any industry, including banking. The need for HRD is all the more great in service oriented in situations like banks.

This paper mainly concentrates on challenges faced by private sector banks in present competitive scenario and also mentions the different HRD practices along with some conclusions and suggestions.

Keywords : *Banks, Globalization, Liberalization, Concepts, Human Resource Development, Human Resource Management.*

Human Resource Development (HRD) is the frame work for helping employees develop their personal and organizational skills, knowledge and abilities.

Today more importance is being given to "People" in organisations. This is mainly because organisations are realising that human assets are the most important of all assets. This emphasis can also be partly attributed to the new emerging values of humanism and humanisation.

Human Resource Development (HRD) is a process by which the employees of an organisation are helped, in a continuous, planned way to:-

- Acquire or sharpen capabilities required to perform various Functions associated with their present or expected roles,
- develop their general capabilities as individuals and discover and exploit their potentials for their own and / or organisational development purposes and,
- develop an organisational culture in which supervision subordinate relationship, team work and collaboration among Sub-units are strong and contribute to the professional well being, motivation and pride of employees (Rao 1985).

In the opinion of some management thinkers, japan is the first country to stress and use HRD practices.

According to Prof. UdaiPareek, as for as India is concerned the term HRD was introduced for the first time in the State Bank Of India in 1972.

Human resource development is a multi dimensional concept. It has been defined differently by economists, social scientists, industrialists, managers and other academicians from different angles.

Basically HRD involves two issues; relationship of the person to (i) One self and (ii) to the Society.

A person may be an asset or liability to himself and the society depending upon the development of his Skills and abilities and his social attitudes and values.

The focus of all aspects of Human Resource Development is on developing the most superior work force so that the organisation and individual employees can accomplish their work goals in service to cutomers.

Human Resource Development includes such opportunities as employee training, employee career development performance management and development, coaching, mentoring. Succession planning, key employee identification, tuition assistance and organisation development.

HRD in Banking Sector

What is a Bank?

A bank is a financial institution licensed to receive deposits and make loans. Banks may also provide financial services, such as wealth management, currency exchange and safe deposit boxes. There are two types of banks, commerical/retail banks and investment banks. In most countries banks are regulated by the national government or central bank.

Over the last three decades, there has been a remarkable increase in the size, spread and activities of banks in India. The number of bank branches arose considerably during this period. The business profile of banks has transformed dramatically to include non-tradintional activities like merchant banking, mutual funds, new financial services and products and the Human Resource Development change is the only constant factor in this dynamic world and banking is not an exception.

The changes staring in the face of bankers relates to the fundamental way of banking which is undergoing rapid transformation in the world of tody. The major challenges face by banks today is to protect the falling margins due to the impact of competition. Another significant impact of banks today is the use of technology. There is an imperative need for not mere technology up gradation but also its integration with the general way of functioning of banks. All this is possible with the help of efficient human resource management.

The need for HRD is all the more great in service oriented institutions like banks. An efficient, effective and disciplined banking system helps the process of economic development as per the national priorities. It functions as catalytic agent for bringing about economical, industrial and agriculture growth and prosperity of the country.

The banking industry (ICICI Bank, HDFC Bank, IDBI Bank, SBI Bank etc.) has also realized the fact that the human resource or the personnel are to play an important role to achieve a high rate of growth of the bank. An employee is generally regarded as an innovator and supporter of innovations and a conscious developer of business in banking industry. The key to successful management in any banking industry lies in effective utilization of the personnel they recruit from time to time (Rao 1993).

Hypothesis:-

The study is based on the hypothesis that private and public sector banks having well establish HRD system.

Scope of the Study:- The scope of the study extents to examine the policies and procedure relating to human resource planning, recruitment and selection procedure, management of training and development programmers, evaluation of wages and salary administration programmes and analysis of employees welfare services, employee problems and to examine the ways of performance appraisal.

Research Methodology:- This explorative study is based on both primary and secondary data. The primary data has been collected with the help of through direct interviews with branch managers and employees. Secondary data has been collected from internal records of the banks.

Objective of the Study:

The study has been undertaken with the

following objectives

- To study the outcomes of human resource development for the banks, individual employees, groups and the society at large in both private as well as public sector banks.
- Identifying the training needs level of job satisfaction performance. Appraisal system etc.
- To find out the weakness/short comings in the prevailing HRD system in both private as well as public sector banks.
- To suggest wage & wins to improve the present HRD system.
- To enquire into the HRD philosophy of banks.
- To study the organizational and HRD climate in the banks.
- To enquire into the practices of various HRD techniques.

Evaluations and Suggestions

The findings and observations on various items support the hypothesis of the present study. The research shows that the policies, norms, rules followed by any of the branch (private and public) is same as that decided by the Head office of the bank.

- There is a pressing need to develop work practices which encourage efficiency in this banking sector.
- There is a need to adopt global best practices in financial sector regulation and supervision and adopt them to the domestic environment. This largely depends on the functioning and policies of public institutions, such as RBI as it is increasingly subject to public discussion and debate.
- The system of the performance appraisal should be de signed as simple as possible so that it is neither difficult to understand nor' impossible to practices.
- Top management should conduct more programmers on stress management, yoga and time management in order to enjoy the Jobs/tasks done by the bank staff. Because banking industry is undergoing sea changes and putting the staff always under pressure.
- The job evaluator should be well educated and updated with the knowledge because if evaluator is not well versed in the techniques and principles of job evaluation, Job classification and Job grading, the results of the job evaluation will be quite inconsistent. Moreover, if evaluator is biased to a particular job. It will be assigned more weightage.
- The training system requires commitment, flexibility and adoptively on the part of the trainer and trainees. The trainees should be prepared to take account of the changing socio-economic environment and should undertake such studies which may eventually help in the growth of the system itself,likewise flexibility in the training programmers and plans is an essential quality to get adjusted to the changing socio-economic environments.
- Top management should organize programmers on stress and time management especially for female bank staff.
- Human resource development is a central challenge. Theseis a gap in middle level management which has to be addressed through lateral hiring, better training etc. This is essential for public sector banks.

Conclusion

This paper aims to identify the items for administrative skills, competitiveness and HR policies.

Om the present changing environment all the organisations stressed upon HRD aspects. Banking sector also tries to implement the modern ideas on management regarding development of human resources.

HRD climates plays a very important role in the success of any organization because directly or indirectly it affects the performance of the employees. If the HRD climate is effective than the employees will do their best for the achievement of the organisational goals.

The long term vision for India's banking system is to transform itself from being a domestic one to the global level may sound improbable at presents.

New generation private banks entered with clear business positioning (Investment, retail and corporate banking) and to a certain extent lured away the cream of experienced and trained human resource in the respective fields from public sector banks (PsBs) and that too in the lower and middle management levels (that constituted the core customer relations human resource).

In the present competitive world the banking sector especially of the developing economies like India, is facing lot of tough competition talent crunch and skill shortage. All these have made the banks feel that the internal customer is also more important equally with external customers, so every bank is trying to devise innovative HR practices to attract best talent and give them comfortable environment to work with, that enables the banks to retain talents.

Thus to conclude it can be said that Human Resource Development Practices pave the way for solving the HRis sues in the service sector industries leading to achievement of organizational objectives employee satisfaction and long term sustain ability,which make India as a strong nation.

References

1. *Aswathappa, K.: Human Resources & Personnel Management, Tata McGraw Hill, New Delhi, 1997.*
2. *BasotiaG.R. "Human Resource Management" Mangal Deep Publication, Jaipur 1999, p. 182.*
3. *Chadha K Narendra "Human Resource Management", Issues, Case Studies and EperientialExcercises, Second Edition 2002, Excel Prints, New Delhi-28.*
4. *D.A. Decenzo and S.P. Robbins, "Personnel/Human Resource management", New Delhi, Prentice Hall, 2004.*
5. *Edwin B. Flippo "Principals of Personnel Management", MaGraw-Hill, New York, 4th Edition, 1976, p. 5.*
6. *Kaushal Kumar, "Human Resource management", ABD Publishers jaipur (First Edition) 2001, p 2.*
7. *Khanadelwal, Anil K (Ed); "HRD in Banks", Oxford &IBH, New Delhi (1988), p. 2.*
8. *MalgiT.S. : Private Sector Banks – Bright Days Ahed, Economics & Political Weekly.*
9. *Nadlerm, Leonard (1984). The Handbook of Human Resource Development (Glossary). New York. John Wiley & Sons.*
10. *Pigors and Myers,. "Personnel Administration" McGraw-Hill, New York, 4th Edition, 1961, p. 12.*
11. *R.K. Mali, "Applying Human Resource Accounting to Banking Industry" Yojna, vol. 30 No. 13, July 16-31, p.4*
12. *RaoV.S.P. : "Human Resource Management", Text and cases, New Delhi, 2000.*
13. *T.V. Raoet.al., Alternative Approaches and Strategies of HRD, Rawat Publications, Jaipur, 1988.*
14. *T.V. Rao the HRD Missionary, Oxford and IBH, New Delhi, 19990.*
15. *UdaiParek, T.V. Rao, "Designing and Managing Human Resources Systems", Oxford IBH, New Delhi 1981.*

Websites:

1. *www.msnsearch.com*
2. *www.banknetindia.com*
3. *www.hdfcbank.com*
4. *www.humanresource.com*
5. *www.icicibank.com*
6. *www.idbibank.com*
7. *www.indusindbank.co.in*
8. *https://www:jstor.org*
9. *https://papers.ssrn.com*

Productive Training Methods Of Human Resource Management In Digital Era

Dr. Sharwan Kumar Daukiya
Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Appropriate and skilled human resources are essential to ensure the production of high quality and to implement more efficient and effective production processes based on new technologies.

Traditionally Classroom training is sometimes the best approach for learning complex information. New advances in training and development programs allow large companies to implement virtual classrooms that allow such training across multiple remote sites without loss in quality.

Training methods continue to evolve as they are essential for the growth of industry and services. Even basic entry-level jobs have video packages and tests employees can take to learn the basics and demonstrate their knowledge and skills. The large companies with complex and diversified job requirements and protocols are quite different, there the modern technology shines.

We are very familiar with online training modules and videos. These have become a standard part of many training methods in HRM effective learning.

Latest effective training and development strategy is simulation training, where employees work on seemingly real-life problems through virtual interfaces created for them. With advancements in technology, training processes in HRM can incorporate simulation training remotely, sometimes on site or off site to give employees concrete, hands-on experience.

Keywords : *Training, Method, Resource Management, Productive.*

Employers provide proper training to employees so that they turn out to be an asset to the organization and can help in the company's growth and success.

Most of bigger organization spends a lot of money on the training of their hired staff. Training is the process of increasing the knowledge and skill of an employee for doing a particular job.

For the first time since India's independence, a Ministry for Skill Development and Entrepreneurship (MSDE) has been formed to focus on enhancing employability of the Youth through skill development. The skill ecosystem in India, is seeing some great reforms and policy intervention which is reinvigorating and re-energizing the country's workforce today, and is preparing the youth for job and growth opportunities in the international market. The prime Minister's flagship scheme, Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana (PMKVY) alone, has till date seen close to 50 lakh people get skilled and prepared for a new successful India.

Ironically, most industries in India are currently struggling with scarcity of skilled labor. Although more than 40 million peoples are registered in employment exchanges, only 0.2 million get jobs.

So the training methods and techniques used should be of best of its class helping our employees to grow professionally and personally.

Better training methods and techniques help our employees to boost up their creative skills and also encourage them to work for their organization success and growth. Some of the top tips, we should follow are:-

- To Ensure that Employee Training methods are enjoyable
- That Employees Switching Jobs should be encouraged
- To Develop Boot Camps And symposiums
- To Share Customer testimonials
- To Build best Employee Training Methods
- To Make Employees Study The Way that suits their study style

The human resources or human relations department oversees a number of functions within the organization, including hiring, training, monitoring certain policies and even handling disputes. In addition, the human resources department must keep company employees updated on certain laws, such as safety and discrimination. Therefore, it is essential that all human resource managers and employees get the appropriate training.

Progress in today's digital era places emphasis on the growth of the individual, relating to acquiring a broad range of planned activities and experience that is most commonly acquired through the extensive use of a computer or other means of modern technology. The Internet has far-reaching implications for the availability of information, for education. It is changing the way we work and creating new businesses that support technology. At the same time, technology and the Internet also provide new techniques for trainers to use in the process of training. Information technology facilitates self-learning as never before, since it has broadened and deepened the available range of methods and media through which learning may take place.

New technologies provide a positive impact on employment and development by providing a larger variety of options to reach employees. Young employees especially expect training that engages them in ways that help them learn more, and new technologies provide the training development environment that can match their learning style perfectly.

Technologies are and will be used in creative ways to further erode the separation of students from each other, from their teachers, and from content relevant to the needs and interests of the student. As all of this occurs, the truly global nature of the educational marketplace will become increasingly clear, just as it has become apparent in this decade that the market for higher education is no longer singularly local. It will also become clearer that the impact of technology is not to create mass markets for learning, but to create options that are more and more customized for individual learners in organized patterns of inquiry.

What Is The Need For This?

In an era of technological, social and economic change, offices are facing several challenges to further develop their key role as provider of high-quality information on economic, social and environmental phenomena.

These include the need to meet both current and future demands of the users of services and goods and to develop production processes that increase efficiency of work and reduce costs.

Once we've identified training needs, answer these questions about each situation:

- What are the training conditions?
- How many computers do we have access to?
- What resources are available?
- What are the characteristics of the training content?
- Who is our target audience?
- What are its demographics?
- How many languages do we need to accommodate?
- How many employees need this training?

New technologies and new organizational arrangements are fundamental in this respect. We can better engage our employees through cutting-edge training methods. This kind of training can improve employee engagement upon hiring or on an everyday basis. With staff training and development methods that engage different learning styles so that our company will have a staff that is productive, well-educated, and invested in the future of our business.

Proactive human resources management is essential to achieve the required changes and to allow various offices to meet the challenges today and in future.

National Institute of Personnel Management (NIPM) of India has defined human resource/personnel management as "that part of management which is concerned with people at work and with their relationship within an enterprise. Its aim is to bring together and develop into an effective organization of the men and women who make up an enterprise and having regard for the well-being of the individuals and of working groups, to enable them to make their best contribution to its success".

New and Innovative Training Methods

In Convention we have a few types of training. All these training types are selected by the HR's depending upon the requirement.

- Quality Training
- Skills Training
- Professional Training and Legal Training
- Technical or Technology Training
- Soft Skills Training
- Safety Training
- Managerial Training
- Team Training:

On the contrary many new and innovative methods are being developed by various people according to their need. Distance education, e-learning seems to be the quickest method in the digital era. Most of them are as follows:-

1. Instructor-Led Classroom Training

Classroom-style training is the most traditional and widely used training method, accounting for 42% of a company's training hours on average and used exclusively or mostly by 13% of organizations. This method mimics other educational environments like a college course.

It comes with plenty of benefits. Namely, classroom-style training allows for personal interaction. It gives trainees the right environment and resources to interact with instructors to ask questions that might go unanswered in a non-interactive forum. It also empowers relationship building between the trainer and trainee, and fellow trainees who are learning and growing together.

Pros:

- Instructor-led classroom training is an efficient method for presenting a large body of material to large or small groups of employees.
- It ensures that everyone gets the same information at the same time.
- It is cost-effective, especially when not outsourced to guest speakers.

Cons:

- Sometimes it is not interactive.
- Too much of the success of the training depends on the effectiveness of the lecturer.

2. Interactive methods

The training strategy has been changed and its main purpose has become bringing up of free, active, informed and responsible employees, equipped with the skills of critical thinking and loyal to the modern innovative industries in order to meet the demands of present day situation. These training methods involve different type of activities; like small group discussions, case study reviews, role playing, quizzes and demonstrations.

Interactive training can be highly effective because it combats the one-directional transfer of knowledge that comes with lecture-style training; by empowering conversation and group interaction.

This method is great for outgoing people who are more extroverted, but quieter employees might not feel as comfortable speaking up and interacting, and may get less out of this type of training.

Pros:

- ➢ Interactive sessions keep trainees engaged in the training, which makes them more receptive to the new information.
- ➢ They make training more fun and enjoyable.
- ➢ They provide ways for veteran employees to pass on knowledge and experience to newer employees.
- ➢ They can provide in-session feedback to trainers on how well trainees are learning.

Cons:

Interactive sessions can take longer because activities, such as taking quizzes or breaking into small groups, are time-consuming.

Some methods, such as participant control, can be less structured, and trainers will need to make sure that all necessary information is covered.

3. Hands-On Training

Hands-on training skips the conceptual and dives right into the practical, allowing trainees to quickly get their hands on whatever they're learning.

This approach is widely preferred by employees; in a study it was estimated that 52% of adults say the best way to learn is through active participation.

It can also boost knowledge recollection; long days in a training lecture may leave some trainees fried, but hands-on training requires focus, which can improve information retention.

Hands-on training can work, but only if that's how a person learns

Pros:

- ➢ Hands-on training methods are effective for training in new procedures and new equipment.
- ➢ They are immediately applicable to trainees' jobs.
- ➢ They allow trainers to immediately determine whether a trainee has learned the new skill or procedure.

Cons:

- ➢ They are not good for large groups if you do not have enough equipment or machines for everyone to use.
- ➢ Apprenticeship can be expensive for companies paying for employees who are being trained on the job and are not yet as productive as regular employees.

4. Computer-Based And E-Learning Training

If we look for a training method that removes the need for an in-person facilitator, computer-based or e-learning trainings may be right for us. While sometimes used interchangeably, these two approaches have one distinct difference: computer-based training (CBT) encompasses any type of training that takes place on a computer; while e-learning training is specifically training that's hosted online via a website or web app.

These digital trainings usually mimic classroom-style trainings, displaying visual content on screen that supports a lecturer's voiceover.

They can also include resources like videos and reading material to accompany coursework, similar to what you might find in a classroom environment..However ,that advantage comes with a disadvantage; because CBT courses are unmonitored, it's hard to know whether trainees are truly engaged with the material.

It can be of following types

- ➢ **Text-only.** The simplest computer-based training programs offer self-paced training in a text-only format. These programs are similar to print-based, individualized training modules with the addition, in most cases, of interactive features. While simple in format, these programs can be highly effective and present complicated information and concepts in a comprehensible and easily accessible way.
- ➢ **CD-ROM.** A wide variety of off-the-shelf training programs covering a broad range of workplace topics are available on CD-ROM. Programs can also be created by training consultants for the specific needs of the particular organization or individual departments.
- ➢ **Multimedia.** These training materials are an advanced form of computer-based training.

They are much more sophisticated than the original text-only programs. In addition to text, they provide stimulating graphics, audio, animation, and/or video. Multimedia tends to be more provocative and challenging and, therefore, more stimulating to the adult mind. Although costs are higher than text-only software, the benefits in terms of employee learning may well be worth it. Multimedia training materials are typically found in DVD format.

- Virtual reality. Virtual reality is three-dimensional and interactive, immersing the trainee in a learning experience. Most virtual reality training programs take the form of simulation, which is a highly effective form of training. It is hands-on experience without the risks of actual performance. Flight simulators, for example, have been used successfully for years to train airline and military pilots in critical flying skills, as well as to prepare them for emergency situations in a safe and forgiving environment.

Pros:

- Computer-based training programs are easy to use.
- They are useful for refresher training. They are applicable to self-directed learning.
- They can be cost-effective because the same equipment and program can be used by large numbers of employees.
- They are flexible because trainees can learn at their own pace and at a time that's convenient for them. Computer-based programs are available 24 hours a day, 7 days a week. No matter which shift an employee works, training is always available.
- They are uniform, which makes it possible to standardize training.
- They are measurable. When computers are used for training, it is possible to track what each employee has learned right on the computer.

Cons:

- These programs require trainees to be computer literate.
- They require trainees to have computer access.
- These programs are not effective at teaching "soft-skills," such as customer service, sales, or sensitivity training.

5. Video training

Over the past few years, video has emerged as a game-changing media both for external use (like marketing and sales) and internal use, like training. 44% of executives strongly agree that video will be the "de facto" form of internal communication in the next five years, and say video helps them train employees better and faster.

Employees are also onboard with video training; 75% say they're than they are to read emails, articles or documents.

There are lots of different approaches you can take when it comes to video training.

The most common styles include:

- **Animation**
- **Live Action**
- **To-Camera**
- **Screen Recorded**
- **Software Training**
- **Video Conferencing**
- **Audio Conferencing**
- **YouTube Channel Training**
- **Email Training**
- **Lynda Training**
- **Whatsapp Training**
- **Customized Apps**

Pros:

- Online or e-learning programs are more effective for training than offline methods.
- They save the company money on travel expenses.
- They can be a less expensive way to get training from expert industry professionals

and consultants from outside the company.

- ➢ They are useful for refresher training.
- ➢ They are good for self-directed learning.
- ➢ They can be easy to update with new company policies or procedures, federal regulations, and compliance issues.

Cons:

- ➢ These programs require trainees to be computer literate.
- ➢ They are usually generic and not customized to your company's needs.
- ➢ Some employees may not like the impersonal nature of this training.
- ➢ Lack of computer terminals or insufficient online time may restrict or preclude access to training.

6. Coaching and mentoring

Training doesn't always have to come from a curriculum; sometimes the best learning opportunities happen in human interactions.

Consider implementing a coaching or mentoring program to supplement our more structured employee training methods.

Having a mentor not only creates growth opportunities for employees, but it builds relationships that help them feel more connected to and supported by their company.

Mentoring can also impact company's bottom line; 77% of companies say their mentoring program improves employee retention and job performance. However, mentorship programs require your most high-performing people to step away from their primary roles to grow newer team members.

Pros :

- ➢ Coaching and mentoring an employee makes them more valuable to our organization by developing and enhancing their skills—both professionally and personally.
- ➢ Being interested in the growth of our staff, we're showing them that we care about their progress. And this can increase their loyalty to us.

Cons:

- ➢ In some instances, the mentor may feel that the mentee is not progressing quickly enough or doesn't seem able or willing to follow her/his direction, leading to frustration.
- ➢ The mentee may also become frustrated if he/ she feels that he/ she is not getting the guidance he/ she needs.

7. Outdoor Training

A nice break from regular classroom or computer-based training, the usual purpose of outdoor training is to develop teamwork skills.

Some examples can be:

Wilderness or adventure training - participants live outdoors and engage in activities like whitewater rafting, sailing, and mountaineering.

Low-impact programming - equipment can include simple props or a permanently installed "low ropes" course.

High-impact programming - Could include navigating a 30-feet "high ropes" course, rock climbing, or rappelling.

Outgoing and active participants may get the most out of this form of training. One risk trainers might encounter is distraction, or people who don´t like outdoor activities.

Pros:

Outside consultants and professional trainers often have stronger skills in teaching and training than the management and supervisors within the organization.

Training is their specialty, and an outside trainer should be up to speed on all of the newest techniques and the use of technology in training.

An outside trainer may be more willing to use role-playing and team-building exercises with which a manager might not be familiar or less willing to use.

Cons:

An outside trainer may not be as well-versed in the company's specific operations and procedures

8. Films & Videos

Films and videos clips can be used on their own or in conjunction with other training methods .to be truly effective, training films and videos should be geared towards a specific objective. Only if they are produced effectively, will they keep the trainees attention. They are also effective in stimulating discussion on specific issues after the film or video is finished.

Films and videos are good training tools, but have some of the same disadvantages as a lecture - i.e., no interaction from the trainees.

Pros:

- ➢ Video training allows information to be deployed more quickly.
- ➢ It provides easy access to training including from mobile devices.
- ➢ Video training is flexible providing anywhere, anytime access.
- ➢ It enables new employees to get on board more quickly.
- ➢ Videos facilitate ongoing training at one's own pace.
- ➢ It provides continued education and professional development.
- ➢ It Increases motivation and employee autonomy.

Cons:

Without being in the room instructors may have a hard time

Knowing if the participants are paying attention.

Social Isolation – Participants may feel isolated, miss social

Interaction and/or networking opportunities.

Lack of computer proficiency – Those who are uncomfortable with

9. Simulators

Simulators are used to imitate real work experiences. Most simulators are very expensive but for certain jobs, like learning to fly a boeing, they are indispensable. Astronauts also train extensively using simulators to imitate the challenges and micro-gravity experienced on a space mission.

Pros:

- ➢ Simulation allows trainees to purposely undertake high-risk activities or procedural tasks within a safe environment without dangerous implications.
- ➢ Simulation can improve trainees' skills and allow them to learn from error.
- ➢ Learners are able to gain a greater understanding about the consequences of their actions and the need to reduce any errors.

Cons:

- ➢ Simulation is not always able to completely re-create real-life situations.
- ➢ Simulators can be very expensive and require constant updates and maintenance.Not every situation can be included.
- ➢ The results and feedback are only as effective as the actual training provided.

Conclusion

In formulating plans for training and development, it is important to examine the internal resources available, the external resources and the relevance of qualifications. We can select from a wide variety of techniques and opportunities, and should never restrict our concept of training and development to training courses alone. Individuals have preferences for the ways in which they learn, learning styles. The choice of training activities should take this into account

- ➢ **Instructor-led classroom training:** A personal approach that mimics a traditional classroom environment, leveraging presentation material and a facilitator
- ➢ **Interactive methods:** An amplified classroom experience that includes interactive elements like demonstrations, role playing and small group discussions
- ➢ **Hands-on training:** A learn-through-doing

approach that gets employees involved in real work on day one

- **Computer-based and e-learning training:** A digital classroom that allows employees to move through material at their own pace from anywhere in the world
- **Video training:** A highly engaging, accessible training method that can be modified to fit your company's exact needs
- **Coaching and mentoring:** A program that supplements educational curriculum with meaningful human relationships.
- **Outdoor Trainings:** Outdoor Training is one of the off the job training methods. It is an educational method using physical activities in the nature, based on sensory experience, knowledge and experience of the situation.
- **Simulation:** involves the use of basic equipment or computer software to model a real-world scenario. During simulation-based training,

References

1. *Hanna, D. E. (1998). Higher Education in an Era of Digital Competition: Emerging Organizational Models JALN Volume 2, Issue 1 – March 1998*
2. *Horton, W.. (2000). Designing Web-Based Training. New York: Wiley & Sons*
3. *Karl M. Kapp, 2011The Gamification of Learning and Instruction: Game-based Methods and Strategies for Training and Education,*
4. *Donald L Kirkpatrick and James D Kirkpatrick, 2005 Transferring Learning to Behavior: Using the Four Levels to Improve Performance,*

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Individual Subscription Form

Name ....
Designation ....
Name of Organization ....
....
Address ....
....
District ....
State
....
Pin ....
Tel. No. (R) ....
Mobile ....
e-mail ....

Date (Signature)

Frequency	:	Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April , July & October.
Mode of Payment	:	Subscription fee can be deposit through online Banking.
Bank Details	:	Virendra Sharma, OBC Bank, Adarsh Nagar, jaipur SB A/C No. 06722151002965, IFSC Code ORBC 0100672, MICR Code 302022005 Subscription Fees - 1800 Rs.

Membership No. .... Date ....

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I...

hereby declared that the paper entitled'..

.....................................'is unpublished original paper which is not sent any where

for publication.

This paper is prepared by me/jointly with..

....which is

exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the

Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature ....

Name ....

Designation ....

Official Address ....

....

Residential Address ....

....

....

Phone No. .... Pin No. ....

e-mail Address ....

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Institutional Membership Form

The Editor
Shodhshree
Jaipur

Dear Sir
I want to become a member of this Journal for -

☐ 1 year	☐ 2 years	☐ 3 years
(Rs. 1000/-)	(Rs. 1800/-)	(Rs. 2500 /-)

I am sending here with Rs............ through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution ....

....

Address..

.... Pin Code..............................

Phone/Mobile No. ....

E-mail ID ....

Date: Signature

For Office Use Only

Membership No. ____________ Date ____________

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly)
i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

Bank Details : Cheque /DD must be in Favor of Virendra Sharma ,OBC Bank,
Adarsh Nagar, Jaipur
SB A/C NO.06722151002965
IFSC Code ORBC0100672, MICR Code 302022005

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.
2. All manuscripts must be accompanied by the brief abstract, Abstract including Keywords must not exceed more then 150 words.
3. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.
4. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.
5. Maximum word limit of research paper up to 2500 words.
6. Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.
7. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.
8. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.
9. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

Research Paper may be sent to our e-mail: shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134

शोध श्री के सम्पादक डॉ. रविन्द्र टेलर शिक्षक श्री राष्ट्रीय सम्मान 2019 प्राप्त करते हुए

प्रिन्टेड मैटर
If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)
54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54–ए,
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर–302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।